मास्टर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

Master of Arts (Sanskrit)

चतुर्थ सेमेस्टर - एम0ए0एस0एल - 608

सिद्धान्तकौमुदी, कारक एवं समास:भाग-02

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम समिति

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफे0 ब्रजेश कुमार पाण्डेय,
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफे0 रमाकान्त पाण्डेय,
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान जयपुर परिसर, राजस्थान
प्रोफे0 कौस्तुभानन्द पाण्डेय,
संस्कृत विभाग, अल्मोड़ा परिसर,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

प्रोफे0 एच0 पी0 शुक्ल (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असिस्टेन्ट प्रोफेसर-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सम्पादन

डॉ0 नीरज कुमार जोशी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर-ए.सी., संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड एवं इकाई संख्या
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी	खण्ड 1 (इकाई 1 से 5)
डॉ0 उमेश कुमार शुक्ल प्रवक्ता व्याकरण (संस्कृत विभाग) श्री मुनिकुल ब्रह्मचर्यआश्रम वेद संस्थान,मंदालगढ़	खण्ड 2 (इकाई 1 से 3)

प्रकाशक: (उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी)

पुस्तक का शीर्षक - सिद्धान्तकौमुदी, कारक एवं समास

कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

ISBN No. 978 - 93 - 84632-27- 4

प्रकाशन वर्ष : 2022

मुद्रक:

नोट:- यह पुस्तक छात्र हित में शीघ्रता के कारण, प्रकाशित की गयी है। संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन पाठ्यक्रम के पूर्ण लेखन व सम्पादन के पश्चात् किया जायेगा। इसका उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना अन्यत्र किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता।

अनुक्रम

खण्ड – प्रथम समास प्रकरण पृष्ठ संख्या 01-03

इकाई. 1 समर्थ: पदविधि: सूत्र से तृतीया सप्तम्योर्बहुलम् सूत्र तक व्याख्या **4-16**

इकाई. 2 अव्ययीभावे चाकाले सूत्र से-- झय: सूत्र तक व्याख्या **17-26**

इकाई. 3 तत्पुरूष: सूत्र से-- सप्तमी शौण्डै: सूत्र तक विस्तृत व्याख्या **27-38**

इकाई. 4 दिक्संख्ये संज्ञायाम् सूत्र से अर्धर्चा: पुंसि च सूत्र तक व्याख्या **39-58**

इकाई. 5 शेषो बहुब्रीहि: सूत्र से द्वन्द्वात् चु द ष हान्तात् समाहारे **59-73**

खण्ड – द्वितीय व्याकरणदर्शन (वाक्यपदीयम्) पृष्ठ संख्या 74

इकाई. 1 आचार्य भर्तृहरि एवं उनके वाक्यपदीय का परिचय **75-99**

इकाई. 2 वाक्यपदीयम् - कारिका एक से पचास तक व्याख्या **100-121**

इकाई. 3 वाक्यपदीयम् - कारिका 51 से समाप्ति पर्यन्त तक हिन्दी में व्याख्या **122-161**

चतुर्थ सेमेस्टर/ SEMESTER-IV

खण्ड - प्रथम

समास प्रकरण

इकाई 1. समर्थ: पदविधि: सूत्र से तृतीया सप्तम्योर्बहुलम् तक उहाहरण सहित व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 समर्थ: पदविधि: से तृतीया सप्तम्योर्बहुलम्

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

सिद्धान्तकौमुदी कारक एवं समास प्रकरण, तृतीय प्रश्न पत्र के खण्ड प्रथम - समास प्रकरण की यह प्रथम इकाई है। इसके प्रथम भाग की इकाईयों में आपने कारक तथा कुछ प्रक्रियात्मक व्याकरण का सम्यक् अध्ययन किया है।

अनेक पदों को एक बनाकर उनके पूर्ण अर्थ में जानने की प्रक्रिया को संस्कृत व्याकरण में समास कहते हैं। समास प्रकरण के अर्न्तगत उपसर्गों प्रत्ययों तथा धातुओं के साथ विभक्ति का अर्थ बताने वाले पदों का विस्तार से परिचय प्राप्त किया जाता है। प्रस्तुत इकाई उक्त सन्दर्भ में आपके अध्ययन के लिए प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप केवल समास का अध्ययन कर अव्ययीभाव समास के कुछ सूत्रों एवं उनसे सम्बन्धित पदों की सिद्धि का ज्ञान प्राप्त कर उनमें बनने वाले अन्य प्रयोगों के सम्बन्ध बतायेगें ।

1.2 उद्देश्य

केवल समास तथा अव्ययीभाव समास के वर्णन से सम्बन्धित इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि –

- ❖ समास का अर्थ एवं उसकी परिभाषा क्या है ।
- ❖ समासों में केवल समास की उपयोगिता क्या है।
- ❖ सूत्र और वार्त्तिक किसे कहते हैं।
- ❖ उपसर्गों के योग से कौन सा समास बनता है।
- ❖ विभक्ति के अर्थ में कौन सा समास होता है।
- ❖ अव्यय आदि 16 अर्थों में किस समास का उपयोग किया जाता है।

1.3 समर्थ: पदविधि: से तृतीय सप्तम्योर्बहुलम् तक सूत्र की व्याख्या

समास का अध्ययन करने के लिए सबसे पहले उसकी अवधारणा एवं उसके अर्थ को यहॉं ठीक से समझ लेना अत्यन्त अनिवार्य प्रतीत होता है। ये समास सन्धि से पृथक् होते हैं। सन्धि के अर्न्तगत वर्णों की क्रिया का अध्ययन किया जाता है। किन्तु समास के अर्न्तगत दो शब्दों के आपस में मिलकर नवीन शब्द की रचना करने की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है।

समास अर्थ एवं प्रकार –

'सम्' (भली - भॉंति) उपसर्ग लगाकर अस् (फेंकना) धातु से घञ् प्रत्यय होकर समास शब्द बनता है। अर्थात् दो या कहीं पर दो से अधिक पदों को इस प्रकार एक साथ रख देना कि उनके पूर्ण अर्थ भी विदित हो और उनके आकार में भी कुछ कमी आ जाय। अत: इसका प्राय: वही अर्थ होगा जो संक्षेप शब्द का। इसीलिए **समसनम् समास:** , **अनेकपदानाम् एकपदीभवनं समास**:, समास शब्द का यह अर्थ ग्रहण होता है। जैसे- **राज्ञ**: **पुरुष: राजपुरुष**: - राजा का पुरुष ।इस प्रकार दो या दो से अधिक पदों को एक पद के रूप में रखना समास कहलाता है- **एकार्थवाचकतां प्राप्तो भिन्नार्थानेक पद समूह:समास:।**

समास के पॉच भेद हैं-

1. केवल समास

2. अव्ययी भाव समास

3. तत्पुरुष समास

4. बहुब्रीहि समास

5. द्वन्द्व समास

1. **समास: पंचधा । तत्र समसनं समास: । स च विशेष संज्ञा विनिर्मुक्त: केवल समास: प्रथम:। प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानो अव्यीभावो द्वितीय: । प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानो तत्पुरुषस्तृतीय: तत्पुरुष भेद: कर्मधारय: । कर्मधारय भेदो द्विगु: । प्रायेण अन्यपदार्थ प्रधानो बहुब्रीहिश्चतुर्थ: । प्रायेण उभय पदार्थप्रधानो द्वन्द्व पंचम: ।**

1. **केवल समास**- जिस समास को कोई विशेष नाम न दिया गया हो उसे केवल समास कहते है- विशेष संज्ञा विनिर्मुक्त: केवल समास: ।

2. **अव्ययीभाव** – जिस समास में प्राय: पूर्व पद का अर्थ प्रधान होता है उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं यह समास का द्वितीय भेद है- प्रायेणपूर्वपदार्थप्रधानो अव्ययीभाव:।

3. **तत्पुरुष**- जिस समास में प्राय: उत्तर पद (बाद वाला) अर्थ प्रधान हो वह तत्पुरुष समास कहलाता है- प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुष: ।

कर्मधारय तत्पुरुष समास का ही एक भेद कर्मधारय है। जहॉ विशेष्य और विशेषण का समास बताया गया है। उसे कर्मधारय समास कहते है।

द्विगु जहॉ विशेष्य और विशेषण के समास में यदि विशेषण संख्यावाचक हो तो उसे द्विगु समास कहते है।

4.**बहुव्रीहि**- जिस समास का अन्य अर्थ प्रधान हो वह बहुव्रीहि कहलाता है । इसका अर्थ है– बहुव्रीहि: (धान्यं) यस्य अस्ति स: बहुव्रीहि:अर्थात् जिसके पास बहुत चावल हों । बहु तथा व्रीहि में प्रथम शब्द दूसरे का विशेषण है और दोनों मिलकर किसी तीसरे के विशेषण हैं। इसीलिए इसका नाम बहुव्रीहि है।

5. द्वन्द्व समास – जिस समास में उभय अर्थात् दोनों पदों के अर्थ प्रधान हो उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्व: पंचम:।

इन सभी समासों का सूत्र वृत्ति उदाहरण सहित व्याख्या किया जा रहा है।

1. केवल समास—

907 . समर्थ: पदविधि: / 2 / 1 / 1 पदसम्बन्धी यो विधि: स समर्थाश्रितो बोध्य:।

सूत्र का शब्दार्थ है कि पदविधि समर्थ होती है किन्तु समर्थ का अभिप्राय है- समर्थपदाश्रित । अत: भावार्थ यह होगा पदविधि समर्थपदाश्रित होती है । सामर्थ्य दो प्रकार का होता है-

1. व्यापेक्षा 2. एकार्थीभाव ।

1. व्यापेक्षा - आकांक्षा के कारण पदों के परस्पर सम्बन्ध को व्यापेक्षा कहते है तथा जहॉ पर अलग-अलग पदार्थो की एक साथ उपस्थिति होती है।

2. एकार्थीभाव- जहॉ पदार्थों की एक साथ उपस्थिति होती है अलग अलग नही वहॉ पर एकार्थीभाव समार्थ्य होता है। अत: जहॉ पर पदों में सामर्थ्य होता है वही समास आदि पदविषयक विधि होती है। जहॉ पदों में सामर्थ्य नहीं होता वहॉ पदविषयक विधि नहीं होती है। पदविधि होने से समास भी उन्हीं पदों का होगा जिनका परस्पर सामर्थ्य होगा।

जैसे- 'चतुरस्य राज्ञ: पुरुष:' (चतुर राजा का पुरूष) में 'राज्ञ:' और 'पुरुष' का समास नहीं होता। यहॉ 'राज्ञ:' का 'चतुरस्य से भी हैं अत: उसके प्रति साकांक्ष होने के कारण 'राज्ञ:' और 'पुरुष' में परस्पर सामर्थ्य नहीं है। सामर्थ्य न होने से उनका समास भी नहीं होता है। इस प्रकार परस्पर सामर्थ्य वाले पदों का ही विधान होता है- इसे ध्यान में रखना चाहिए।

908. प्रॉक्कडारात् समास: **/2/1/3**

कडारा: कर्मधारये इत्यत: प्राक् समास इत्यधिक्रियते।

सूत्र का शब्दार्थ है (कडारात्) कडार से पहले तक समास होता है। कडार शब्द का प्रयोग 'कडारा: कर्मधारये' 2/2/38 सूत्र में मिलता है और उसके पहले 'वाऽऽहिताग्न्यादिषु' 2/2/37 सूत्र आता है । वहीं तक इस सूत्र का अधिकार है अत: भावार्थ होगा कि 'वाऽऽहिताग्न्यादिषु'तक सभी सूत्र समास का विधान करते हैं।

909 . सह सुपा 2/1/4/

सुप् सुपा सह वा समस्यते समासत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक् । परार्थाऽभिधानं वृत्ति:।

सुबन्त का सुबन्त के साथ समास होता है। सुप् सुपा सह का शाब्दिक अर्थ है सुप् का सुप् के साथ समास होता है किन्तु 'प्रत्ययग्रहणे तदन्त ग्रहण' परिभाषा के अनुसार सुप् से सुबन्त का ग्रहण होगा।

समासत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक्। समास होने के बाद प्रातिपदिक संज्ञा होगी। तब सुप् विभक्ति प्रत्ययों का 'सुपो धातु प्रातिपदिकयों:' सूत्र से लोप हो जाता है।

परार्थाऽभिधानं वृत्ति: परार्थबोधन कराने को वृत्ति कहते हैं। सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार ये वृत्तियॉ पॉच प्रकार की होती है।

कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्त— धातुरूपा: पंचवृत्तय: वृत्यर्थाववोधकं वाक्यं विग्रह:। स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा- तत्र 'पूर्वं भूत:'इति लौकिक:'पूर्व अम् भूत सु' इत्यलौकिक: । भूतपूर्व:। भूत- पूर्व चरडिति निर्देशात् पूर्व- निपात:। सूत्र का शब्दार्थ है कि -

1. कृत 2. तद्धित 3. समास 4. एकशेष 5. सन् आदि प्रत्ययों से बने ये पांच वृत्तिया होती हैं।

वृत्यर्थाववोधकं वाक्यं विग्रह:। वृत्ति के अर्थ को जो स्पष्ट करता है उस वाक्य को विग्रह कहते है।

स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा वह दो प्रकार का होता है-1.लौकिक तथा अलौकिक।

उदाहरण के लिए - भूतपूर्व: (पहले हो चुका है)। पूर्वम् भूत: इस लौकिक विग्रह तथा पूर्व अम् भूत सु इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'सह सुपा' सूत्र से समास होगा । 'सुपो

धातुप्रातिपदिकयो: सूत्र से धातु तथा प्रातिपदिक के अवयव सुप् विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर पूर्व भूत बन जायेगा। महर्षि पाणिनि ने इसका प्रयोग अपने सूत्र **भूतपूर्वेचरट्** में किया है अत: पूर्वभूत में भूत का पूर्वनिपात होकर भूतपूर्व बनेगा और पुल्लिँग प्रथमा विभक्ति एक वचन में सु विभक्ति का आगम करने पर, अनुबन्ध लोप और रूत्व विसर्ग करने पर **भूतपूर्व**: ऐसा रूप बनेगा।

(वार्त्तिक) इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च। वागर्थौ इव वागर्थाविव।

इव के साथ सुबन्त पद का समास होता है किन्तु इस समास में विभक्ति का लोप नहीं होता जैसे- वागर्थाविव (वाणी और अर्थ के समान) वागर्थौ इव इस लौकिक विग्रह तथा ' वागर्थ औ इव' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में **'इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च'** वार्तिक से समास होगा और विभक्ति औ का लोप नहीं होगा। इस दशा में 'एचोऽयवायाव: इस सूत्र से औ के स्थान में आव् आदेश होकर वागर्थ + आव् + इव = वागर्थाविव होने से प्रातिपादिक संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति का आगम होगा किन्तु 'अव्ययात्' सूत्र से उसका लोप होकर- 'वागर्थाविव' ही रहेगा।

2. अव्ययीभाव—

910 . अव्ययीभाव: / 2 / 1 / 5 अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरूषात्।

यह अधिकार सूत्र है। इसका शब्दार्थ है- अव्ययीभाव होता है। इसका अधिकार तत्पुरूष: 2/1/22 सूत्र के पूर्व तक चलता है अत: स्पष्टार्थ होगा कि तत्पुरूष: सूत्र के पूर्व 'अन्यपदार्थे च संज्ञायाम्' 2/1/21/ तक अव्ययीभाव का अधिकार है। तात्पर्य यह है कि इस अधिकार क्षेत्र में आने वाले सूत्रों के द्वारा किये गये समासों को अव्ययीभाव समास कहते हैं।

911-अव्ययं विभक्ति–समीप-समृद्धि–व्यृद्ध्यर्थाऽभावाऽत्ययासम्प्रतिशब्दप्रा– दुर्भाव-पश्चाद्ययथाऽऽनुपूर्व्य-यौगपद्य– सादृश्य-सम्पत्ति-कल्याऽन्तवचनेषु / 2 / 1 / 6

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते। प्रायेणाऽविग्रहो नित्यं समास:, प्रायेणास्वपदविग्रहो वा। विभक्तौ – 'हरि ङि अधि' इति स्थिते।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि विभक्ति – समीप – समृद्धि .....और अन्त अर्थ में (अव्ययम्) अव्यय..... । किन्तु ठीक-ठीक जानने के लिए प्राक्डारात् समास:, सह सुपा, और अव्ययीभाव: सूत्रों की अनुवृत्ति करनी पड़ती है तब सूत्र का भावार्थ होता है कि- विभक्ति, समीप, समृद्धि, समृद्धि का नाश, अभाव, नाश, अनुचित,शब्द की अभिव्यक्ति,पश्चात् ,यथा,क्रमश: , एकसाथ , समानता , सम्पत्ति, सम्पूर्णता और अन्त-इन सोलह अर्थो में वर्तमान अव्यय का सुबन्त के साथ समास होता है और उस समास की अव्ययीभाव संज्ञा होती है। नित्य समास को दो प्रकारों से समझा जा सकता है-

1. **प्रायेणअविग्रह**- जिसका प्राय: लौकिक विग्रह नहीं होता है।

2. **प्रायेण अस्वपदविग्रह** – प्राय:जिन पदों का समास हुआ है उनके द्वारा लौकिक विग्रह न होकर उनसे किसी भिन्न पद को लेकर विग्रह का होना। अलौकिक विग्रह तो सभी समासों का होता है। अव्ययीभाव में बना हुआ शब्द अव्यय हो जाता है और उसका रूप नहीं चलता वह सर्वदा नपुसंकलिंग प्रथमा एक वचन में ही रहता है इसीलिए इसका नाम अव्ययीभाव है। विभक्ति के अर्थ में प्रयुक्त – अधिहरि।

समास के दो पदों में किसे पहले रखा जाए और किसे बाद में इसे स्पष्ट करने हेतु उपसर्जन संज्ञा का सूत्र बताया गया है –

उपसर्जन संज्ञा सूत्र –

912 . प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् /1/2/43

समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात् ।

समासशास्त्र में प्रथमा द्वारानिर्दिष्ट को उपसर्जन संज्ञा होती है । समास शास्त्र का तात्पर्य है - समास का विधान करने वाले सूत्रों में । अर्थात् जिन पदों का समास किया जा रहा है उनमें प्रथमा विभक्ति लगाकर जिस पद का निर्देश किया गया हो उसकी उपसर्जन संज्ञा होती है । समझने के लिए – हरि ङि अधि में अव्यय पद अधि की उपसर्जन संज्ञा होगी ।

913 .उपसर्जनं पूर्वम् / 2 /2 /30 समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम। इति अधे: प्राक् प्रयोग: सुपो लुक्, एकदेशविकृतस्याऽनन्यत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्ति: अव्ययीभावश्च इत्यव्ययत्वात् सुपो लुक्-अधिहरि ।

समास में उपसर्जनसंज्ञक पद का प्रयोग पहले ही होता है। जैसे-हरि ङि अधि में अधि उपसर्जन है अत: **'उपसर्जनं पूर्वम्'** सूत्र से उसका प्रयोग पहले होगा और अधि हरि ङि बनेगा ।

'अधिहरि' हरौ अधि इस लौकिक विग्रह और हरि ङि अधि इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम 'अव्ययं विभक्ति समीप – समृद्धि' इत्यादि सूत्र से अव्ययीभाव समास होगा और 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन पद अधि की उपसर्जन संज्ञा होगी । इस स्थिति में 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञक पद अधि का पूर्व में प्रयोग होकर – 'अधि हरि ङि ' हुआ । इस दशा में पुन: ' सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् प्रत्यय ङि का लोप होकर अधिहरि रूप बना किन्तु समास होने से प्रातिपदिक संज्ञा होने पर प्रथमा एकवचन में अधिहरि सु हुआ। पुन:'अव्ययीभावश्च' 1/1/49 सूत्र से अव्यय संज्ञा हुयी ।'अव्ययादाप्सुप: 2/4/82 सूत्र से स्त्रीलिंग में आप् (टाप्, डाप् आदि) प्रत्ययों और सुप् सु और जस् आदि का लोप होता है । ऐसा होने पर अधिहरि रूप सिद्ध हुआ ।

अव्ययीभाव को नपुसंकलिंग करने का नियम

914 . अव्ययीभावश्च / 2 / 4 / 18

अयं नपुंसकं स्यात् । गा: पातीति गोपस्तस्मिन्निति – अधिगोपम् ।

सूत्र का शब्दार्थ है- (च) और (अव्ययीभाव) अव्ययीभाव: .....। सूत्र अपूर्ण होने के कारण स्पष्टीकरण के लिए 'स नपुंसकम्'2/4/17 सूत्र से नपुसंकम् पद की अनुवृत्ति करनी पड़ती है, तब भावार्थ यह होता है कि – अव्ययीभाव समास नपुंसकलिंग होता है । जैसे – अधिगोपम् ।

अधिगोपम् – 'गोपि' लौकिक विग्रह और 'गोपा' ङि अधि' इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम अव्ययं विभक्ति समीपसमृद्धि इत्यादि सूत्र से 'अधि' अव्यय का सुबन्त गोपा ङि के साथ अव्ययीभाव समास होगा और 'प्रथमानिर्दिष्टम् समास उपसर्जनम्पूर्वम्' सूत्र से अव्यय पद अधि की उपसर्जन संज्ञा होगी, तत्पश्चात् 'उपसर्जनम् पूर्वम्' सूत्र से 'अधि' का पूर्व में प्रयोग होकर 'अधि-गोपा ङि ' बना। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्यय ङि का लोप होकर 'अधिगोपा' हुआ । 'अव्ययी भावश्च' सूत्र ह्रस्वोनपुंसके प्रातिपदिकस्य' (नपुंसकलिंग में प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है) से 'अधिगोपा' के अन्तिम स्वर को ह्रस्व करने पर 'अधिगोप' रूप बना । इस स्थिति में एकदेश विकृत होने पर भी सुप् प्रत्यय की प्राप्ति हुयी

और 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्ययीभाव समास की अव्यय संज्ञा हुयी। 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपंचम्या:' सूत्र से इसका निषेध होकर 'अधिगोप सु' हुआ। इस दशा में 'नाव्ययीभावाद0' सूत्र से ही सु को अम् होकर अधि गोप अम् हुआ और 'अमि पूर्व:' सूत्र से पूर्वरूप होकर अधिगोपम् रूप बना।

915 . नाऽव्ययीभावाद् अतोऽम्त्वपञ्चम्या: / 3 / 4 / 83

अदन्ताद् अव्ययीभावात्सुपो न लुक्, तस्य पन्चामी विना अम् अदेश: स्यात्।

अकारान्त अव्ययीभाव के पश्चात् सुप् का लुक् (लोप) नहीं होता है किन्तु पंचमी विभक्ति को छोड़कर अन्य विभक्तियों के बाद सुप् प्रत्ययों के स्थान पर 'अम्' आदेश हो जाता है जैसे- अधिगोप सु में अकारान्त अव्ययीभाव पद है अधिगोप में प मे आ।अत: इस सूत्र से सुप् प्रत्यय सु के स्थान में अम् आदेश होकर अधिगोपम् बनता है।

916 . तृतीया-सप्तम्योर्बहुलम्- 2/4/84/

अदन्ताद् अव्ययीभावात्तृतीया सप्तम्योर्बहुलम् अम्भाव: स्यात् ।उपकृष्णम्,उपकृष्णेन। मद्राणां समृद्धि:सुमद्रम्। यवनानां व्यृद्धि-दुर्यवनम्। मक्षिकाणाम् अभाव: - निर्मक्षिकम्। हिमस्याऽत्यय:- अतिहिमम् निद्रा संम्प्रति न युज्यते इति-अति निद्रम् । हरिशब्दस्य प्रकाश:- इति हरि। विष्णो: पश्चाद् – अनुविष्णु। योग्यता-वीप्सा-पदार्थाऽनतिवृत्ति – सादृश्यानि यथार्था:। रूपस्य योग्यमनुरूपम् ।अर्थंमर्थं प्रतिप्रत्यर्थ,शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति।

सूत्र का शब्दार्थ यह है कि-तृतीय सप्तम्यो: अर्थात् तृतीय और सप्तमी विभक्ति के स्थान पर **बहुलम्** (विकल्प) से अम् आदेश होता है। किन्तु क्या बहुल होता यह बात सूत्र से स्पष्ट नहीं है, अत: स्पष्टीकरण हेतु पूर्व के सूत्र 'नाव्ययीभावादतोऽम्0'2/4/83इत्यादि सूत्र से 'अत:''अव्ययीभावाद्' और अम् की अनुवृत्ति करनी होगी। तब सूत्र का भावार्थ यह होगा कि – अकारान्त अव्ययीभाव के पश्चात् तृतीया विभक्ति (टा) और सप्तमी विभक्ति (ङि) के स्थान पर बहुलता (विकल्प) से अम् आदेश होता है। कहीं पर आदेश नहीं भी होता है जैसे-उपकृष्णम्

उपकृष्णम् – 'कृष्णस्य समीपम्' लौकिक विग्रह तथा 'कृष्ण ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम 'अव्ययं विभक्तिसमीप0' सूत्र से समीपता के अर्थ में अव्यय उप के साथ सुबन्त ङस् का अव्ययीभाव समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय पद उप की उपसर्जन संज्ञा हुयी 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्व में प्रयोग होकर 'उप कृष्ण ङस्' हुआ। 'सुपो धातु प्रातिपदिकयो:'सूत्र से सुप् प्रत्यय ङस् का लोप होकर 'उपकृष्ण' हुआ। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय की प्राप्ति होने पर 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप प्राप्त होने पर 'नाऽदव्ययीभावादतोऽम्त्वपंचम्या:' सूत्र से लोप का निषेध होकर सु के स्थान में अम् आदेश होकर 'उपकृष्णम्' रूप बना। इसी प्रकार तृतीया और सप्तमी विभक्ति में 'तृतीया सप्तम्योर्बहुलम्' सूत्र से 'उपकृष्णम्' के स्थान पर उपकृष्णेन तथा 'उपकृष्णे ' भी बनेगें।

सुमद्रम्- (मद्र देश की समृद्धि) ' मद्राणां समृद्धि ' इस लौकिक विग्रह और ' मद्र आम् सु ' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में ' अव्ययं विभक्तिसमीप0 ' सूत्र से समृद्धि अर्थ में अव्यय सु के साथ सुबन्त पद का अव्ययीभाव समास होगा। ' प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् ' सूत्र से अव्यय सु की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्व में प्रयोग होगा 'सुमद्र

आम्'बना। सुपो धातु प्रातिपदिकायो:' से विभक्ति आम् का लोप होकर 'सुमद्र'बना। 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' न्याय से प्रथमा एकवचन में सु प्राप्त होगा । 'अव्ययीभावश्च' (1/2/41)सूत्र से 'सुमद्र' को अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुप:'सूत्र से सुप् विभक्ति का लोप प्राप्त हुआ , किन्तु 'नाऽव्ययीभावदतोऽम्त्वपंचम्या:'सूत्र से सु का लोप न होकर उसे अम् आदेश होकर सुमद्रम् बन जायेगा।

निर्मक्षिकम्-(मक्खियों का आभाव) 'मक्षिकाणाम् अभाव:' लौकिक विग्रह तथा 'मक्षिका आम् निर् ' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से निर् इस अव्यय का अभाव अर्थ होने से अव्ययीभाव समास होगा । 'प्रथमा निर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय निर् की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' से निर् को पूर्व में – प्रयोग होकर निर् मक्षिका आम्'बना । 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' से आम् का लोप होकर 'निर्मक्षिका बना। इस दशा में 'अव्ययी भावश्च' (1/1/14) से इसकी अव्यय संज्ञा होगी तथा 'अव्ययीभाश्च'(1/1/18) सूत्र से नपुंसकलिंग होकर 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से निर्मक्षिका के आ को ह्रस्व होकर ' निर्भक्षिक' बना । 'एक देश विकृतमनन्यवत' न्याय से प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय प्राप्त हुआ। इस दशा में 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप प्राप्त था किन्तु ' नाऽव्ययीभावदतोऽम्त्वपंचम्या:' सूत्र से सु को अम् आदेश होकर निर्मक्षिकम् रूप सिद्ध हुआ।

अतिहिमम् – (हिम का नाश)'हिमस्य अत्यय:' अत्यय:' लौकिक विग्रह तथा ' हिम ङस् अति' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्ध0' सूत्र से अत्यय का नाश अर्थ वाले अव्यय 'अति' के साथ सुबन्त पद का अव्ययीभाव समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय 'अति' की उपसर्जन संज्ञा हुयी। 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होकर –अतिहिम ङस् हुआ । इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' से विभक्ति प्रत्यय ङस् का लोप होकर 'अतिहिम' हुआ । इस दशा में प्रथमा विभक्ति में सु प्राप्त होगा, किन्तु 'अव्ययीभावश्च' /1/4 / 41 / सूत्र से अव्यय संज्ञा होगी। इस दशा में 'अव्ययादाप्सुप:' से सुप् विभक्ति प्रत्यय का लोप प्राप्त था किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपंचम्या:' से सु को अम् आदेश होकर अतिहिमम् रूप सिद्ध हुआ।

अतिनिद्रम्- (निद्रा इस समय उचित नहीं है) 'निद्रा सम्प्रति न युज्यते' लौकिक विग्रह तथा 'निद्रा सु अति' इस अलौकिक विग्रह में' 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' इस सूत्र से असम्प्रति अर्थात् अनौचित्य अर्थ में आये अति अव्यय का सुबन्त के साथ समास होगा । इस स्थिति में 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय अति की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व प्रयोग हुआ । अतिनिद्रा ङस् इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से इस विभक्ति ङस् प्रत्यय का लोप हुआ – अतिनिद्रा । इस दशा में 'अव्ययीभावश्च' /2/4/18/ इस सूत्र से नपुंसकलिंग होगा तथा 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से निद्रा के आ को ह्रस्व हुआ – 'अतिनिद्रं प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय प्राप्त हुआ तथा 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा होगी । इस दशा में 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपंचम्या:' से सु को अम् होकर 'अतिनिद्रम' रूप सिद्ध हुआ।

इतिहरि- (हरि शब्द का प्रकाश) 'हरिशब्दस्य प्रकाश:' इस लौकिक विग्रह तथा 'हरि ङस्' इति' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्ति समीपसमृद्ध0' इस सूत्र से शब्दप्रादुर्भाव अर्थ में प्रयुक्त इति अव्यय का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होगा ।'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय की उपसर्जन संज्ञा हुयी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से इति पूर्व में रखा जाने पर इतिहरि ङस्'हुआ । इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय ङस्' का लोप होने पर इतिहरि हुआ । प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आने पर 'अव्ययीभावश्च' (1/1/41) सूत्र से इसकी अव्यय संज्ञा होने पर 'अव्ययादाप्सुप:' से सु को लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'अव्ययीभावश्च' 2/4/18 से नपुंसकलिंग होकर-इतिहरि रूप सिद्ध हुआ ।

अनुविष्णु- विष्णु के पश्चात्)'विष्णो: पश्चाद्' इस लौकिक विग्रह में तथा 'विष्णु ङस्'अनु' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' इस सूत्र से पश्चात् अर्थ में अनु अव्यय का सुबन्त 'विष्णो' के साथ अव्ययीभाव समास होगा । 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय की उपसर्जन संज्ञा हुयी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से अनु का पूर्व में प्रयोग होकर 'अनुविष्णु ङस् हुआ । सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्रसे ङस्' का लोप होकर-अनुविष्णु हुआ । इस दशा में प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति प्रत्यय प्राप्त होगा , किन्तु अव्ययीभावश्च' 1/1/41 सूत्र से अव्यय संज्ञा होने के कारण 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सु को लोप प्राप्त हुआ । 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से नपुसंकलिंग होकर अनुविष्णु रूप सिद्ध हुआ ।

अनुरूपम्- (रूप के योग्य) ' रूपस्य योग्यम्' इस लौकिक विग्रह तथा 'रूप ङस्' अनु' इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से यथा के योग्यता अर्थ में अव्यय के अनु का सुबन्त पद रूप ङस्' के साथ अव्ययीभाव समास होगा । पुन: 'प्रथमानिर्दिष्टं मास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय पद अनु की उपसर्जन संज्ञा होगी तथा 'अनुरूप ङस्' बना । इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्यय ङस्' का लोप होकर 'अनुरूप' बना ।इसके पश्चात् प्रथमा विभक्ति की विवक्षा में सु विभक्ति आने पर 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा होगी और 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप का निषेध होकर अम् होने पर अनुरूप +अम् बना। 'अमि पूर्व:' सूत्र से पूर्व रूप करने पर अनुरूपम् रूप सिद्ध हुआ ।

प्रत्यर्थम्- (प्रत्येक अर्थ में) 'अर्थम् अर्थम् प्रति' इस लौकिक विग्रह तथा 'अर्थ अम् प्रति' इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से यथा के वीप्सा अर्थ में प्रति अव्यय का सुबन्त पद 'अर्थम' के साथ अव्ययीभाव समास होगा । ' प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय का प्रथमा में निर्देश होने से अव्यय पद 'प्रति' की उपसर्जन संज्ञा होगी । 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्व में प्रयोग होगा-प्रत्यर्थ अम्। 'सुपो-धातुप्रातिपदिकायो: सूत्र से विभक्ति प्रत्यय अम् का लोप हुआ तो – प्रत्यर्थ बना । इस दशा में प्रथमा विभक्ति का सु प्राप्त होने पर 'अव्ययीभावश्च' 1/1/41 सूत्र से इसकी अव्यय संज्ञा होने पर 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सु को लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्यीभावादतेऽम्त्वपंचम्या:' सूत्र से लुक् न होकर सुप् के स्थान में अम् आदेश होकर प्रत्यर्थम् रूप सिद्ध हुआ ।

यथाशक्ति- (शक्ति का अतिक्रमण न करते हुए, शक्ति के अनुसार)। 'शक्तिम् अनतिक्रम्य' इस लौकिक विग्रह तथा 'शक्तिअम् यथा' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्रसे अव्यय यथा का अतिक्रमण न कर अर्थ में सुबन्त पद शक्तिम् के

साथ अव्ययीभाव समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय पद की उपसर्जन संज्ञा होगी और 'उपसर्जनं पूर्वम' सूत्र से अव्यय पद 'यथा' का पूर्व में प्रयोग होगा तो 'यथाशक्ति अम्' हुआ। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय अम् का लोप होकर- 'यथाशक्ति' । प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति आने पर 'अव्ययीभावश्च' (1/1/41) से अव्यय संज्ञा, तथा 'अव्ययादाप्सुप:' से सुप् विभक्ति का लुक् होगा। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से नपुंसकलिंग होकर यथाशक्ति रूप सिद्ध हुआ।

अभ्यास प्रश्न-

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए -

1.समास का क्या अर्थ है –

क. विस्तार ख. संक्षेपीकरण

ग. समूह घ . मेल

2. समास कितने प्रकार के होते हैं –

क. सात ख. आठ

ग. छ: घ . पॉंच

3. विशेष संज्ञा से मुक्त समास कहलाता है –

क. अव्ययीभाव ख. केवल

ग. द्विगु घ . कर्मधारय

4. निम्नलिखित में पूर्वपदप्रधान अर्थ का समास है –

क. द्विगु ख. अव्ययीभाव

ग. कर्मधारय घ . तत्पुरूष

5. विभक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला समास है –

क. द्विगु ख. तत्पुरूष

ग. कर्मधारय घ . अव्ययीभाव

6. अन्यपदार्थ प्रधान समास है –

क. द्विगु ख. बहुव्रीहि

ग. कर्मधारय घ . अव्ययीभाव

7. उपकृष्णम् में उप का अर्थ है –

क. समीप ख. अन्तराल

ग. दूर घ . कोई नहीं

8. ' मद्राणां समृद्धि ' के लिए पूर्ण शब्द बनेगा –

क. सतृणम् ख. अतृणम्

ग. सुमद्रम् घ . कोई नहीं

9 मक्षिकाणाम् अभाव:' में समास किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है –

क. सम्पत्ति ख. सम्पूर्णता

ग. सादृश्य घ . अभाव

10. यथाशक्ति-शब्द किस अर्थ से सम्बन्धित है -

क. भ्रमण ख. वाचन

ग. मंथन घ . अनतिक्रम्य

1.4 सारांश:-

जब व्यापेक्षा और एकार्थीभाव से संयुक्त समर्थ पद का आश्रय ग्रहण करके समास निर्माण किया जाता है तो उसे केवल समास कहा जाता है किन्तु अव्ययीभाव समास सर्वप्रथम विभक्ति आदि 16 अर्थो में प्रयुक्त होता है। जैसे - विभक्ति, समीप समृद्धि, समृद्धि का नाश, अभाव, नाश, अनुचित,शब्द की अभिव्यक्त,पश्चात् यथा, क्रमश: , एकसाथ, समानता, सम्पत्ति, सम्पूर्णता और अन्त-इन सोलह अर्थो में वर्तमान अव्यय का सुबन्त के साथ समास होता है और उस समास की अव्यीभाव संज्ञा होती है। इस इकाई में आपने उपर्युक्त 16 अर्थो के अन्तर्गत सादृश्यता तक का अर्थ बताने वाले सभी प्रयोगों की सिद्धि का अध्ययन किया है। अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप विभक्ति, समीप समृद्धि, समृद्धि का नाश, अभाव, नाश, अनुचित,शब्द की अभिव्यक्त,पश्चात् यथा,क्रमश: , एकसाथ, समानता, तक के अन्तर्गत आने वाले अर्थों में सिद्ध होने वाले सभी प्रयोगों के विषय में विस्तार से बता सकेगें। साथ ही समास ज्ञान की पूर्व पीठिका से भी परिचित होते हुए संस्कृत व्याकरण में समास की प्रारम्भिक प्रक्रिया का ज्ञान करा सकेगें।

1.5 शब्दावली:-

1. समास शब्द का अर्थ -**समएनम् अनेकपदानाम् एकपदीभवनं समास**:, ।

जैसे- **राज्ञ**: **पुरूष** : **राजपुरूष**: - राजा का पुरूष।

2. **प्रायेणअविग्रह**- जिसका प्राय: लौकिक विग्रह नहीं होता है।

3. **प्रायेण अस्वपदविग्रह** – प्राय:जिन पदों का समास हुआ है उनके द्वारा लौकिक विग्रह न होकर उनसे किसी भिन्न पद को लेकर विग्रह का होना।

4.**सचक्रम्**- (चक्र के साथ-साथ)

5.**यथा शक्ति** –शक्ति का अतिक्रमण न करते हुए।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:-

1. ख. संक्षेपीकरण

2. घ. पॉच

3. ख. केवल

4. ख. अव्ययीभाव

5 .घ . अव्ययीभाव

6. ख. बहुव्रीहि

7. क. समीप

8. ग. सुमद्रम्

9 .घ अभाव

10 घ अनतिक्रम्य

1.7 उपयोगी पुस्तकें:-

क्रमसं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1.	वैयाकरण सिद्धान्त	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुरभारती
2.	लघु सिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. समास को परिभाषित कर केवल समास का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए
2. अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि इत्यादि सूत्र की विस्तृत विवेचना कीजिए
3. निम्नलिखित की सूत्रोल्लेखपूर्वक सिद्धि कीजिए –

क - अनुरूपम्

ख – उपकृष्णम्

इकाई 2. अव्ययीभावे चाऽकाले सूत्र से झय: सूत्र तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 अव्ययीभावे चाऽकाले सूत्र से झय: सूत्र तक व्याख्या
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना:-

कारक एवं समास प्रकरण, खण्ड प्रथम - समास प्रकरण के वर्णन की यह द्वितीय इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने कारक तथा केवल समास एवं अव्ययीभाव के कुछ प्रक्रियात्मक व्याकरण के सूत्रों का सम्यक् अध्ययन किया है। इस इकाई में अव्ययीभावे चाऽकाले सूत्र से झय: सूत्र तक की व्याख्या सम्यग् रूप से आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है। अव्ययीभावे चाऽकाले सूत्र का शब्दार्थ है कि (च) और (अव्ययीभावे) अव्ययीभाव में (अकाले) अकालवाची होने पर। किन्तु इसे ठीक – ठीक जाने के लिए 'सहस्य स: संज्ञायाम्' 6/3/78/ सूत्र से सहस्य और सह पदों की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। तब सूत्र का भावार्थ होता है - यदि काल वाचक पद परे न हो तो अव्ययीभाव समास में सह के स्थान पर स: आदेश होता है। उदाहरणों को इस इकाई का वर्ण्य विषय बनाया गया है।

1.2 उद्देश्य:-

अव्ययीभाव समास के अव्ययीभावे चाऽकाले सूत्र से झय: सूत्र तक वर्णन से सम्बन्धित इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि –

- ❖ अव्ययीभावे चाऽकाले सूत्र का क्या अर्थ होता है।
- ❖ नदीभिश्च सूत्र की क्या उपयोगिता है।
- ❖ तद्धिता: सूत्र की व्याख्या क्या है।
- ❖ अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य: सूत्र का क्या महत्व है ।
- ❖ सचक्रम् प्रयोग किस प्रकार सिद्ध होगा।

2.3 अव्ययीभावे चाऽकाले सूत्र से झय: सूत्र तक व्याख्या

917 . अव्ययीभावे चाऽकाले /6/3/81 /

सहस्य स: स्याद् अव्ययीभावे न तु काले। हरे: सादृश्यम् सहरि। ज्येष्ठस्यानु··नुपूर्व्येण इति अनुज्येष्ठम्। चक्रेण युगपत् सचक्रम्। सदृश: संख्या स सखि। क्षत्राणां सम्पत्ति: स क्षत्रम्। तृणमप्यपरित्यज्य स तृणम् अत्ति। अग्निग्रन्थपर्यन्तम् अधीते सा·ग्नि।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि (च) और (अव्ययीभावे) अव्ययीभाव में (अकाले) अकालवाची होने पर। किन्तु इसे ठीक –ठीक जाने के लिए 'सहस्य स: संज्ञायाम्' 6/3/78/ सूत्र से सहस्य और सह पदों की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। तब सूत्र का भावार्थ होगा- यदि काल वाचक पद परे न हो तो अव्ययीभाव समास में सह के स्थान पर स आदेश होता है। उदाहरण के लिए आगे प्रयोग देखिये

सहरि- (हरि के समान) 'हरे: सादृश्यम्' इस लौकिक विग्रह में तथा 'हरि टा सह' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' इस सूत्र से अव्यय सह का यथा के सादृश्य अर्थ में सुबन्त पद के साथ अव्ययी भाव समास हुआ । 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से 'अव्यय' प्रथमा विभक्ति द्वारा निर्दिष्टं होने के कारण अव्यय पद सह की उपसर्जनसंज्ञा होगी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से इसका पूर्व में प्रयोग होकर 'सह हरि टा' बना। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति टा का लोप लोप होकर 'सह हरि' बना।

इसमें उत्तरपद हरि कालवाची नहीं है अत: 'अव्ययीभावे चाऽकाले' सूत्र से सह के स्थान पर स आदेश होकर सहरि रूप सिद्ध हुआ।

अनुज्येष्ठम् - (ज्येष्ठ के क्रम से) 'ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण' लौकिक विग्रह तथा 'ज्येष्ठ अनु' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से अव्यय अनु का आनुपूर्व्य या क्रम के अर्थ में सुबन्त पद ज्येष्ठस्य के साथ अव्ययीभाव समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अनु की उपसर्जन संज्ञा हुयी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होकर-अनुज्येष्ठ ङस् बना। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो: सूत्र से विभक्ति प्रत्यय ङस् का लोप होकर- अनुज्येष्ठ बना। इस दशा में प्रथमा एकवचन में सु होने पर 'अवययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा होकर 'अवययादाप्सुप:' सूत्र से सु का लोप हुआ किन्तु 'नाव्ययीभावदतोम्त्वपन्चम्या:' सूत्र से लोप का निषेध होकर उसे अम् आदेश होकर 'अनुज्येष्ठम्' रूप सिद्ध हुआ।

सचक्रम्- (चक्र के साथ-साथ) 'चक्रेण युगपत्' इस लौकिक विग्रह में तथा 'चक्र टा सह' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से यौगपद्य(=एक साथ)के अर्थ में आये हुए अव्यय पद का सुबन्त पद चक्रेण के साथ अव्ययीभाव समास प्राप्त हुआ। सूत्र में अव्यय प्रथमा है अत: 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय पद सह की उपसर्जन संज्ञा हुयी । इस दशा में 'उपसर्जनं पूर्वम्' इस सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होकर सहचक्र+टा' हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् प्रत्यय टा का लोप होकर-सहचक्र बना। इस दशा में 'अव्ययीभावे चाऽकाले' सूत्र से सह को स हुआ –सचक्र। प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति प्रत्यय आने पर 'अव्ययीभावश्च' 1/1/4 । सूत्र से अव्यय संज्ञा हुयी तथा 'अव्ययादाप्सुप: सूत्र से सु के लोप का निषेध होकर अम् आदेश होकर- सचक्रम् रूप सिद्ध हुआ।

ससखि- (मित्र के सदृश)। 'सदृश: सख्या' इस लौकिक विग्रह तथा 'सखि टा सह' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'प्रथमा निर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से सादृश्य के अर्थ में आये हुए अव्यय पद 'सह'की सुबन्त पद सखि के साथ के साथ अव्ययीभाव समास हुआ। 'सह सखि टा' । इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सह के स्थान पर स होकर 'ससखि' बना। इस स्थिति में प्रथमा विभक्ति एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय प्राप्त हुआ किन्तु 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा होने के कारण 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप होकर 'ससखि' रूप सिद्ध हुआ।

सक्षत्रम् - (क्षत्रियों की संपत्ति) 'क्षत्राणां सम्पत्ति:' इस लौकिक विग्रह तथा 'क्षत्रभिस् सह' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से सम्पत्ति के अर्थ में आये हुए अव्यय सह का सुबन्त पद के साथ अव्ययीभाव समास हुआ। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय 'सह' की उपसर्जन संज्ञा हुयी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होकर 'सहक्षत्र भिस्' रूप बना। अब इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् प्रत्यय का लोप होकर 'सहक्षत्' रूप बना। अब 'अव्ययीभवे चाऽकाले सूत्र से सह को

स हुआ – सक्षत्र प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होने पर 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा हुयी तथा 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सु को लोप प्राप्त है किन्तु 'नाव्ययीभावादतोम्त्वपन्चम्या:' सूत्र से उसका निषेध हुआ तथा अम् आदेश होकर 'सक्षत्रम्' रूप सिद्ध हुआ।

सतृणम्- (तृण को भी न छोड़ते हुए सबको)'तृणम् अपि अपरित्यज्य' इस लौकिक विग्रह तथा 'तृण टा सह' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से उपसर्जन संज्ञाहोकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से सह का पूर्व में प्रयोग होकर - सहतृण बना। अब 'अव्ययीभावेचाऽकाले' सूत्र से सह के ह का लोप होकर स हुआ- सतृण। इस दशा में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होने पर 'अव्ययीभावश्च' 1/1/41 सूत्र से अव्यय संज्ञा हुयी तथा 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सु विभक्ति प्रत्यय का लोप प्राप्त हुआ किन्तु नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपन्चम्या:' सूत्र से लोप का निषेध हुआ तथा सुप् प्रत्यय के स्थान पर 'अम्' आदेश होकर 'सतृणम्' रूप सिद्ध हुआ।

साग्नि- (अग्नि चयन के अन्त तक) 'अग्निग्रन्थपर्यन्तम् अधीते' इस लौकिक विग्रह तथा 'अग्नि टा सह' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से अन्त के अर्थ में प्रयुक्त अव्यय सह का सुबन्त पद के साथ अव्ययीभाव समास का निर्देश प्रथमा विभक्ति से होने के कारण अव्यय 'सह' की उपसर्जन संज्ञा हुयी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से सुप् आदि प्रत्यय का लोप होकर-सहाग्नि रूप बना। 'अव्ययीभावे चाऽकाले' सूत्र से सह को स होकर-साग्नि हुआ। प्रथमा विभक्ति एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति प्रत्यय प्राप्त हुआ, किन्तु 'अव्ययीभावश्च' सूत्र 1/1/41 से अव्यय संज्ञा होने के कारण 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् को लोप होकर साग्नि रूप सिद्ध हुआ।

918. नदीभिश्च 2/1/20 नदीभि: सह संख्या समस्यते।

(वार्त्तिक) समाहारे चायमिष्यते। पंचगंगम्। द्वियमुनम्।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि (च) और (नदीभि) नदियों से .....। इस सूत्र के स्पष्टीकरण के लिए या इसे ठीक-ठीक समझने के लिए 'सख्या वंश्येन' 2/1/19/ सूत्र से संख्या की अनुवृत्तिकरनी पड.ती है। सूत्र में 'प्राक्डारात् समास' 2.1.3. सूत्र का तथा 'अव्ययीभाव:' 2/1/5 का अधिकार प्राप्त है। तब सूत्र का भावार्थ होगा- नदियों अर्थात् संख्यावाचक शब्द का समास होता है । तथा वह समास अव्ययीभाव-संज्ञक होता है। यहा पर 'समाहारे चायमिष्यते' इस वार्त्तिक से वह समुदाय अर्थ में ही होगा। उदाहरण के रूप में 'पंचगंगम् में समुदायके अर्थ में संख्यावाची 'पंच'का नदी विशेषवाचक 'गंगा' के साथ समास हुआ इसी प्रकार द्वियमुनम् में भी द्वि और यमुना का समास होता है। यह समास 'समाहार' या 'समूह' के अर्थ में होता है।

पन्चगंगम्- (पॉच गंगाओं का समूह)

'पंचानां गंगानां समाहार:लौकिक विग्रह तथा पंचन् आम् गंगा आम् 'अलौकिक विग्रह में 'नदीभिश्च' इस सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ तथा 'समाहारे चायमिष्यते' इस वार्त्तिक से समास समाहार अर्थ में हुआ 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय आम् का लोप होकर 'पंचन् गंगा' हुआ। इस स्थिति में 'न लोप: प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से पन्चन् संख्यावाची के न् का लोप होकर 'पन्च गंगा' रूप बना। अब 'एकविभक्तिचापूर्वनिपाते' सूत्र

से गंगा शब्द की उपसर्जन संज्ञा हुयी तथा 'गोस्त्रियोरूपसर्जनस्य' सूत्रसे 'गंगा' को ह्रस्व होकर 'पन्चगंग' हुआ इस स्थिति में 'अव्ययीभावश्च' 1/1/41/ सूत्रसे अव्यय संज्ञा हुयी तथा 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्यय का लोप हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपन्चम्या:' इस सूत्र से लोप का निषेध होकर 'अम्' आदेश होकर 'पन्चगंगम्' रूप सिद्ध हुआ।

द्वियमुनम् (दो यमुना का समूह)

'द्वयो: यमुनयो: समाहार:' इस लौकिक विग्रह में तथा 'द्वि ओस् यमुना ओस्' इस अलौकिक विग्रह में 'नदीभि:' सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ किन्तु यहॉ पर यह समास' समाहारे चायमिष्यते' इस वार्त्तिक से समाहार अर्थ में होगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् का लोप हुआ –द्वियुना' । इस स्थिति में एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' इस सूत्र से यमुना की उपसर्जनसंज्ञा होकर 'गोस्त्रियो: उपसर्जनस्य' सूत्र से यमुना को ह्रस्व 'द्वियमुन' रूप बना ।अब समास होने की दशा में 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होने से प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु आदि विभक्ति प्रत्यय प्राप्त हुआ किन्तु 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप प्राप्त होगा किन्तु 'नाऽव्ययीभवादतोऽम्पंचम्या: ' सूत्र से लोप का निषेध हुआ तथा सुप् को अम् आदेश होकर – 'द्वियमुनम्' रूप सिद्ध होता है।

919 तद्धिता: /4/1/76 आ पन्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम्।

प्रस्तुत सूत्र अधिकार सूत्र है। सूत्र का शब्दार्थ यह है कि – (तद्धिता) तद्धित होते है। इस अधिकार सूत्र का अधिकार पॉचवें अध्याय के चतुर्थ पाद के अन्तिम सूत्र 'निष्प्रवाणिश्च' 5/4/160 तक है। तब सूत्र का भावार्थ होगा-'तद्धिता:' सूत्र से लेकर 'निष्प्रवाणिश्च' सूत्र तक जिन प्रत्ययों का विधान किया गया है, उन्हें तद्धित कहा जाता है।

920. अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य: /5/4/107/

शरदादिभ्यस्टच स्यात्समासान्तोऽव्ययीभावे। शरद: समीपम्- उपशरदम्। प्रतिविपाशम्।

(गण सूत्र) जराया जरस्। उपजरसमित्यादि।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ यह है कि – (अव्ययी भावे) अव्ययीभाव में तथा (शरत्प्रभृतिभ्य:) 'शरद्' आदि से ..... । किन्तु यहॉ पर होता क्या है इसे ठीक-ठीक जानने के लिए 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' 5/4/91/ से टच् की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। सूत्र में 'समासान्ता:' 5/4/68/ सूत्र का अधिकार प्राप्त है। तब सूत्र का भावार्थ यह होगा- अव्ययीभाव समास में 'शरद' आदि से समासान्त टच प्रत्यय होता है। यहॉ पर टच् में टकार और चकार इत्संज्ञक है, इसलिए केवल अ ही शेष बचता है। उदाहरण के लिये 'शरद: समीपम्' में समीप अर्थ में वर्तमान उप अव्यय का 908 – 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से सुबन्त शरद: के साथ समास होकर उपशरदम् रूप बनता है। इस दशा में प्रकृत सूत्र तद्वित प्रत्यय टच् होकर 'उपशरद् अ' = 'उपशरद' हो प्रथमा एकवचन की विवक्षा में प्रातिपदिक संज्ञा होकर उपशरदम् रूप बनता है। इसी प्रकार गणसूत्र 'जराया जरस्' से जराया:समीपम् (बुढापे के निकट) इस विग्रह में 'उप' अव्यय का -908 – 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से सुबन्त जराया के साथ समास होने पर 'जरा' के स्थान पर 'जरस्' और 'टच्'आदि होकर 'उपजरसम्' रूप बनता है।

उपशरदम् - (शरद के समीप) 'शरद:समीपम' इस लौकिक विग्रह में तथा 'शरद ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से समीप के अर्थ में

प्रयुक्त अव्यय उप को सुबन्त पद के साथ समास हुआ। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय पद उप की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होकर 'उपशरद ङस्' बना। इस स्थिति में 'सुपो धातु प्रतिपदिकयो: सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्यय ङस् का लोप होकर उपशरद् बना। अब 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:' सूत्र से अव्ययीभाव समास होकर शरद् से टच् प्रत्यय हुआ ट्कार तथा चकार का लोप होकर उपशरद्+अ = उपशरद हुआ। इस स्थिति में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय प्राप्त हुआ। 'अव्ययीभावश्च' 1/1/41 सुत्र से अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपन्चम्या:' सूत्र से लोप का निषेध होकर सु के स्थान में अम् आदेश होकर उपशरदम् रूप सिद्ध हुआ।

प्रतिविपाशम् - (विपाशानदी की ओर) 'विपाशाया: अभिमुखम्' इस लौकिक विग्रह तथा 'विपाश् अम् प्रति' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'लक्षणेनाभिप्रति अभिमुख्ये' सूत्र से अभिमुख अर्थ में प्रति अव्यय का सुबन्त पद के साथ समास होगा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से अव्यय पद प्रति का पूर्व में प्रयोग होगा तो-प्रतिविपाश् अम् हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर प्रतिविपाश: रूप बना। इस स्थिति में 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर समासान्त प्रत्यय टच् हुआ –प्रतिविपाश टच्। प्रतिविपाश् टच्। टच् में ट् और च का लोप होकर 'प्रतिविपाश' अ हुआ। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय प्राप्त होगा किन्तु 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र 1/1/41 से अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सु विभक्ति का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपन्चम्या:' सूत्र से लोप का निषेध हुआ। तथा अम् आदेश होकर 'प्रतिविपाश् अम् हुआ। इस दशा में 'अमि पूर्व:' सूत्र से पूर्वरूप एकादेश होकर-प्रतिविपाशम् रूप सिद्ध हुआ।

उपजरसम्- (वृद्धावस्था के निकट)

'जराया: समीपम्' इस लौकिक विग्रह में तथा 'जरा ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह में ही 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से समीप के अर्थ में आये उप अव्यय का सुबन्त पद जराया: के साथ अव्ययीभाव समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय उप की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्व में प्रयोग होगा- 'उप जरा ङस्' इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकायो:' सूत्र से सुप् प्रत्यय ङस् का लोप होगा 'उपजरा' इस दशा में गणपाठ 'जराया जरस्' से जरा को जरस् होकर –उपजरस् हुआ। समासान्त टच् प्रत्यय होकर ट्कार और चकार का लोप हुआ – उपजरस। अब प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति प्रत्यय प्राप्त होने पर 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा हुयी। 'अव्ययादाप्सुप:' इस सूत्र से सु का लोप न होकर अम् आदेश हुआ – उपजरस अम्। इस स्थिति में 'अमि पूर्व:' सूत्र से पूर्वरूप आदेश होकर 'उपजरसम्' रूप सिद्ध होता है।

921. अनश्च /5/4/108

अन्नन्ताद् अव्ययीभावात् टच् स्यात्।

सूत्र का भावार्थ यह है कि जिस अव्ययीभाव पद के अन्त में अन् हो ऐसे समासान्त पद को टच् प्रत्यय होता है। जैसे 'राज्ञ: समीपम्' = उपराजम्। राजन् ङस् उप अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से समीपता के अर्थ में आये हुए उप का सुबन्त पद के साथ

अव्ययीभाव समास होगा। उपसर्जन संज्ञा और पूर्व में प्रयोग करने पर उपराजन् + ङस् होगा तथा सुप् लोप करने पर उपराजन् बनेगा। किन्तु 'अनश्च' सूत्र से अन् अन्त में होने के कारण समासान्त टच् प्रत्यय होगा –उपराजन् +टच्। 'नस्तद्धिते' सूत्र से उपराजन् के टी अन् का लोप होकर उपराज् +टच् हुआ। ट्कार और चकार का लोप होकर उपराज् अ = उपराज हुआ। प्रथमा एकवचन में सु की प्राप्ति और अव्यय संज्ञा होने पर 'अव्ययादाप्सुप:' से सुप् का लोप प्राप्त होगा किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपन्चम्या:' सूत्र से लोप का निषेध होकर अम् आदेश हुआ उपराज् अम्।'अमि पूर्व:' सूत्र से पूर्व रूप होकर उपराजम् रूप सिद्ध होता है।

922 नस्तद्धिते /6/4/144

नान्तस्य भस्य टेलोर्पस्तद्धिते। उपराजम्।अध्यात्मम्।

सूत्र का तात्पर्य यह है कि भसंज्ञक नकारान्त अंग से परे यदि तद्धित प्रत्यय आता हो तो भसंज्ञक अंग के टि का लोप हो जाता है। 'यचि भम्' सूत्र यादि और यजादि प्रत्यय परे रहते पूर्ववर्ती शब्द समुदाय की भ संज्ञा होती है।

अध्यात्मम् –(आत्मा में) 'आत्मनि अधि' इस अलौकिक तथा 'आत्मन् ङि अधि' इस अलौकिक विग्रह में अधि अव्यय के विभक्ति अर्थ में होने के कारण सुबन्त पद आत्मनि के साथ अव्ययीभाव समास होता। शेषकार्य उपराजम् की भाँति ही सिद्ध होगें।

923 . नपुंसकादन्यतरस्याम् /5/4/109

अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावात् टज्वा स्यात् उपचर्मम् उपचर्म।

जब कभी अव्ययीभाव के अन्त हो और वह पद नपुंसकलिंग में हो तो उसे विकल्प से टच् प्रत्यय होता है। जैसे उपचर्मम्- समीपता के अर्थ में 'चर्मण: समीपम् और 'चर्मन् ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से उप का सुबन्त चर्मण:से अव्ययीभाव समास होगा। उपसर्जन संज्ञा और पूर्व में प्रयोग होने पर 'उपचर्मन ङस्' होगा। सुप् लोप होगा 'उपचर्मन्' होगा और 'अनश्च' सूत्र से टच् प्रत्यय का विधान करने पर उपचर्मन टच् होगा।

'नस्तद्धिते' सूत्र से नकारान्त भसंज्ञक चर्मन् के टि के अन् का लोप और अम् आदेश होने पर उपचर्मम् रूप सिद्ध होता है।

924 . झय: / 5 / 4 / 111

झयन्तादव्ययीभावात् टच् वा स्यात्। उपसमिधम् उपसमित्।

यदि कहीं पर झय् प्रत्याहार का वर्ण अव्ययीभाव के अन्त में आया हो तो उससे भी समासान्त टच् प्रत्यय विकल्प से होता है। जैसे-

उपसमिधम् – (समीपता के अर्थ में) 'समिध:समीपम्' लौकिक और 'समिध् ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'अव्ययं विभक्ति0' इत्यादि सूत्र से अव्यय पद उप का सुबन्त पद समिध् के साथ अव्ययीभाव समास होगा। उपसर्जन संज्ञा और पूर्व में प्रयोग होकर-उपसमिध ङस् होगा। सुप् लोप होने पर 'उपसमिध्'बनेगा। 'झय:' सूत्र से टच् प्रत्यय करने पर ट्कार और चकार का लोप करने पर उपसमिध् अ= उपसमिध बनेगा। प्रथमा एकवचन में सु की प्राप्ति, अव्यय संज्ञा और अम् आदेश होने पर उपसमिधम् प्रयोग सिद्ध होगा। इसी प्रकार 'झलां जशोऽन्ते' सूत्र से ध् को द् होकर उपसमिद् और 'वाऽवसाने' सूत्र द् को त होकर उपसमित् प्रयोग बनेगा।

अभ्यास प्रश्न

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए -

1. सहरि- का क्या अर्थ है –

क. विस्तार ख. संक्षेपीकरण

ग. समूह घ . हरि के समान

2. इस इकाई में कितने सूत्र हैं –

क. सात ख. आठ

ग. छ: घ . चार

3. इस इकाई में किस समास का वर्णन हैं –

क. अव्ययीभाव ख. केवल

ग. द्विगु घ . कर्मधारय

4. निम्नलिखित में पूर्वपदप्रधान अर्थ का समास है –

क. द्विगु ख. अव्ययीभाव

ग. कर्मधारय घ . तत्पुरूष

5. सहरि किस सूत्र का उदाहरण है –

क. नदीभिश्च ख. अव्ययीभावे चाऽकाले

ग. तद्धिता: घ . अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:

6. सचक्रम् किस सूत्र का उदाहरण है –

क. नदीभिश्च ख. अव्ययीभावे चाऽकाले

ग. तद्धिता: घ . अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:

7 . उपशरदम् किस सूत्र का उदाहरण है –

क. नदीभिश्च ख. अव्ययीभावे चाऽकाले

ग. तद्धिता: घ . अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:

8 . प्रतिविपाशम् किस सूत्र का उदाहरण है –

क. नदीभिश्च ख. अव्ययीभावे चाऽकाले

ग. तद्धिता: घ . अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:

9 . उपचर्मम् किस सूत्र का उदाहरण है –

क. नदीभिश्च ख. अव्ययीभावे चाऽकाले

ग. नपुंसकादन्यतरस्याम घ . अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:

10 . उपसमिधम् किस सूत्र का उदाहरण है –

क. नदीभिश्च ख. अव्ययीभावे चाऽकाले

ग. तद्धिता: घ . झय:

2 .4 सारांश

इस इकाई में आपने उपर्युक्त आठ अर्थों के अन्तर्गत सादृश्यता तक का अर्थ बताने वाले सभी प्रयोगों की सिद्धि का अध्ययन किया है। अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप अव्ययीभावे चाकाले सहस्य स: स्याद् अव्ययीभावे न तु काले। हरे: सादृश्यम् सहरि । ज्येष्ठस्यानुनुपूर्व्येण इति अनुज्येष्ठम् । चक्रेण युगपत् सचक्रम् । सदृश: संख्या स सखि । क्षत्राणां सम्पत्ति: स क्षत्रम् । तृणमप्यपरित्यज्य स तृणम् अत्ति। अग्निग्रन्थपर्यन्तम् अधीते साऽग्नि। यदि काल वाचक पद परे न हो तो अव्ययीभाव समास में सह के स्थान पर स आदेश होता है । इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है ।

2 .5 शब्दावली

प्रतिविपाशम्- (विपाशानदी की ओर)
उपजरसम्- (वृद्धावस्था के निकट)
अध्यात्मम् – (आत्मा में)
उपसमिधम् – (समीपता के अर्थ में)
पन्चगंगम्- (पॉच गंगाओं का समूह)
द्वियमुनम् (दो यमुना का समूह)

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. घ . हरि के समान
2.ख. आठ
3. क. अव्ययीभाव
4 ख. अव्ययीभाव
5. ख. अव्ययीभावे चाऽकाले
6. ख. अव्ययीभावे चाऽकाले
7 . घ . अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:
8 .घ . अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:
9 . ग. नपुंसकादन्यतरस्याम
10 .घ . झय:

2 .7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क्रमसं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1.	वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर
2.	लघु सिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली
3.	परम लघु मंजूषा	नागेश भट्ट	भीमसेन शास्त्री	चौखम्भा सुर भारती

2 . 8 उपयोगी पुस्तकें

क्रमसं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1	वैयाकरण सिद्धान्त	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर
2.	लघु सिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली

2 .9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 . निम्नलिखित की सूत्रोल्लेखपूर्वक सिद्धि कीजिए –

क - सचक्रम्

ख – उपराजम्

इकाई .3 तत्पुरुष: सूत्र से सप्तमी शौण्डै: सूत्र तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

3 .1 प्रस्तावना
3 .2 उद्देश्य
3 .3 तत्पुरुष: सूत्र से सप्तमी शौण्डै: सूत्र तक व्याख्या
3 .4 सारांश
3 .5 शब्दावली
3 .6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3 .7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3 .8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

तत्पुरूष, आदि समासों में प्रयुक्त सूत्रों तथा उनके विभिन्न उदाहरणों की प्रयोग सिद्धि स्वरूप व्याख्या से सम्बन्धित यह इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने अव्ययीभाव समास, के वर्णन में अव्ययीभावे चाकाले सूत्र से लेकर झय: सूत्र तक बनने वाले उद्धरणों के अध्ययन के साथ – साथ नदियों की संख्या आदि से निर्मित शब्दों का विस्तृत अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में तत्पुरुष समास, से सम्बन्धित प्रयोगों को आपके अध्ययनार्थ बताया गया है।

तत्पुरूष समास का प्रारम्भ तत्पुरूष: सूत्र से होता है। वस्तुत: यह सभी विभक्तियों में बनने वाला समास होता है। अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रथमा से लेकर सप्तमी तक के समासों से सम्बन्धित प्रयोगों की सिद्धि का ज्ञान समासों की प्रकृति भी बता सकेंगे साथ ही इनमें सिद्ध होने वाले उदाहरणों को भी बतायेंगे।

3.2 उद्देश्य

सूत्रों की व्याख्या, प्रयोगसिद्धि एवं सहायक सूत्रों के वर्णन से सम्बन्धित तत्पुरुष, समास की इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप यह बता सकेंगे कि –

- ❖ तत्पुरूष समास किसे कहते हैं।
- ❖ समास शास्त्र में इसके लिये कितने सूत्रों का प्रयोग किया गया है।
- ❖ तत्पुरुष में किन – किन उद्धरणों का समावेश है।
- ❖ अलुक समास की परिभाषा एवं उसका स्वरूप विस्तार क्या है।

3.3 तत्पुरुष: सूत्र से सप्तमी शौण्डै: सूत्र तक व्याख्या

925 . तत्पुरुष: 2/1/22

अधिकारोयं प्राग् बहुव्रीहे:।

यह अधिकार सूत्र है। सूत्र का शब्दार्थ है कि- (तत्पूरुष:) तत्पुरुष होता है। इस सूत्र का अधिकार 'क्त्वा च' 2.2.22 तक चलता है। 'प्राक्कडारात समास:' 2/1/3/ का भी यहॉं पर अधिकार हैं अत: सूत्र का भावार्थ यह होगा- 'तत्पुरुष:' सूत्र से होकर 'कत्वा च' तक के सूत्रों से जो समास निर्मित होता है, उसे तत्पुरुष समास कहते है।

926 . द्विगुश्च /2/1/23

द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञक: स्यात्।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ यह है कि – (च) और (द्विगु:) द्विगु…..। सूत्रकी अनुवृत्ति करनी पड़ती है। जिस समास का पूर्वपद संख्या-विशेष -वाची होता है उसे द्विगु कहते है अत: भावार्थ होगा- द्विगु भी तत्पुरूष संज्ञक होता है।

927 . द्वितीया श्रितातीत –पतित-गतात्यस्त–प्राप्तापन्नै: /2/1/24

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकै: सुबन्तै: सह समस्यते वा, स च तत्पुरुष:। कृष्णाश्रित:- कृष्णश्रित:, सूत्र का स्पष्टार्थ है कि – द्वितीया विभक्ति से अन्त होने वाले (द्वितीयान्त) सुबन्त पद का श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त (फेंका हुआ), प्राप्त तथा आपन्न (पड़ा हुआ), इन सात प्रातिपदिकों के द्वारा बने हुए सुबन्त के साथ जो समास होता है वह द्वितीया तत्पुरुष समास

कहलाता है। इस तत्पुरुष समास में प्रथम पद द्वितीयान्त होता है और उसके साथ इन सात प्रातिपदि को से बने शब्द को उत्तरपद के रूप में ग्रहण करके समास बनाया जाता है। प्रत्येक के उदाहरण निम्नलिखित हैं।

1. **श्रित** –'कृष्णं श्रित:' कृष्ण के आश्रित इस विग्रह में द्वितीया विभक्ति से अन्त में होने वाले 'कृष्ण' पद का सुबन्त 'श्रित:' के साथ द्वितीयाश्रितातीत0 इत्यादि सूत्र से समास होकर प्रथमा एकवचन में कृष्णश्रित: रूप बनेगा।

2. **अतीत**- (बीता हुआ) दुखम् अतीत: इति दुखातीत:। (दुख को पार कर गया) इस विग्रह में द्वितीयान्त 'दु:खम्' का सुबन्त पद 'अतीत:' पद के साथ समास होगा।

3. **पतित**- (गिरा हुआ) नरकं पतित: नरकपतित: इस विग्रह में द्वितीयान्त पद 'नरकम्' का सुबन्त पद पतित: के साथ समास बनाकर नरकपतित: रूप सिद्ध होगा।

4. **गत**- (गया हुआ) स्वर्गं गत: स्वर्गगत: इस विग्रह में 'स्वर्ग' द्वितीयान्त है तथा गत: पद सुबन्त है अत: द्वितीयान्त प्रातिपदिक स्वर्गम् का गत: सुबन्त के साथ प्रकृत सूत्र से द्वितीया तत्पुरुष समास होकर स्वर्गगत: रूप बनेगा।

5. **अत्यस्त**- (फेंका हुआ) कूपम् अत्यस्त: कुपात्यस्त: इस विग्रह के अनुसार द्वितीयान्त पद कुपम् का सुबन्त 'अत्यस्त' के साथ समास होकर कुपात्यस्त: प्रयोग होगा।

6. **प्राप्त**-(पाया हुआ) सुखम् प्राप्त: सुखप्राप्त: इस विग्रह में द्वितीयान्त पद सुखम् के साथ सुबन्त पद 'प्राप्त:' का समास होकर सुखप्राप्त: प्रयोग बनेगा।

7. **आपन्न**- संकटम् आपन्न: संकटापन्न: इस विग्रह में द्वितीयान्त पद 'संकटम्' का 'आपन्न:' सुबन्त के साथ द्वितीया तत्पुरुष समास होकर संकटापन्न: प्रयोग सिद्ध होगा।

प्रक्रिया के उदाहरण स्वरूप एक प्रयोग नीचे द्रष्टव्य है-

'कृष्णं श्रित:' लौकिक विग्रह तथा 'कृष्ण अम् श्रित सु' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम 'द्वितीयाश्रितातीतपतितगताऽत्यस्त–प्राप्तापन्नै:' इस सूत्र से द्वितीय तत्पुरूष समास होगा। इस दशा में प्रथमान्त का बोध होने से 'प्रथमानिर्दिष्टम् समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा होगी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होकर ही कृष्ण अम् श्रित सु हुआ है। इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से अम् तथा सु का लोप होकर- कृष्णश्रित बना। प्रथमा एकवचन में कृष्णश्रित सु होकर अनुबन्ध लोप होने पर कृष्णश्रित स् हुआ। पुन: स को रु आदेश तथा विसर्ग कार्य करने पर कृष्णश्रित: प्रयोग सिद्ध होगा।

928 . तृतीया तत्कृतार्थेनगुण वचनेन- तृतीयान्त तृतीयान्तार्थकृत- गुणवचनेनार्थेन च सह वा प्राग्वत्। शंकुलया खण्ड:- शंकुलाखण्ड:। धान्येनार्थो धान्यार्थ:। तत्कृतेति किम्- अक्ष्णा काण:।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ यह है कि – (तृतीया) तृतीया विभक्ति (तत्कृतार्थेन) उसके द्वारा किए गये और 'अर्थ (गुणवचनेन) गुणवाचक से ....। सूत्र अपूर्ण है, इसलिए इसका तात्पर्य स्पष्ट नहीं होता है। इस सूत्र के स्पष्टीकरण के लिए अधिकारसूत्र 'प्राक्कडारात् समास:' 2/1/3/ तथा 'सह सुपा' 2/1/4 तथा तत्पुरुष: 2/1/22/ की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। यहॉं पर 'तत्' का अभिप्राय सूत्रस्थ 'तृतीया' से है। इस प्रकार 'तत्कृतम्' का अर्थ है- तृतीया के द्वारा किया हुआ। इसका (सूत्र का) अन्वय 'गुणवचनेन'से होता है न कि 'अर्थेन' से होता है। यहॉं पर 'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्' परिभाषा से पूर्ववत् 'तृतीया' में तदन्त-विधि हो जाती है। तब

सूत्र का भावार्थ होगा-तृतीया से अन्त होने वाले सुबन्त का उसके द्वारा किए गये गुणवाची प्रातिपदिक के सुबन्त और अर्थ प्रातिपदिक के साथ समास होता है इसीलिए इस समास को 'तत्पुरुष' समास कहते हैं। उदाहरणस्वरूप-

शंकुलाखण्ड: (सरौते से किया गया टुकड़ा) - 'शङ्.कुलया खण्ड:' इस लौकिक विग्रह तथा 'शङ्.कुला टा खण्ड सु: इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'तृतीयातत्कृतार्थेन0' सूत्र से तृतीया शब्द प्रथमान्त होने के कारण समास होगा और तृतीयान्त पद शङ्.कुलया की 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जनसंज्ञा और 'उपसर्जनंपूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होकर ही 'शङ्.कुला टा खण्ड सु' हुआ अब 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो' सूत्र से सुप् विभक्तियो का लोप होकर 'शङ्.कुला खण्ड' प्रातिपदिक बना। प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय होकर और विभक्ति कार्य करने पर 'शङ्.कुलाखण्ड' रूप सिद्ध हुआ । इसी प्रकार 'धान्येन अर्थ:' लौकिक तथा 'धान्य टा अर्थ सु' इस अलौकिक विग्रह में धान्यार्थ:प्रयोग बनेगा।

प्रस्तुत सूत्र में तत्कृत इसलिए कह दिया गया है कि जब तृतीयान्त गुणवाची शब्द के साथ समास बने तो वह गुण उस तृतीयान्त अर्थ के द्वारा ही कृत हो ।'शङ्.कुलाखण्ड:' में खण्ड गुणवाची है। जो तृतीयान्त अर्थ वाले शङ्.कुला द्वारा कृत है किन्तु 'अक्ष्णाकाण:' (ऑंख से कॉंना) में 'काणत्व' गुण अक्ष के द्वारा उत्पन्न नहीं हैं किसी रोग या चोट के द्वारा कृत है। इसीलिए इस सूत्र के द्वारा 'अक्ष्णाकाण:' में समास नहीं होगा।

929 . कर्तृकरणे कृता बहुलम् /2/1/32

कृर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत् । हरिणा त्रात: - हरित्रात:, नखैर्भिन्न: नखभिन्न:। (प0) कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापिग्रहणम् ।

सूत्र का स्पष्टार्थ है कि- कर्ता और करण के अर्थ में वर्तमान तृतीयान्त सुबन्त पद का सुबन्त कृदन्त के साथ बहुलता (विकल्प) से समास होता है तो उसे तत्पुरूष समास कहते है। जैसे-

हरित्रात: - लौकिक विग्रह 'हरिणा त्रात:' और अलौकिक विग्रह 'हरि टा त्रात सु' के अनुसार 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' सूत्र से समास होगा । सूत्र में तृतीया की अनुवृत्ति होने से तृतीयान्त पद की उपसर्जन संज्ञा हुयी और 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्व में प्रयोग रहेगा । इस स्थिति में 'सुपो धातु प्रातिपदिकयो:' सूत्र से टा और सु का लोप हुआ- हरित्रात । इस दशा में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु की प्राप्ति और विभक्ति कार्य करने पर हरित्रात: में हरि कर्ता है और त्रा धातु से क्त प्रत्यय कृदन्त त्रात: है इसलिए कर्ता के अर्थ में समास हुआ है।

नखभिन्न: नखैर्भिन्न: 'लौकिक तथा 'नखभिस् भिन्न सु' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार करण अर्थ में 'कर्तृकरणे कृताबहुलम्' सूत्र से समास होगा और 'तृतीयातत्कृतार्थेन गुणवचनेन' सूत्र से तृतीया की अनुवृत्ति होने पर तृतीया प्रथमान्त द्वारा निर्दिष्ट होने पर उपसर्जन संज्ञा तथा पूर्व में प्रयोग होने पर –'नख भिस् भिन्न सु' ही हुआ । प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु की प्राप्ति तथा विभक्ति कार्य करने पर 'नखभिन्न:' प्रयोग सिद्ध हुआ ।

कृत के ग्रहण में गति कारक पूर्व का भी ग्रहण होता है। तात्पर्य यह है कि कर्ता और कारण के अर्थ में तृतीयान्त सुबन्त का गति कारक पूर्व कृदन्त के साथ भी समास बनता है जैसे- 'नखैर्निर्भिन्न:' इस विग्रह में गति –'निर्' पूर्वक कृदन्त 'भिन्न:' के साथ 'नखै:' का समास होकर'नखनिर्भिन्न:' प्रयोग होता है।

930 . चतुर्थी तदर्थार्थ-बलि-हित-सुख-रक्षितै: 2/1/36/

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत् तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत् यूपाय दारू यूपदारू। तदर्थेन प्रकृतिविकृतभाव एचेष्ट: तेनेह न रन्धनाय स्थाली।

(वा0) अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिंगता चेति वक्तव्यम । द्विजार्थ: सूप: । द्विजार्थो युवागू:। द्विजार्थम् पय: । भूतबलि: । गोहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम् ।

प्रस्तुत सूत्रका शब्दार्थ यह है कि- चतुर्थी (चतुर्थी) (तदर्थार्थ-रक्षितै:) तदर्थ, अर्थ बलि-हित-सुख और रक्षित से ....। यहॉ पर क्या होता है? यह सूत्र 'प्राक्कडारात् समास:' सूत्र2/1/3 तथा 'सह सुपा' 2/1/4 सूत्र से एवं 'तत्पुरुष:' 2/1/22 सूत्र की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। 'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्' परिभाषा सूत्र से 'चतुर्थी विभक्ति' में तदन्त विधि हो जाती है। तब सूत्र का भावार्थ यह होगा-चतुर्थी विभक्ति से अन्त होने वाले सुबन्त का तदर्थवाचक, अर्थ बलि-हित-सुख और रक्षित –इस छ: प्रकार के प्रातिपदिक का सुबन्त के साथ समास होता है। इसीलिए इसको 'तत्पुरुष' समास कहते है। इनके उदाहरण इस प्रकार है-

1. **तदर्थवाचक**- सूत्र में 'तद्' से चतुर्थी विभक्ति से अन्त होने वाले सुबन्त का ग्रहण होता है। तदर्थ का अर्थ होगा-चतुर्थी से अन्त होने वाले सुबन्त के लिए ।सूत्र का तात्पर्य यह है कि चतुर्थ्यन्त सुबन्त के लिए जिस सुबन्त का प्रयोग किया जाता है तथा उसके वाचक प्रातिपदिक के सुबन्त के साथ उस चतुर्थी से अन्त होने वाले सुबन्त का समास होता है किन्तु यहॉ पर ध्यातव्य है कि चतुर्थ्यन्त सुबन्त और तदर्थवाचक सुबन्त में प्रकृत-विकृतभाव होना चाहिए तभी यह समास हो सकता है। जैसे – यूपाय दारू में यूप विकृति है तथा दारू प्रकृति है दारू (लकड़ी) से ही यूप (खॉटा) बना हैं 'रन्धनाय स्थाली' में भी तदर्थवाचक सुबन्त स्थाली तो है किन्तु स्थाली से रन्धन न बनने के कारण प्रकृति-विकृतिभाव के आभाव में समास नहीं होता है।

2. '**अर्थ' पद के साथ समास**- यहॉ पर किसी पद का अन्त चतुर्थीविभक्ति से होता है वहॉ पर 'अर्थ' पद के साथ समास होताहै।जैसे द्विजार्थ:द्विजाय अर्थ: द्विजार्थ:।

द्विजार्थ: - 'द्विजाय अर्थ: द्विजार्थ:' इस लौकिक तथा 'द्विज ङे अर्थ सु' अलौकिक विग्रह की दशा में 'चतुर्थीतदर्थार्थ –बलि-हित-सुख –रक्षितै:' सूत्र से समास होगा । चतुर्थी तदर्थार्थ – बलि-हित-सुख-रक्षितै:' सूत्र से होगा। चतुर्थी शब्द का यहॉ पर प्रथमा में है इसलिए 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा हुई तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होकर 'सुपो धतुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से ङे और सु विभक्ति का लोप होकर 'द्विजार्थ' रूप सिद्ध होता है। प्रस्तुत सूत्र में वार्त्तिक'अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिंगता चेति वक्तव्यम्' से चतुर्थ्यन्त पद का 'अर्थ' पद के साथ नित्य समास होता है तथा लिंग विशेष्य के लिंग के अनुसार समस्त पद का समास होता है। यहॉ पर तीनों लिंगों के उदाहरण इस प्रकार है-

(क) **पुल्लिंग**- द्विजार्थ: सूप: (द्विज के लिए सूप)

(ख) **स्त्रीलिंग**-द्विजार्थ: पय: (द्विज के लिए लप्सी)

(ग) **नपुंसकलिंग**- द्विजार्थ: पय: (द्विज के लिए दूध)

3. '**बलि' पद के अर्थ में समास**- बलि अर्थ में भूतबलि: समास होता है जो इस प्रकार है-

भूतबलि:- (प्राणियों के लिए उपहार) लौकिक विग्रह 'भूताय बलि:' तथा 'भूत ङे बलि सु' इस अलौकिक विग्रह में 'चतुर्थी तदर्थार्थबलि-हित-सुख-रक्षितै:' सूत्र से चतुर्थ्यन्त भूत का बलि शब्द के साथ समास हुआ । इस दशा में 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से चतुर्थी

वाले पद की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग हुआ तथा 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से ङे और सु विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर 'भूतबलि' हुआ। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में विभक्ति कार्य आदि करने पर 'भूतबलि:' प्रयोग सिद्ध होता है।

4. **हित पद के अर्थ में समास-गोहितम्-**

गोहितम्-'गोभ्य: हितम्' इस लौकिक विग्रह तथा 'गो भ्यस् हित सु' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितै:' सूत्र से चतुर्थ्यन्त गो शब्द से हित पद का समास होगा। इस दशा में 'प्रथमानिर्दिष्ट समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपकियो:' सूत्र से भ्यस् और सु विभक्तियों का लोप होकर 'गोहित' बना। अब 'परवल्लिंगं द्वन्द तत्पुरुषयो:' से नपुंसकलिंग रुप 'गोहितम्' सिद्ध होता है।

5. **सुख पद के अर्थ में समास-**

गोसुखम्- लौकिक विग्रह 'गोभ्य:सुखम्' तथा 'गो भ्यस् सुख सु' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'चतुर्थीतदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितै:' सूत्र से समास होगा। उपसर्जन संज्ञा होकर पूर्व में प्रयोग हुआ तथा 'सुपो धातु प्रातिपदिकयो:' सूत्र से भ्यस् और सु लोप होकर 'गोसुख' बना अब 'परवल्लिंगं द्वन्दतत्पुरुषयो:' सूत्र से नपुंसकलिंग होकर प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु आदि विभक्ति प्रत्यय आने पर नपुंसकलिंग में अम् आदेश होकर 'गोसुखम्' रूप सिद्ध होता है।

6. **रक्षित पद के अर्थ में समास-**

गोरक्षितम्- 'गोभ्य: रक्षितम्' लौकिक विग्रह तथा 'गो, भ्यस् रक्षित सु' इस अलौकिक विग्रह में 'चतुर्थीतदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितै:' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ उपसर्जन संज्ञा होकर पूर्व में प्रयोग हुआ। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय भ्यस् एवं सु का लोप होकर 'गोरक्षित' बना। 'परवल्लिंगं द्वन्द तत्पुरूषयो:' सूत्र से नपुंसकलिंग होकर प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति होने पर नपुंसकलिंग होकर अम् आदेश होने पर 'गोरक्षितम्' प्रयोग सिद्धहोता है।

'पञ्चमी तत्पुरुष समास'

931 . पञ्चमी भयेन /2/3/37 चोराद् भयम् चोरभयम्

सूत्र का शब्दार्थ है कि –(पन्चमी) पन्चमी वि0 (भयेन) भय से .....। यहॉ पर सूत्र स्पष्ट नहीं होता है कि क्या होता है कि क्या होता है ? इसको ठीक-ठीक समझने के लिए अधिकार-सूत्र 'प्राक्कडारात्समास:' 2/1/3 'सह सुपा' 2/1/4 तथा 'तत्पुरुष: 2.1.22 की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। पन्चमी के पूर्व तदन्त-विधि हो जाती है। तब सूत्र का भावार्थ होगा-'पन्चमी' से अन्त सुबन्त का 'भय' प्रातिपदिक सुबन्त के साथ समास होता है इसलिए इसे तत्पूरुष समास कहते है। उदाहरण-

चोरभयम्- 'लौकिक विग्रह चोराद्भयम्' तथा अलौकिक विग्रह 'चोर ङसि भय सु' की दशा में 'पन्चमी भयेन' सूत्र से समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र

से ङसि और सु विभक्ति का लोप होकर 'चोरभय' बना। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में विभक्ति आदि कार्य करने पर 'चोरभयम्' रूप सिद्ध होता है।

932 .स्तोकान्तिक-दूरार्थ-कृच्छाणि-क्तेन /2/1/39

सूत्र का शब्दार्थ है कि – (स्तोकान्तिक-कृच्छाणि) स्तोक, अन्तिक, दूरार्थ और कृच्छ (क्तेन) 'क्ते' प्रत्यय से ...। सूत्र का स्पष्टीकरण नही होता है, इसे ठीक-ठीक समझने के लिए अधिकार सूत्र 'प्राक्कडारात् समास' 'सह सुपा' तथा 'तत्पुरूष:' सूत्र की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। यहॉ पर 'पन्चमी भयेन' सूत्र से 'पन्चमी' की भी अनुवृत्ति करनी पड़ेगी सूत्रका भावार्थ होगा-स्तोक (थोडा) अन्तिक (समीप) दूरार्थवाचक (दूरी का अर्थ बताने वाला) और कृच्छ (कष्ट)-इन चार प्रातिपदिको के पन्चम्यन्त सुबन्त का 'क्त' प्रत्ययान्त के सुबन्त के साथ समास होता है इसलिएइस समास को तत्पुरूष कहा जाता है।

933 . पन्चम्या: स्तोकादिभ्य: / 6 / 3 / 2 / अलुग् उत्तरपदे/ स्तोकान्मुक्त: /अन्तिकादागत:/ अभ्याशादागत:/ दूरादागत:/ कृच्छादागत:/

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ यह है कि (स्तोकादिभ्य:) स्तोक आदि से परे (पन्चम्या:) पंचमी विभक्ति का .....। किन्तु क्या होता है यहॉ पर यह बात सपष्ट नहीं है। सूत्र के स्पष्टीकरण के लिए अधिकार सूत्र 'अनुगुत्तरपद' 6/3/1/ की अनुवृत्ति करनी पड़ति है। 'स्तोक' आदि में पूर्वोक्त स्तोक, अन्तिक, दूरार्थवाचक और कृच्छ इन चार प्रातिपदिकों का ग्रहण होता है। सूत्र का भावार्थ है- उत्तरपद के परे रहने पर स्तोक, अन्तिक, दुरार्थवाचक और कृच्छ इन चार प्रातिपदिकों के पश्चात् पन्चमी विभक्ति (ङसि) का लोप नहीं होता है।

स्तोकान्मुक्त: -लौकिक विग्रह' स्तोकातद्यमुक्त:' तथा 'स्तोक ङसि मुक्त सु' इस अलौकिक विग्रह में 'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छाणि क्तेन' सूत्र से स्तोक पन्चम्यन्त का मुक्त: क्तप्रत्ययान्त के साथ पन्चमी तत्पुरूष समास होगा। इस दशा में 'पन्चमी तत्पुरूश समास होगा। इस दशा में 'पन्चमी भयेन' सूत्र से पन्चमी की अनुवृत्ति करनेपर 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पन्चम्यन्त स्तोकात् पूर्वपद होगा । इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से पन्चमी ङसि का लोप नही होगा । स्तोक से परे ङसि को आत् आदेश होकर स्तोकातमुक्त होगा। अब 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' से त को न् = स्तोकान्मुक्त । प्रथमा एकवचन में सु विभक्तिप्रत्यय करने पर तथा विभक्ति प्रत्यय करने पर तथा विभक्ति आदि करने पर 'स्तोकान्मुक्त:' प्रयोग सिद्ध होता है।

अन्तिकादागत: - लौकिक विग्रह अन्तिकात् आगत: तथा 'अन्तिक ङसि आगत सु' अलौकिक विग्रह की दशा में पन्चम्यन्त अन्तिम का क्त प्रत्ययान्त आगत् के साथ 'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छाणि क्तेन'सूत्र से पन्चमी तत्पुरूष समास होगा। उपसर्जन संज्ञा होने पर पूर्व प्रयोग होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से ङसि और सु विभक्तियों का लोप प्राप्त हुआ किन्तु उस में ङसि का 'पन्चम्या: स्तोकादिभ्य:' सूत्रसे लोप नहीं होगा। ङसि को आत् आदेश होकर अन्तिकात आगत: हुआ, त् को जश् (तृतीय वर्ग) होकर अन्तिकादागत: प्रयोग सिद्ध होता है।

दूरादागत: - लौकिक विग्रह 'दूरात् आगत:' तथा अलौकिक विग्रह 'दूर ङसि आगत सु' को दशा में 'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छाणि क्तेन' सूत्र से समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनंपूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होकर 'सूपो

धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुद् का लोप होकर दूरात् हुआ किन्तु 'पन्चम्या: स्तोकादिभ्य:' सूत्र से लोप न होकर 'दूरात् आगत' हुआ। त् को जश् द् होने पर दूरादागत प्रथमा एकवचन की विवक्षा में विभक्ति प्रत्यय सु लगाने पर दूरादागत: प्रयोग सिद्ध होता है।

ठीक इसी प्रकार 'अभ्याशात् आगत:' विग्रह तथा 'अभ्यास् ङसि आगत सु' अलौकिक विग्रह की दशा में 'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छाणि क्तेन' सूत्र से समास होगा। उपसर्जन संज्ञा तथा पूर्व में प्रयोग होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:'सूत्र से सुप् का लोप हुआ किन्तु 'पन्चम्या:स्तोकादिभ्य:' सूत्र से लोप न होकर-अभ्याशात् के त् को द् होकर 'अभ्याशादागत' बना। प्रथमाएकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति प्रत्यय होकर 'अभ्याशादागत:' प्रयोग सिद्ध होता है।

कृच्छादागत: - (कष्ट से आया हुआ)- 'कृच्छात् आगत:' लौकिक विग्रह तथा कृच्छ ङसि आगत सु' इस अलौकिक विग्रह में 'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छाणि क्तेन' सूत्र से समास होगा। उपसर्जन संज्ञा तथा पूर्व में प्रयोग होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्रसे ङसि और सु का लोप प्रापत हुआ किन्तु 'पन्चम्या: स्तोकादिभ्य:' सूत्र से ङसि और सु का लोप नहीं होगा- कृच्छादागत हुआ। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होकर विभक्ति आदि कार्य करने पर 'कृच्छागत:' पन्चमी तत्पुरूष समास सिद्ध हुआ।

934 . षष्ठी /2/2/8

सुबन्तेन प्राग्वत्। राजपुरुष:

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि- (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति.....। किन्तु यहॉ पर क्या होता है? यह स्पष्ट नहीं है, यह जानने के लिए अधिकार सूत्र 'प्राक्कडारात् समास:' 2/1/3 तथा 'सह सुपा' 2. 1.4 सूत्र एवं 'तत्पुरूष' 2.1.22 सूत्र की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। 'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्' परिभाषा सूत्र से सूत्रस्थ 'षष्ठ' में तदन्त विधि हो जाती है। तब सूत्र का भावार्थ होगा- षष्ठी से अन्त होने वाले सुबन्त का सुबन्त के साथ समास होता है और उसे तत्पुरुष समास कहते है। उदाहरण के लिए-

राजपुरुष: - लौकिक विग्रह 'विग्रह'राज्ञ: पुरुष:' तथा अलौकिक विग्रह 'राजन् ङस पुरुष सु' की दशा में 'षष्ठी' सूत्र से षष्ठ्यन्त राजन् का सुबन्त 'पुरुष:' से समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्तियों का लोप हुआ तथा 'न लोप: प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से न् का लोप होकर 'राजपुरुष' हुआ। प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति प्रत्यय करने पर 'राजपुरुष:' प्रयोग सिद्ध होता है।

935 . पूर्वाऽपराऽ धरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे 2/2/1/ अवयविना सह पूर्वादय: समस्यन्ते, एकत्व संख्याविशिष्टश्चेदवयवी । षष्टीसमासाऽपवाद: पूर्वं कायस्य पूर्वकाय:। उपरकाय:। एकाधिकरणे किम्? -पूर्वश्छात्राणाम्।

सूत्र का शब्दार्थ यह है कि- (पूर्वाऽपराऽधरोत्तरम्) पूर्व , अपर, अधर और अधर (एकाधिकरणे) एकत्व अर्थ में .....। इस बात से सूत्र का तात्पर्य स्पष्ट नहीं होता है, सूत्र को ठीक-ठीक से समझने के लिए 'प्राक्कडारात्समास: 2.1.3, 'सह सुपो' 2.1.4 तथा 'तत्पुरूष: 2.1.22 सूत्र की अनुवृत्ति करनी पड़ति है। यहॉ पर 'एकाऽधिकरणे' एकदेशी का विशेषण है तथा एकदेशी का अर्थ है- अवयवी। तब सूत्र का भावार्थ यह होगा- इन चार

प्रातिपदिकों का क्रमश: पूर्व, पर अधर, उत्तर सुबन्त का एकत्ववाचक अवयवी के सुबन्त के साथ समास होता है तथा उस समास को तत्पुरुष समास कहते हैं।

सूत्र में विशेष रूप से ध्यातव्य यह है कि यह 'षष्ठी' 931 सूत्र का बाधक है, तात्पर्य यह है कि यदि 'षष्ठी से समास होता तो षष्ट्यन्त पद का प्रयोग पूर्व में होता किन्तु प्रस्तुत सूत्र से समास करने पर प्रथमान्त शब्द 'पूर्व'आदि का प्रयोग पूर्व में ही हो जाता हैं, इसलिए इसी पूर्व प्रयोग के लिए प्रस्तुत सूत्र की आवश्यकता पड़ी। उदाहरण के लिए-

पूर्वकाय:- 'पूर्वं कायस्य' इस लौकिक विग्रह तथा 'पूर्व सु काय ङस्' इस अलौकिक विग्रह की दशा में पूर्वाऽपराऽधरात्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे' सूत्र से अवयव वाचक पूर्व शब्द का अवयवी (काय) शब्द के एकवचन में होने से समास होगा। यहॉ पर पूर्वाऽपराऽधरोत्तरम्' प्रथमा द्वारा निर्दिष्ट है अत 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से पूर्व की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होगा इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्ययों सु तथा ङस् का लोप होगा पूर्वकाय। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय आने पर 'पूर्वकाय:' समास सिद्ध होता है।

अपरकाय: - 'अपरं कायस्य' इस लौकिक विग्रह तथा 'अपर सु काय ङस' इस अलौकिक विग्रह में अपर अव्यय तथा काय अवयवी है तथा अवयवी कार्य प्रथमा एकवचन में है अत: 'पूर्वाऽपराऽधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकारणे' सूत्र से तत्पुरूष समास होगा। प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से प्रथमान्त अपर की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग हुआ। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से 'सु' और 'ङस' विभक्ति प्रत्यय करने पर 'अपरकाय' बना। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति प्रत्यय करने पर अपरकाय: प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अधरकाय: तथा उत्तरकाय: प्रयोग भी सिद्ध होता है। प्रस्तुत सूत्र में 'एकाधिकरणे किम् ?' का तात्पर्य है कि यदि अवयवी एकत्ववाचक या एकवचनान्त नहीं होगा तो समास नहीं होगा जैसे- पूर्वश्छात्राणाम्। 'पूर्वछात्राणाम्' में अवयवी 'छात्राणाम्' के बहुत्ववाचक होने के कारण समास नहीं होता है।

936 . अर्धं नपुंसकम् /2/2/2

समासवाची-अर्धशब्दो नित्यं क्लीबे, से प्राग्वत् अर्धं पिप्पल्या:-अर्धपिप्पली।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि - (नपुंसकम्) नपुंसक (अर्धम्) 'अर्ध' ...। किन्तु इससे सूत्र का तात्पर्य स्पष्ट नहीं होता। इसे ठीक-ठीक समझने के लिए 'प्राक्कडारा त् समास:' 'सह सुपा' तथा 'तत्पुरुष' सूत्र की अनुवृत्ति भी करनी पड़ती है। तब सूत्र का भावार्थ होगा- नपुंसकलिंग 'अर्ध'(बराबर भाग) प्रातिपदिक के सुबन्त का एकत्वबोधक अवयवी वाचक सुबन्त के साथ समास होगा और उस समास को तत्पुरुष समास कहते हैं। विशेष ध्यातव्य है कि यह सूत्र 'षष्ठी' 931 सूत्र का बाधक है। जैसे -

अर्धपिप्पली- लौकिक विग्रह'अर्धं पिपल्या:' तथा अलौकिक विग्रह 'अर्ध अम् पिप्पली ङस्' में अर्धं नपुंसकम्' सूत्र प्रथमा विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट है अत: प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् 'सूत्र से उपसर्जनसंज्ञा हुयी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होगा। इस दशा में 'सुपो धातुप्रतिपदिकयो:' सूत्र से सु और ङस विभक्ति प्रत्ययों का लोप हुआ- अर्धपिप्पली। इस इशा में प्रथमा एकवचनकी विवक्षा में सु प्रत्यय होने पर अर्धपिप्पली। इस दशा में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होने पर अर्धपिप्पली प्रयोग सिद्ध होता है।

937 . सप्तमी शौण्डै: /2/1/40

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभि: प्राग्वत् । अक्षेषु शौण्ड: अक्षशौण्ड: । इत्यादि । द्वितीयातृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि तृतीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात् समासो ज्ञेय: ।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ यह है कि (सप्तमी) सप्तमी विभक्ति (शौण्डै:) 'शौण्ड' आदि से .....। किन्तु क्या होता है यहॉ पर, सूत्र से स्पष्ट नही होताहै । इसे ठीक-ठीक जानने के लिए 'प्राक्कडारात् समास:' 2/3/3 तथा 'सह सुपा' 2.1.4 सूत्र एवं 'तत्पुरूष:' 2.1.22 सूत्र की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। यहॉ पर 'शौण्ड' आदि से शौण्ड, धूर्त, कितव, व्याड और प्रवीण आदि का ग्रहण होता है जिनका पाठ शौण्डादिगण में हुआ है। सूत्र में 'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्' परिभाषा से अन्त होने वाले सुबन्त का 'शौण्ड' (चतुर) आदि सुबन्त के साथ समास होता है तथा उस समास का तत्पुरूष समास कहते है । जैसे

अक्षशौण्ड: - लौकिक विग्रह 'अक्षेषु शौण्ड:' तथा 'अक्ष सुप् शौण्ड सु' इस अलौकि विग्रह की दशा में 'सप्तमी शौण्डै:' सूत्र से सप्तमी तत्पुरूष समास होगा। 'सप्तमी प्रथमा विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट है अत: 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होगा । इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' से सुप् विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर 'अक्षशौण्ड' हुआ । इस दशा में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति प्रत्यय होकर अक्षशौण्ड:' प्रयोग सिद्ध होता है ।इसी प्रकार 'अक्षकित्व:' तथा अक्षधूर्त: प्रयोग भी बनते है ।

अभ्यास के प्रश्न

निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए –

1.तत्पुरुष का अधिकार कहॉ तक चलता है –

क.केवल तक ख. द्वन्द्व तक

ग. द्विगु तक घ . बहुव्रीहि तक

2. श्रित शब्द का अर्थ है –

क. आश्रित ख. पतित

ग. सरित घ . कोई नहीं

3. अत्यस्त का क्या अर्थ है –

क.गिरा हुआ ख. फेंका हुआ

ग. पड़ा हुआ घ . अस्त

4 .तत्पुरुष समास के कितने भेद होते है –

क. तीन ख.दो

ग.एक घ . चार

5 . शंकुलाखण्ड: किस सूत्र का उदाहरण है –

क. तत्पुरुष: ख.द्विगुश्च

ग. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन घ .पञ्चमी भयेन

6 . धान्यार्थ: किस सूत्र का उदाहरण है –

क. तत्पुरुष: ख.द्विगुश्च

ग. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन घ .पञ्चमी भयेन

7 . तत्पुरुष समास का भेद है –

क. तत्पुरुष: ख.द्विगुश्च

ग. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन घ .पञ्चमी भयेन

8 . चोराद् भयम् किस सूत्र का उदाहरण है –

क. तत्पुरुष: ख.द्विगुश्च

ग. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन घ .पञ्चमी भयेन

9. राजपुरुष: किस सूत्र का उदाहरण है –

क. षष्ठी ख.द्विगुश्च

ग. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन घ .पञ्चमी भयेन

10. अक्षशौण्ड: किस सूत्र का उदाहरण है –

क. तत्पुरुष: ख.द्विगुश्च

ग. सप्तमी शौण्डै: घ .पञ्चमी भयेन

3 .4 सारांश

तत्पुरूष समास विभक्तियों में बनकर सहपुरूष:, तं पुरूषं, तेन पुरूषेण - तया, तस्मै पुरूषाय, तस्मात् पुरूषात्, तस्य पुरूषस्य, तस्मिन् पुरूषेषु इत्यादि रूपों में अनेक प्रकार के उद्धरणों को सिद्ध करता है, जिसमें वार्तिक भी सहायक होते है। इसी क्रम में यस्मात् प्रथमा विभक्ति से लेकर सप्तमी विभक्ति तक के आने वाले विभिन्न प्रयोजन को सूत्रानुसार निर्मित करता है। कर्मधारय भी वस्तुत: पृथक समास है। फिर भी इसे तत्पुरूष के स्वभाव में सम्मिलत करते हुये उसके भेद के रूप में स्वीकार किया गया। यह उपमान समास है। इसमें दो पदों के अन्दर उपमान का समास निर्धारित किया जाता है। तत्पुरूष में कतिपय प्रयोग समासान्त प्रत्यय के साथ सिद्ध होते है। यथा अवसर उनके उदाहरण भी इस इकाई में दिये गये है। अत: प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप इन समासों में बनने वाले प्रयोगों की सम्यक् जानकारी प्राप्त कर सूत्रों की व्याख्या को बताने में सक्षम हो सकेंगे।

3.5 शब्दावली

1. **तत्पुरूष**-वस्तुत:यह शब्द संस्कृत व्याकरण की प्रकृति के अनुसार समास में प्रयुक्त है। इसमें सम्बन्ध का ज्ञान करण के लिये विभिन्न विभक्तियों उद्धरणों के साथ प्रयोग किया जाता है

1. **श्रित** –'कृष्णं श्रित:' कृष्ण के आश्रित इस विग्रह में द्वितीया विभक्ति से अन्त में होने वाले 'कृष्ण' पद का सुबन्त 'श्रित:' के साथ द्वितीयाश्रितातीत0 इत्यादि सूत्र से समास होकर प्रथमा एकवचन में कृष्णश्रित: रूप बनेगा।

2. **अतीत**- (बीता हुआ) दुखम् अतीत: इति दुखातीत:। (दुख को पार कर गया) इस विग्रह में द्वितीयान्त 'दु:खम्' का सुबन्त पद 'अतीत:' पद के साथ समास होगा।

3. **पतित**- (गिरा हुआ) नरकं पतित: नरकपतित: इस विग्रह में द्वितीयान्त पद 'नरकम्' का सुबन्त पद पतित: के साथ समास बनाकर नरकपतित: रूप सिद्ध होगा।

3 .6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. घ . बहुव्रीहि तक
2. क. आश्रित
3. ख. फेंका हुआ
4 .ख.दो
5 . ग. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन
6 .ग. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन
7 . ख.द्विगुश्च
8 . घ .पञ्चमी भयेन
9. क. षष्ठी
10. ग. सप्तमी शौण्डै:

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क्रमसं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1.	वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर
2.	लघु सिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली
3.	परम लघु मंजूषा	नागेश भट्ट	भीमसेन शास्त्री	चौखम्भा सुर भारती

3. 8 उपयोगी पुस्तकें

क्रमसं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1	वैयाकरण सिद्धान्त	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर
2.	लघु सिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. तत्पुरूष समास से सम्बन्धित किन्हीं दो सूत्रों के उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।

इकाई 4 . दिक्संख्येसंज्ञायाम् सूत्र से अर्धर्चा: पुंसि च सूत्र तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

4 .1 प्रस्तावना
4 .2 उद्देश्य
4 .3 दिक्संख्ये संज्ञायाम् सूत्र से अर्धर्चा: पुंसि च तक व्याख्या
4 .4 सारांश
4 .5 शब्दावली
4 .6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4 .7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4 .8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

द्वन्द्व कर्मधारय, द्विगु आदि समासों में प्रयुक्त सूत्रों तथा उनके विभिन्न उदाहरणों की प्रयोग सिद्धि स्वरूप व्याख्या से सम्बन्धित यह इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने तत्पुरुष समास, के वर्णन में सातों विभक्तियों से बनने वाले उद्धरणों के अध्ययन के साथ – साथ सातों विभक्तियों प्रयोगों आदि से निर्मित शब्दों का विस्तृत अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में कर्मधारय समास, द्विगु, समास, से सम्बन्धित प्रयोगों को आपके अध्ययनार्थ बताया गया है। कर्मधारय समास का प्रारम्भ तत्पुरूष: समानाधिकरण: कर्मधारय: सूत्र से होता है। वस्तुत: यह सभी विभक्तियों में बनने वाला समास होता है। किन्तु इसी के वर्णन क्रम में तत्पुरूष के भेद के रूप में कर्मधारय समास और कर्मधारय के भेद के रूप में द्विगु समास तथा च के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला द्वन्द समास ही वर्णित है। नकारात्मकता के अर्थ में तत्पुरूष समास के अन्तर्गत आने वाले प्रयोगों के व्याख्यात्मक वर्णन इस इकाई में सूत्रों के अनुसार किये गये है। तत्पुरूष समास का स्वभाव विस्तारवादी है।

अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रथमा से लेकर सप्तमी तक के समासों से सम्बन्धित प्रयोगों की सिद्धि का ज्ञान कर द्वन्द और द्विगु आदि समासों की प्रकृति भी बता सकेंगे साथ ही इनमें सिद्ध होने वाले उदाहरणों को भी बतायेंगे।

4.2 उद्देश्य

सूत्रों की व्याख्या, प्रयोगसिद्धि एवं सहायक सूत्रों के वर्णन से सम्बन्धित तत्पुरूष, कर्मधारय, द्विगु, द्वन्द समास की इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप यह बता सकेंगे कि –

- ❖ द्विगु समास किसे कहते है।
- ❖ द्विगु समास में किन – किन उद्धरणों का समावेश है।
- ❖ कर्मधारय समास की परिभाषा एवं उसका स्वरूप विस्तार क्या है।
- ❖ कर्मधारय का भेद , द्विगु समास किन सूत्रों में वर्णित है।
- ❖ द्वन्द समास का प्रयोग किस अर्थ में किया जाता है।

4 .3 दिक्संख्ये संज्ञायाम् सूत्र से अर्धर्चा: पुंसि च सूत्र तक व्याख्या

938 . दिक्संख्ये संज्ञायाम् /2/1/50

पूर्वेषुकामशमी। सप्तर्षय:। संज्ञायामेवेति नियमार्थ सूत्रम् तेनेह न-उत्तरा सृक्षा: पंच ब्राह्मणा: ।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ यह है कि (संज्ञायाम्) संज्ञा के विषय में (दिक्संख्ये) दिशा में संख्या ...। किन्तु इससे सूत्र का तात्पर्य स्पष्ट नहीं होता है, सूत्र को ठीक-ठीक समझने के लिए अधिकार सूत्र 'प्राक्कडारात् समास:' 'सह सुपा' तथा 'तत्पुरुष' सूत्र एवं 'पूर्वकालैकसर्वजरत्' -0 'दिशा' और 'संख्या' में दिशावाचक एंव संख्यावाचक शब्दों का ग्रहण होता है। इस प्रकार सूत्र का भावार्थ यह होगा-संज्ञा के सन्दर्भ में दिशावाची एवं संख्यावाची सुबन्त का समानाधिकरण वाले सुबन्त (जिसका आधार समान ही हो) के साथ तत्पुरुष समास होता है। इसलिए इस समास को तत्पुरुष समास कहते है। जैसे-

'पूर्वेषुकामशमी'- लौकिक विग्रह 'पूर्व:इषुकामशमी' तथा अलौकिक विग्रह 'पूर्व सु इषुकामशमिन् सु' की दशा में ' दिक्संख्ये संज्ञायाम्' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। इस दशा में 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से दिशावाची शब्द पूर्व को पूर्वनिपात हुआ। इस दशा में 'सुपो धातुप्रतिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्ति का लोप होकर 'पूर्वेषुकामशमिन्' हुआ। अब प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति करने पर 'पूर्वेषुकामशमी' प्रयोग सिद्ध होता है।

सप्तर्षय: - (सात ऋषियों के समूह की संज्ञा) लौकिक विग्रह 'सप्त च ते ऋषय:' तथा अलौकिक विग्रह 'सप्तन् जस् ऋषि जस्' की दशा में 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' सूत्र से तत्पुरूष समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम' सूत्र से संख्यावाचक पद की उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होगा। इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर –सप्तन् ऋषि हुआ। इस स्थिति में न् का लोप होकर सप्त ऋषि हुआ। अब 'आदगुण:' सूत्र से गुण एकादेश होकर 'सप्तर्षि' बना। इस दशा में प्रथमा बहुवचन की विवक्षा में जस् विभक्ति प्रत्यय करने पर सप्तर्षय: प्रयोग सिद्ध होता है।

यह ध्यातव्य है कि दिशावाचक और संख्यावाचक पदों का केवल समास होता है, अन्यथा नहीं।उदाहरण के लिए 'उत्तरा वृक्षा:' में दिशावाचक 'उत्तरा:' के सुबन्त होने पर भी संज्ञा न होने से समास नहीं होता है। इसी प्रकार 'पन्च ब्राह्मणा:' से समास नहीं होता है।

939 . तद्धितार्थोत्तरपद-समाहारे च परत: समाहारे च वाक्ये, दिक्संख्ये प्राग्वत्। पूर्वस्यां शालायां भव: - पूर्वा शाला इति समासे जाते - (वा0) सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव:।

सूत्र का शब्दार्थ है कि - (च) और (तद्धितार्थ उत्तरपद-समाहारे) तद्धितार्थ के विषय में, उत्तरपद परे रहते और समाहार वाच्य होन पर ....। यहॉ सूत्र का अभिप्राय स्पष्ट नहीं है, इस सूत्र को ठीक-ठीक समझने के लिए 'प्राक्कडारा त् समास:' 2/1/3 'सह सुपा' 2/1/4 तथा तत्पुरूष: 2/1/22 एवं 'पूर्वकालैकसर्वजरत -0' 2/1/49 ये 'समानाधिकरणेन' तथा 935 'दिकसंख्ये -0' 'सूत्रसे 'दिक्संज्ञे' की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। सूत्र का भावार्थ यह होगा- जहॉ पर तद्धित का अर्थ हो तथा जब उत्तर पद परे हो एवं जब समाहार के विषय में बतलाना हो तब दिशावाचक एवं संख्यावाचक सुबन्त पर का दूसरे सुबन्त पद के साथ समास होते हैं। उस समास को तत्पुरुष समास कहते हैं। इनके उदाहरण क्रमश: इस प्रकार है-

(1) **दिशावाचक** –दिशावाचक तीन परिस्थितितयों में होता है-

(क) तद्धितार्थ में – 'पौर्वशाल:'।

(ख) उत्तरपद परे रहने पर –'पूर्वशालाप्रिय:'

(ग) समाहार वाच्य होने पर दिशावाचक शब्द का प्रयोग नहीं होता है।

(2) **संख्यावाचक**-

(क) तद्धितार्थ में – 'पाञ्चनापिति:'।

(ख) उत्तरपद में –'पञ्चगवधन:'।

(ग) समाहार में – 'पञ्चगवम्'।

प्रस्तुत सूत्र में वार्तिक 'सर्वनाम्नोवृत्तिमात्रे पूंवद्भाव:' का अभिप्राय है वृत्तिमात्र (समास, तद्धित, कृदन्त आदि) में सर्वनाम को पुंवद्भाव हो जाता है। उदाहरण के लिए 'पूर्वाशाला' में पूर्व सर्वनाम है अत: 'सर्वनाम्नो वृत्तिभागे पुंवद्भाव:' वार्तिक से पूर्वा के टाप् का लोप होकर पुंवद् भाव हो जायेगा तो पूर्वशाला होगा। इससे आगे की प्रक्रिया के लिए अग्रिम सूत्र है-

940 . दिकपूर्वपदादसंज्ञायां ञ:/4/2/107

अस्माद् भवार्थे ञ: स्याद् असंज्ञायाम्।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि (असंज्ञायाम्) असंज्ञा में (दिक्कपूर्वपदात्) जिसका पूर्वपद दिशावाची हो , उससे (ञ:) 'अ' होता है। यहॉ पर 'शेषे' सूत्र का अधिकार है। तब सूत्र का भावार्थ यह होगा-जहॉ पहले दिशावाचक शब्द होता है उससे यदि संज्ञा न बतानी हो तो भव (=होने वाला) अर्थ में ञ प्रत्यय तद्धितार्थ में होता है। यहॉ पर तात्पर्य यह है कि यदि संज्ञा गम्यामान न हो तो दिशा पूर्व-पद् प्रातिपदिक (जिसका पूर्व पद दिशावाचक हो) से शेष अर्थों में ञ प्रत्यय होता है। ञ का अकार यहॉ इत्संज्ञक है, इसलिए ञ शेष रह जाता है। उदाहरण स्वरूप में 'पूर्वशाला' में पूर्वपद 'पूर्व' दिशावाचक है, अत: प्रस्तुत सूत्र से तद्धितार्थ में 'ञ' प्रत्यय हो 'पूर्वशाला अ' रूप बनता है। इसके बाद अग्रिम सूत्र का विधान किया गया है-

941 . तद्धितेष्वचामादे: /7/2/117

ञिति णिति च तद्धितेऽचामा-देरचो वृद्धि स्यात् । '266-यस्येति च'। पौर्वशल:। पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ।

(वा0) **द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमास वचनम्।**

सूत्र का तात्पर्य यह है कि - (तद्धितेषु) तद्धित पर होने पर (अचाम्) अर्चो के (आदे:) आदि के ....। किन्तु यहॉ क्या होता है? यह स्पष्ट नहीं है। इसके स्पष्टीकरण के लिए ' अचोंणिति सूत्र तथा 'मृजेर्वृद्धि:' सूत्र से 'वृद्धि:' की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। यहॉ पर अंगस्य सूत्र का अधिकार है तथा इसका अवयव अचाम् से होता है। 'ञ्णिति' 'तद्धितेषु' से और 'अच्' 'आदे:' से सम्बन्धित है। इस तरह से प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ यह होगा- ञित् और णित् तद्धित प्रत्यय परे होने पर अंग के अचों में से आदि अच् के स्थान में वृद्धि आदेश होता है। जैसे-

पौर्वशाल: - (पूर्व की शाला में होने वाल)

'पूर्वस्यां शालायां भव:' इस लोकिक विग्रह तथा 'पूर्वा ङि शाला ङि ' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से तद्धित के विषय में दिशावाचक पूर्वा पद का सुबन्त शाला के साथ समास होगा। इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय ङि का दोनों स्थानों पर लोप होकर 'पूर्वाशाला' हुआ। इस स्थिति में वार्तिक'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव:' । से पूर्वा के टाप् का लोप होकर पुंवद्भाव हो जायेगा तो 'पूर्वशाला' हुआ। इस दशा में 'दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञ:' सूत्र से 'ञ' प्रत्यय हुआ, ञ में ञ् की इत्संज्ञा तथा लोप होने पर केवल अ बचता है अत: 'पूर्वशाला अ' रूप बना।इस दशा में 'तद्धितेस्वचामादे:' सूत्र से 'पूर्वशाला' के आदि अच् 'ऊ' को वृद्धि 'औ' आदेश होकर 'पौर्वशाला अ' रूप बना। 'यस्येति च' सूत्र से तद्धित प्रत्यय परे रहते

'पौर्वशाला' के आ को लोप होकर-'पौर्वशाल् अ' हुआ। अब प्रथमा एकवचन में 'सु' विभक्ति प्रत्यय लगने पर 'पौर्वशाल:' प्रयोग सिद्ध होता है।

वार्त्तिक 'द्वन्द् तत्पुरूष रूत्तरपदे नित्य समास वचनम्' का अभिप्राय यह है कि द्वन्द और तत्पुरष समास से परे उत्तर पद हो तो उनको नित्य समास कहा जाता है।

942 .**गोरतद्धितलुकि** /5/4/92

गोऽन्तात्तत्पुरूषात् टच् स्यात् समासान्तो न तु तद्धितलुकि। 'पन्चगवधन:'।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि (अतद्धित लुकि) तद्धित प्रत्यय का लोप होने पर (गो:) गो शब्द से .....। किन्तु क्या होता है यहॉ पर ? यह बात स्पष्ट नहीं की गयी है? सूत्र को ठीक-ठीक समझने के लिए 'तत्पुरूषस्याङ्गुले:' -0 5/4/86/ सूत्र से 'तत्पुरुषस्य' तथा 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' सूत्र से टच् की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। 'तत्पुरुषस्य' पन्चम्यन्त में परिवर्तित हो जाता है तथा सूत्र गो: में तदन्त विधि हो जाती है। इस तरह से सूत्र का भावार्थ होगा- तद्धित प्रत्यय का यदि लोप नही हुआ हो तो गो से अन्त तत्पुरुष समास से समासान्त टच् प्रत्यय हो। जैसे-

पञ्चगवधन: - (जिसके पॉच गायें धन हों) लौकिक विग्रह 'पञ्च गावो धनं यस्य स:' तथा अलौकिक विग्रह पञ्चन् जस् गो जस् धन सु' की दशा में पञ्चन् और गो पद में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र सु' उत्तरपद परे रहते विकल्प से तत्पुरूष समास होता है किन्तु 'द्वन्द्वतत्पुरूषयोरूत्तरपदे नित्यसमासवचनम्' वात्तिक से यह नित्य समास हुआ। अब 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर 'पञ्चगो अ धन' हुआ। 'एचोऽयवायाव:' सूत्र से ओ को अव् आदेश होकर 'पञ्चगव् अ धन' हुआ। प्रथमा एकवचन में सु आदि विभक्ति प्रत्यय करने पर 'पञ्चगवधन:' प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्मधारय समास

943 तत्पुरुष: समानाधिकरण: कर्मधारय: 2। 3। 42 ।।

प्रस्तुत सूत्र का अभिप्राय यह है कि (समानाधिकरण:) समानाधिकरण वाला (तत्पुरूष:) तत्पुरूष (कर्मधारय:) कर्मधारय कहलाता है अधिकरण का अर्थ आधार होता है। इस प्रकार भावार्थ होगा- 'समानाधिकरणतत्पुरूष्ज्ञ को कर्मधारय कहते है। यहॉ पर समानाधिकरण का अर्थ समान आधार से है। पूर्व और उत्तर पद का जब आधार एक ही हो तो तथा दोनों का अन्त समान विभक्ति से हो जेसे-नीलोत्पलम् (नीला कमल) -इस तत्पुरूष समास में नीलापन और कमल का आधार एक ही फूल हैं। इसलिए यह कर्मधारय संज्ञक होगा। अपनी सुविधा की दृष्टि से यह कह सकते है कि यदि तत्पुरूष के पूर्वपद और उत्तरपद –दोनों समान विभक्त्यन्त होंगें, तो उसे कर्मधारय समास कहा जायेगा।

944 . संख्यापूर्वो द्विगु: 2/1/52

तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविध: संख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञ: स्यात्।

सूत्र का शब्दार्थ है - (संख्यापूर्व:) संख्या जिसके पहले हो, उसे द्विगु समास कहते हैं। इस सूत्र को समझने के लिए पूर्व सूत्र'तद्धितार्थोत्तरपदसमहारे च' सूत्र को समझना आवश्यक है। उक्त सूत्र से तद्धितार्थ के विषय में, उत्तरपद के परे रहने पर तथा समाहार वाची होने पर संख्यावाची सुबन्त का समानाधिकरण वाले सुबन्त के साथ द्विगु समास होता है।

945 . द्विगुरेकवचनम् /2/4/1 द्विग्वर्थः समाहारः एकवत् स्यात् ।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि - (द्विगु) द्विगु (एकवचनम्) एकवचन वाला होता है। यहाँ पर द्विगु से समाहार द्विगु का भी ग्रहण होता है एकवचन से अभिप्राय एकार्थवाचक से है सूत्र का भावार्थ है- द्विगु के अर्थ में समाहार एकवत् होता है।

946. स नपुंसकम् /2/4/17/

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् पञ्चानां गवां समाहारः

पञ्चगवम् । प्रस्तुत सूत्र का तात्पर्य यह है कि - (सः) वह (नपुंसकम्) नपुंसक होता है। सूत्र को ठीक-ठीक जानने के लिए सूत्र का सन्दर्भ जानना आवश्यक है। प्रथम सूत्र द्विगुरेकवचनम्' 2/4/1 से लेकर 'विभाषा समीपे' सूत्र तक एकवद्भाव होता है। यह नपुंसकलिंग होता है। जैसे-

पञ्चगवम्- लौकिक विग्रह 'पञ्चानां गवां समाहारः' तथा पञ्चन् आम् गो आम्' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'तद्धितार्थोत्तरपद समाहारे च' सूत्र से समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर 'पञ्चन् गो' हुआ। इस स्थिति में 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से नकार का लोप होकर पञ्चगो । 'गोरतद्धितलुकि' से टच् प्रत्यय होकर पञ्चगो टच्' हुआ। ट्कार और चकार का का लोप होकर 'पञ्चगो अ' हुआ। इस दशा में 'एचोऽयवायावः' सूत्र से अव् आदेश करने पर पञ्चगव' बना। इस स्थिति में 'संख्यापूर्वो द्विगुः' से द्विगु संज्ञा हुयी तथा 'द्विगुरेकवचनम्' सूत्र से एकवचन होकर, प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय प्राप्त होने पर पञ्चगव् सु रूप बना। नपुंसकलिंग में सु को 'अतोऽम्' सूत्र से अम् आदेश होकर पञ्चगव् अम्। 'अमि पूर्वः' सूत्र से पूर्वरूप एकादेश होकर 'पञ्चगवम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

947 .विशेषणं विशेष्येण बहुलम् /2/1/57

भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत् । नीलमुत्पलम्-नीलोत्पलम् । बहुलग्रहणात् क्वचिन्नित्यम्-कृष्णसर्पः । क्वचिन्नरामो जामदग्न्यः ।

विशेष्यबोधक पद के साथ विशेषणबोधक पद का बहुलता (विकल्प) से समास बनता है उसे तत्पुरूष कहते हैं। विशेष्य को भेद्य तथा विशेषण को भेदक कहते है। यह विशेषण का समानाधिकरण विशेष्य पद के साथ हुआ करता है जिसका लिंग ,वचन, विभक्ति समान हो। जैसे-

नीलोत्पलम्- 'नीलं उत्पलम्' लौकिक विग्रह तथा 'नील सु उत्पल सु' इस अलौकिक विग्रह में 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' सूत्र से सर्वप्रथम समास बनेगा और प्रथमा विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट विशेषण की 'प्रथमानिर्दिष्टं समास0' इत्यादि सूत्र से उपसर्जन संज्ञा होगी और 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में रखने पर 'नील सु उत्पल सु' उत्पल सु' ही हुआ। अब 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होकर 'नील उत्पल' बना। आदगुणः सूत्र से गुण होकर 'नीलोत्पल' बना। प्रथमा एकवचन में सु की प्राप्ति तथा 'अतोऽम्' सूत्र से 'अम्' आदेश और 'अमि पूर्वः:' सूत्र से पूर्वरूप एकादेश होकर 'नीलोत्पलम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रस्तुत सूत्र में 'बहुलम्' बहुलता से कहा गया है, क्योंकि कहीं – कहीं विशेषण का विशेष्य के साथ नित्य नहीं भी होता है। इसी प्रकार 'कृष्णसर्प' (काला सांप, सापो की एक जाति) में तो समास नित्य होता है, किन्तु 'रामोजामग्न्य:' प्रयोग में विशेषण का विशेष्य के समानाधिकरण होने पर भी उसके साथ समास नहीं होता है।

948 . उपमानानि सामानन्यवचनै: /2/1/55

घन इव श्याम: घनश्याम:।

साधारण धर्म वाले पद के साथ उपमानवाचक पद का समास बनता है तथा वह तत्पुरूष समास होता है। सूत्र में 'सामान्य वचनै:' सूत्र से सामान्य का अर्थ है और साधारण धर्म सामान्यवचन का अर्थ समानता का बोध कराने वाले पद से है। यहॉ पर उपमेय से तात्पर्य है। जेसे-

घनश्याम:- 'घन इव श्याम:' इस लौकिक विग्रह तथा अलौकिक विग्रह 'घन सु' की दशा में 'उपमानानि सामान्यवचनै:' सूत्र से समास होगा। उपमानानि प्रथमा विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट है, अत: 'प्रथमानिर्दिष्टं समास0' इत्यादि सूत्र से उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में होकर 'घन सु श्याम सु' बना। अब 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर 'घनश्याम' बना। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति लगने पर 'घनश्याम:' प्रयोग सिद्ध होता है।

(वा0) 'शाकपार्थिवाऽऽदीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्।

शाकप्रिय: पार्थिव: शाकपार्थिव:। देवपूजको ब्राह्मण:देवब्राह्मण:।

उपर्युक्त वार्तिक के अनुसार 'शाकपार्थिव:' आदि समासयुक्त पदों की सिद्धि के लिए उत्तरपद के लोप का नियम समझाना चाहिए। जैसे-

शाकपार्थिव: - (शाक पसन्द करने वाला राजा)

'शाकप्रिय: पार्थिव:' लौकिक विग्रह तथा 'शाकप्रिय: स् पार्थिव सु' अलौकिक में 'शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्' इस वार्तिक से समास हुआ तथा शाकप्रिय: के उत्तरपद प्रिय का लोप होकर 'शाक सु पार्थिव सु' हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्ययों का लोप करने पर 'शाकपार्थिव' बना। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होने पर 'शाकपार्थिव:' प्रयोग सिद्ध होता है।

देवब्राह्मण: - (देवों की पूजा करने वाला ब्राह्मण:')

लौकिक विग्रह 'देवपूजक: ब्राह्मण:' तथा 'देवपूजक सु ब्राह्मण सु' इ अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'शाकपार्थिवाऽऽदीनां उत्तरपदलोपस्योप –संख्यानम्' वार्त्तिक से समास होकर 'देवपूजक' के उत्तरपद 'पूजक' का लोप हुआ- 'देव सु ब्राह्मण सु' ।'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर देव ब्राह्मण हुआ। इस स्थिति में प्रथमा एकवचन की विपक्षा में सु प्रत्ययय आने पर 'देवब्राह्मण:' प्रयोग सिद्ध होता है।

949 . नञ् /2/2/6 नञ् सुपा सह समस्यते।

नञ का सुबन्त पद के साथ समास होता है। इसे भी तत्पुरुष समास कहते है। नञ् का तात्पर्य निषेधात्मक न् से है।

950 . नलोपो नञ: **/6/3/73/ नञो नस्य लोप उत्तरपदे। न ब्राह्मण: ब्राह्मण।**

उत्तरपद परे रहने पर नञ् के न् का लोप होता है। जैसे-

अब्राह्मण: - (ब्राह्मण से भिन्न)लौकिक विग्रह 'न ब्राह्मण: अब्राह्मण:' तथा 'नञ ब्राह्मण सु' अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'नञ' सूत्र से समास प्राप्त होगा। नञ् के अ् की इत्संज्ञा तथा लोप एवं सु का 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से लोप होने पर 'न ब्राह्मण' बना। 'न लोपो नञ:'सूत्र से नञ् के न का लोप करने पर- अब्राह्मण बना। अब प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय आने पर अब्राह्मण: प्रयोग सिद्ध होता है।

951 . तस्मान्नुडचि /6/3/74/

लुप्तनकारान्नञ उत्तरपस्याजादेर्नुडागम: स्यात् । अनश्व:। नैकधेत्यादौ तु नशब्देन सह सुप्सुपेति समास:।

नञ में जिस न् का लोप हुआ हो उससे परे अजादि उत्तरपद को नुट् का आगम होता है। जैसे- अनश्व:।

अनश्व: - लौकिक विग्रह 'न अश्व:' तथा अलौकिक विग्रह में नञ के अ् की इत्संज्ञा और लोप होने पर 'न अश्व सु' बना। इस दशा में 'नञ' सूत्र से समास हुआ। 'नलोपो नञ' सूत्र से नञ् के न का लोप होन पर 'अ अश्व सु विभक्तियों का 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से लोप होकर 'अ अश्व' हुआ तथा 'तुस्मान्नुडचि' सूत्र से अजादि उत्तर पद अश्व परे रहने पर उसे नुट् का आगम होगा जो टित् होने से 'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्र से आदि में होगा-अ नुट् अश्व। इस दशा में नुट् में उ और ट की इत्संज्ञा तथा लोप होने पर अन् अश्व बनो। प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय आने पर 'अनश्व:' प्रयोग सिद्ध होगा।

नैकधा- नैकधा प्रयोग में 'न' शब्द का 'एकधा' शब्द के साथ 'सह सुपा' सूत्र से केवल समास हुआ। यदि नञ् के साथ एकधा का समास होने की स्थिति होती है तो 'नञ एकधा'में 'नञ' सूत्र से समास होगा, 'नलोपो नम:' सूत्र से नञ् के न् का लोप होकर अ एकधा हुआ। नट् में उ और ट् का लोप होने पर अन् एकधा = अनेकधा प्रयोग सिद्ध होता है।

952 . **कुगतिप्रादय**: /2/2/18

ते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते। कुत्सित: पुरूष:कु पुरूष:।

गति संज्ञा अर्थात् क्रिया के योग में आयें हुए 'प्र', 'परा' आदि , कु अर्थात् कुत्सित तथा प्रादि (प्र, परा आदि उपसर्ग) का सुबन्त के साथ नित्य समास होता है। यह भी तत्पुरूष समास होता है ।

'कु' अव्यय का अर्थ होता है कुत्सित तथा प्र परा आदि प्रादिगण से सम्बन्धित शब्द क्रिया के योग में गतिसंज्ञक होते है। जैसे –

कुत्सित: पुरुष: कुपुरुष: यह लौकिक विग्रह है तथा कु पुरुष: सु इस अलौकिक विग्रह में 'कुगतिप्रा0' सूत्र से कु अव्यय का समर्थ सुबन्त पद से समास बनेगा । 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सु0 से सुप् सु का लोप होकर कु पुरुष होगा।प्रथमा एकवचन में सु की प्रप्ति होने और विभक्ति कार्य करने पर कुपुरुष: रूप सिद्ध होगा।

गति संज्ञा किस प्रकार होगी उसके लिए निम्न सूत्र है-

953 . ऊर्यादि-च्वि-डाचश्च 1/4/61

ऊर्वादय: च्वयन्ता डाजन्ताश्च गतिसंज्ञा: स्यु: । ऊरीक़त्य, शुक्लीकृत्य, पटपटाकृत्य । सुपुरुष: ।

सूत्र का तात्पर्य यह है कि ऊरी आदि च्यि प्रत्यान्त तथा डाच् प्रत्ययान्त जब क्रिया के योग में आते है तो उनकी गतिसंज्ञा होती है। ऊर्व्यादिगण इस प्रकार है- ऊद्दी, कन्धी ताली, अताली , वेलाती, धूली, धूसी, शकला इत्यादि । च्वि प्रत्ययान्त- 'अशुक्लं शुक्लं कृत्वा' अर्थात् जो सफेद न हो उसे सफेद बनाकर।

डाच् प्रत्ययान्त- 'पटट् पटट् (पट पट शब्द करके) इति कृत्वा' पटपटाकृत्य ।

सर्वदा यह ध्यान में रहना चाहिए कि ऊरी आदि और च्वि प्रत्ययान्त का तथा डाच् प्रत्ययान्त का कृ, भू तथा अस् धातुओं के साथ ही योग होता है।

ऊरीकृत्य- सर्वप्रथम ऊरी शब्द से कृ धातु और क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर ल्यप् होने से ऊरीकृत्य बनता है। इस प्रकार ऊरी शब्द की 'ऊर्यादिच्वउाचश्च' सूत्र से गतिसंज्ञा हुई और 'कुगतिप्रादय:' सूत्र से ऊरी का कृ धातु के साथ समास बनेगा । 'समासेऽनञपूर्वेक्त्वो ल्यप्' सूत्र से कत्वा प्रत्यय को ल्यप् होने पर. ऊरीकृत्य रूप सिद्ध होगा ।

शुक्लीकृत्य. शुक्ल शब्द से 'अभूततद्भावे इति वक्तव्यम् वार्त्तिक तथा कुभ्वस्तियोग संपद्यकर्तरि च्वि:' प्रत्यय होने पर शुक्ल पद के अ को 'अस्य च्वौ सूत्र से ई आदेश होने पर शुक्ली बनेगा ।इस दशा में 'ऊर्यादि-च्वि –डाचश्य' सूत्र से च्वि प्रत्ययान्त शुक्ली पद की गति संज्ञा हुयी । 'कुगतिप्रादय:' सूत्र से शुक्ली का क् धातु के साथा समास होगा । पुन:' 'समासेऽनञपूर्वेक्त्वो ल्यप्' सूत्र से क्त्वा को ल्यप् आदेश होने पर- शुक्लीकृत्य प्रयोग सिद्ध होगा। इसी प्रकार पटपटाकृत्य भी सिद्ध होगा।

शोभन पुरूष: सुपुरूष:। सु प्रादि है इसका सुप् प्रत्ययान्त पुरूष पद के साथ 'कुगतिप्रादय:' सूत्र से समास होकर सु पुरूष: रूप बनता है ।

वार्तिक- प्राद्योगताद्यर्थ प्रथमया । प्रगत आचार्य: प्राचार्य: ।

प्रस्तुत वार्तिक का भावार्थ है कि- प्रथमा विभक्ति ा से अन्त होने वाले पद् के साथ प्र आदि का गत आदि अर्थ में समास होता है । जैसे –

प्राचार्य: - 'प्रगत आचार्य :' इस विग्रह में गत अर्थ में प्रादि प्र का प्रथमान्त सुबन्त पद 'आचार्य' के साथ 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया' इस वार्तिक से समास होकर प्रगत: आचार्य: = प्राचार्य: प्रयोग सिद्ध होगा ।

वार्तिक-अत्यादय: क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया ।अतिक्रान्तो मालामिति विग्रह विग्रहे अतिमालम् ।

भावार्थ यह है कि-अति आदि का क्रान्त आदि (अतिक्रमण)अर्थ में द्वितीया विभक्ति के द्वारा अन्त होने वाले सुबन्त पद के साथ समास होता है। प्रादिगण में अति भी आता है । जैसे- अतिमाल: । 'अतिक्रान्तो मालाम्' लौकिक विग्रह में तथा 'माला अम अति' अलौकिक विग्रह में द्वितीया से अन्त होने वाले सुबन्त पद 'मालाम्' का 'क्रान्त' अर्थ में अति के साथ 'आत्यादय: क्रान्तद्यर्थे द्वितीयया' वार्तिक से समास हुआ । प्रथमा विभक्ति 'अत्यादय:' में है अत: 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनं' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा हुयी । इस दशा में 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से अति का पूर्व पद के रूप में प्रयोग होगा- 'अति यात्रा अम्' अब 'सुपो धातुप्रातिपदियो:' से अम् विभक्ति प्रत्यय का लोप होगा- अतिमाला । इस दशा में

'एकविभक्तिचाऽपूर्वनिपाते' सूत्र से 'अतिमाला' में माला शब्द के आ को ह्रस्व अ हुआ तथा प्रथमा विभक्ति एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होने पर 'अतिमाल:' प्रयोग सिद्ध हुआ ।

954 .एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते /1/2/44

विग्रहे यद् नियतविभक्तिकं तद् उपसर्जनसंज्ञं स्याद् न तु तस्य पूर्वनिपात: ।

प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ है कि जिस पद् की विभक्ति नियम हो उस समास के विग्रह नियत हो उस समास के विग्रह में अर्थात् एक ही और अपरिवर्तित रहती हो, उसकी उपसर्जन संज्ञा होती है, किन्तु उसका समास में पूर्ण प्रयोग नही होता है ।

सूत्र में एकविभक्ति से तात्पर्य है नियत विभक्ति वाला हो, उसकी विभक्ति किसी भी प्रकारसे विग्रह करने पर बदलती न हो । जैसे- 'अतिक्रान्तो मालाम्' में 'मालाम्' शब्द में द्वितीया रहेगी।

955. गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य /1/2/48

उपसर्जनं यो गोशब्द: स्त्रीप्रत्यान्तं च, तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्व: स्यात् । अतिमाल: ।

(वा0) अवादय: क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया। अवक्रुष्ट: कोकिलयाअवकोकिल: ।

(वा0) पर्यादयोग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या । परिग्लानोऽध्ययनायपर्यध्ययन: ।

(वा0) निरादय: क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या । निष्क्रान्त: कौशाम्व्या: . निष्कौशाम्बि: ।

प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ यह है कि. ;उपसर्जनस्य उपसर्जन संज्ञक ;गोसित्रयोरूद्ध गो शब्द और स्त्री प्रत्यय का ण्ण्। किन्तु यहॉ पर क्या होना चाहिए यह बात इससे स्पष्ट नहीं हो पा रही है। सूत्र को ठीक.ठीक समझने के लिए 'ह्रस्वो नपुंसकोप्रातिपदिकस्य'1.2.47 सूत्र से 'प्रातिपदिकस्य' तथा 'ह्रस्व:' की अनुवृति करनी पड़ती है। 'प्रत्यय हग्रहणेतदन्त विधि:' परिभाषा सूत्र से स्त्री प्रत्यय वाचक सूत्रस्थ 'स्त्री' में तदन्तविधि हो जाती है। यह उपसर्जन संज्ञक गो और स्त्री प्रत्ययान्त शब्द पुन: 'प्रातिपदिकस्य'के विशेषण हैं। इसलिए इनमें भी तदन्तविधि होतीहै। इस तरह सूत्र का भावार्थ है. प्रातिपदिक के अन्त में उपसर्जनसंज्ञक गो या स्त्री प्रत्ययान्त शब्द हो, उसको ह्रस्व होता है। 'अलोऽन्तस्य' परिभाषा सूत्र से यह आदेश गो या स्त्री प्रत्ययान्त के अन्त्य स्वर वर्ण के स्थान पर होता है । जैसे- अतिमाला में माला के अन्तिम आ को ह्रस्व अ हुआ – अतिमाल ।

सूत्र में वार्तिक. अवादय इति. से तात्पर्य है. 'अव' आदि का 'क्रष्ट' आदि अर्थ में तृतीया से अन्त होने वाले सुबन्त के साथ समास होता है। जैसे-

अवकोकिल: - लौकिक विग्रह 'अवक्रुष्ट: कोकिलया' तथा अलौकिक विग्रह' अब कोकिला टा' की स्थिति में 'अवादय:कुष्टाद्यर्थे तृतीयया' इस पार्तिक से समास होगा। इस दशा में 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनियाते' सूत्र से एक विभक्ति पद 'कोकिला' की उपसर्जन संज्ञा होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्यय 'टा' का लोप होकर 'अवकोकिला शब्द जिसके अन्त में है उसके अन्तिम पद को स्वर होगा अवकोकिल । प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आने पर 'अवकोकिल:' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार वार्तिक 'पर्यादयो ग्लानाऽऽद्यर्थे' से तात्पर्य है कि 'म्लानि आदि अर्थ में परि आदि का चतुर्थी विभक्ति से अन्त होने वाले पद के साथ समास होता है । जैसे-

पर्यध्ययन: - (अध्ययन के लिए खिन्न) लौकिक विग्रह 'परिग्लान:अध्ययनाय' तथा 'परि अध्ययन ङे' की स्थिति में 'पर्यादयोग्लाना ऽऽद्यर्थे चतुर्थ्या' (वा0) से समासहोकर 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' सूत्र से एकविभक्ति वाले अध्ययन पद की उपसर्जन संज्ञा होगी किन्तु इसका पूर्व में प्रयोग नहीं होगा। 'सुपोधातुप्रातिपदिकयो:' बना। अब इस दशा में 'इको यणचि' सूत्र से सन्धि होकर 'पर्यध्ययन' प्रातिपदिक बनकर प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रतयय आने पर 'पर्यध्ययन:' प्रयोग सिद्ध हुआ।

क्रमश:इसी तरह वार्त्तिक 'निरादय: क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' से तात्पर्य है कि -निर् आदि का क्रान्त (निकाला गया) आदि अर्थ में पञ्चमी विभक्ति वाले समर्थ सुबन्त पद के साथ समास होता है। जैसे-

निष्कौशम्बि- 'निष्क्रान्त कौशाम्ब्या' लौकिक विग्रह तथा 'निर कौशाम्बि ङसि' अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'निरादय: क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या:' वार्त्तिक से समास होकर 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' सूत्र से कौशाम्बी की उपसर्जन संज्ञा हुई तथा पूर्व में प्रयोग नहीं हुआ।'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर 'निर कौशाम्बी, को ष् और स् को ष हुआ – निष्कौशाम्बी बना। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य:' सूत्र से कौशाम्बी के अन्तिम ई को ह्रस्व इ होकर –निष्कौशाम्बि हुआ। प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय होने पर 'निष्कौशाम्बि:' प्रयोग बनता है।

956. तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् । /3/1/92

सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत् कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञ स्यात्।

प्रस्तुत सूत्र को ठीक पूर्वक जानने के लिए 'अण्' प्रत्यय के सन्दर्भ में आया सूत्र 'कर्मण्यण्' सूत्र को जानना आवश्यक है, इस सूत्र का तात्पर्य है कि कर्म के वाचक पद के उपपद रहने पर धातु से अण् प्रत्यय होता है। जैसे- कुम्भं करोति इति, कुम्भकार:। यहॉ पर कृ धातु का कर्म कुम्भ है जो उपपद है अत: कृ 'धातु' से अण् प्रत्यय होता है।

ठीक इसी प्रकार उपर्युक्त सूत्र का तात्पर्य यह है कि- 'कर्माणि अण्' सूत्र में कर्म में सप्तमी है। प्रश्न यह उठता है कि कृ धातु का कर्म वहॉ क्या है? तो कुम्भ ही कर्म के रूप में वाच्य है इसलिए इस कुम्भ आदि को कर्म बताने वाले (वाचक)पद की उपपद संज्ञाहोती है।

957. उपपदमतिङ् /2/2/19

उपपदं सूबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते, अतिङन्तश्चायं समास:। कुम्भं करोति इति कुम्भकार: ।अतिङ् किम् मा भवना भूत्, माङ् लुङ् इति सप्तमी निर्देशान्माङ् उपपदम्।

सूत्र का तात्पर्य है कि समर्थ पद के साथ उपपद् सुबन्त का नित्य समास होता है। यहॉ पर तात्पर्य यह है कि उपपद संज्ञा बताने वाले पद का तिङन्त से भिन्न समर्थ पद के साथ नित्य समास होता है जैसे-

कुम्भकार: - लौकिक विग्रह 'कुम्भं करोति इति' तथा अलौकिक विग्रह 'कुम्भ अम् कार् (कृ धातु से अण् +ण् का लोप – कृ आ। 'अचोन्णिति' सूत्र से ऋ को वृद्धि आर् आदेश ,इस अलौकिक विग्रह में 'तत्रोपदं सप्तमीस्थम्' सूत्र से कुम्भ की उपपद संज्ञा होकर 'उपपदमतिङ्' सूत्र से कार अतिङन्त होने से समास प्राप्त हुआ- कुम्भकार। इस दशा में

'गतिकारोकपदानाम्0' वार्त्तिक से सुप् विभक्ति आने से पूर्व ही समास होकर प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय आने पर 'कुम्भकार:' प्रयोग सिद्ध हुआ।

यहॉ पर सूत्र में यह बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि 'अतिङ्' क्यों कहा? गया-ऐसा इसलिए कहा गया कि यदि उपपद संज्ञकपद के साथ तिङन्त पद आयोग तो वहॉ पर समास नहीं होगा, जैसे 'मा भागन् भूत' प्रयोग में 'माङ् की उपपद् संज्ञा होती है, 'मा भूत' में 'माङ् उपपद के साथ भूत का समास नहीं होगा, क्योंकि भूत तिङन्त पद है।

(वा0) **गतिकारकोपदानां कृभ्दि: सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पते। व्याघ्री अश्वक्रीति। कच्छपीत्यादि।**प्रस्तुत वार्त्तिक से तात्पर्य यह है कि गतिसंज्ञक , कारक और उपपद् संज्ञक पदों का जब कृदन्त पद के साथ समास होता है तो वह समास कृदन्त पद में सुप् विभक्ति लगाने से पहले हो जाता है। जैसे-क्रमश: **व्याघ्री**- विशेषेण जिघ्रति इति व्याघ्री। वि+आङ्+घ्रा धातु+क प्रत्यय (आतश्चोपसर्गे सूत्र से) क प्रत्यय के क का लोप होता है केवल अ बचता है। किन्तु परे रहते पर घ्रा के आ का 'आतो लोप इटि च' (भ्वादिगण में पा धातु की रूप सिद्धि में आया सूत्र से) लोप होकर वि आ घ्र। घ्र में सुप् विभक्ति लगने से पूर्व ही गति संज्ञक का 'गतिकारकोपपदानां0' (वा0) समास होकर 'इको यणचि' सूत्र से यण् आदेश हुआ-व्याघ्र। स्त्रीत्व की विवक्षा में 'जातेरस्त्री विषयादयोपधात्' सूत्र से स्त्रीलिंग ङीष् प्रत्यय। व्याघ्र के भसंज्ञक अ का लोप होकर 'व्याघ्री' प्रयोग सिद्ध हुआ।

अश्वक्रीती- अश्वेन क्रीता इति अश्वक्रीती। अलौकिक विग्रह-अश्व टा क्रीत इस विग्रह में 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' सूत्र से तृतीयान्त सुबन्त का कृदन्त पद के साथ समास हुआ। इस दशा में 'सुपो धतु प्रातिपदिकयो: सूत्र से टा विभक्ति लगने से पूर्व समास होकर अश्वक्रीत हुआ। 'क्रीतात्करणपूर्वात्' सूत्र से ङीष् प्रत्यय होकर 'अश्वक्रीत' के भसंज्ञक अ का लोप करने पर 'अश्वक्रीती' प्रयोग सिद्ध हुआ।

कच्छपी- 'कच्छं मुखसंपुटं पाति' लौकिक विग्रह और कच्छ अम्+पा+क ('सुपि स्थ:' सूत्र से या धातु से क प्रत्यय) 'तत्रोपदं सप्तमीस्थम्' सूत्र से कच्छ क उपपद संज्ञा होकर 'उपपदमतिङ्'सूत्र से अतिङन्त के साथ समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से अम् का लोप हुआ तथा क प्रत्यय में क् का लोप होकर अ बचा। कित् परे रहने के कारण 'आतो लोप इटि च' सूत्र से पा धातु के आ का लोप होता है तथा प् के साथ प्रत्यय अ मिल जाता है। विभक्ति की उत्पति के पूर्व ही 'गतिकारकोपपदानां0' वार्तिक से समास होकर कच्छप हुआ। जातिवाचक होने से 'जातेरस्त्रीविषयादयोपघात्' सूत्र से स्त्रीलिंग ङीष् प्रत्यय होकर 'कच्छपी' प्रयोग सिद्ध होता है।

958 . तत्पुरुषस्यांगुले: संख्याव्ययादे: /5/4/86/

संख्याव्ययादेरड्गुल्यन्तस्य समासन्तोऽच् स्यात्। द्वे अङ्गुली प्रमाणस्य द्व्यङ्गुलम्। निर्गतमङ्गुलिभ्य: निरङ्गुलम्।

उपरोक्त सूत्र से तात्पर्य है कि जिससे अन्त में संख्यावाचक या अव्ययपद हो और अन्त में अंगुलि शब्द हो उससे समासान्त अच् समासान्त अच् प्रत्यय होता है- जैसे-

द्वयड़गुलम् - 'द्वे अंगुली प्रमाणस्य' इस लौकिक विग्रह तथा 'द्वे अंगुलि और मात्रच्' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति' में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहरे च' सूत्र से तद्धित अर्थ होने पर उत्तर पद परे रहने पर या समाहार बताने की स्थिति में दिशावाचक था संख्यावाचक पद का

समानाधि करण वाले सुबन्त पद के साथ समास हुआ। इस प्रकार यहॉ संख्यावाचक द्वि का तद्धित अर्थ । में अंगुलि के साथ समास होगा। 'मात्रच' का 'द्विगोर्लुगनपत्ये' से लोप होगा। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से दोनों और का लोप होकर-द्वि अंगुलि हुआ। 'तत्पुरुषस्यांगुले**:** संख्याव्ययादे**:**' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होगा- द्वयंगुलि अच्। अच् के च् का लोप् 'यस्येति च' सूत्र से अंगुलि से इ का लोप होकर 'द्वयंगुलम्। प्रयोग बनता है।

निरंगुलम्- निर्गतम् अंगुलिभ्य: इस लौकिक विग्रह की स्थिति में 'निरादय: भ्यस्' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'निरादय: क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या:' वा0 से प्रादि समास होगा। 'सुपो धतुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होगा- निरंगुलि अच्। च् का लोप, पुन: 'यस्येति च' सूत्र से अंगुलि के इ का लोप होकर 'निरंगुल' हुआ सु विभक्ति प्रत्यय नपुंसकलिंग में लगने पर 'निरंगुलम्' प्रयोग बनता है।

निरंगुलम् – निर्गतम् अंगुलिभ्य: इस लौकिक विग्रह में तथा 'निर अंगुलि भ्यस् का लोप होकर निरंगुलि। 'तत्पुरूषस्यांगुले: संख्याव्ययादे:' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होगा- निरंगुलि अच्। च् का लोप पुन: 'यस्येति च' सूत्र से अंगुलि के इ का लोप होकर 'निरंगुल' हुआ। सु विभक्ति प्रत्यय नपुंसकलिंग में लगने पर 'निरंगुलम्' प्रयोग बनता है।

959 .अह: सर्वैकदेश-संख्यात-पुण्याच्च रात्रे: /5/4/87 एभ्यो रात्रच् स्याच्चात्संख्याव्यादे:। अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम्।

सूत्र का भावार्थ है अह:, सर्व, एकदेश,संख्यात, पुण्य के बाद रात्रि शब्द आने पर समासान्त टच् प्रत्यय होता है। इनमें द्वन्द समास में अह: के बाद रात्रि आने पर यह समासान्त अच् प्रत्यय होता है। जैसे-

अहोरात्र: - लौकिक विग्रह 'अहश्च रात्रिश्च अनयो: समाहार: अहोरात्र: 'तथा अहन् सु' रात्रि सु' इस अलौकिक विग्रह में 'अह: सर्वैकदेश संख्यातपुण्याच्चरात्रे:' सूत्र से समासान्त अच प्रत्यय होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् का लोप हुआ तथा अच् में च् का लोप होकर अहन् रात्र हुआ। न् को रू तथा रू को 'हशि च' सूत्र से उ तथा 'आदगुण:' सूत्र से गुण होकर ओ हुआ- अहोरात्र। इस दशा में 'स नपुंसकम्' सूत्र से नपुसंकलिंग प्राप्त हुआ किन्तु 'रात्राऽह्नाहा: पुंसि' सूत्र से इसे बाधकर प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय लगने पर 'अहोरात्र:' प्रयोग सिद्ध होता है।

960 . रात्राऽह्नाहा: पुंसि /2/4/29

तदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरूषौ पुंस्येव। अहश्च रात्रिश्च अहोरात्र:। सर्वरात्र:।

सूत्र का भावार्थ है यदि द्वन्द्व समास तथा तत्पुरूष समास के अन्त में रात्र , अहन्, अह शब्द हो तो ने पुल्लिं में ही होता है। जैसे-सर्वरात्र:- लौकिक विग्रह'सर्वा: रात्र्य: इति सर्वरात्र:' तथा अलौकिक विग्रह 'सर्वा जस् रात्रि जस्' की स्थिति में सूत्र 'पूर्वकालैक सर्वजरत्-पुराणनवकेवला:' से समास हुआ। कर्मधारय समास होने के कारण 'सर्वा' को 'पूंवत्' 'कर्मधारयजातीयदेशीयेषु' सूत्र से पुलिंगवत् हुआ –सर्व जस् रात्रि जस्। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप का लोप होकर 'सर्वरात्रि' हुआ। इस दशा में 'अह: सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रे:' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होकर 'सर्वरात्रि अच्' हुआ

। अब च् कि इत्संज्ञा और लोप होकर 'सर्वरात्र' हुआ इस दशा में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सुप्रत्यय आने पर 'सर्वरात्र:' प्रयोग सिद्ध हुआ।

पूर्वरात्र: - 'प्रर्व: रात्रे:' लौकिक विग्रह तथा 'पूर्व सु रात्रि ङसि' इस लौकिक विग्रह में पाणिनि के सूत्र 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराण्नवकेवला:' सूत्र से समास होगा । 'सुपो प्रातिपादिकयो:' सूत्र से सु और ङसि का लोप होकर 'पूर्वरात्रि' हुआ। इस दशा में 'अह: सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रे:' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होगा- पूर्वरात्रि अच्। इस दशा में च् का लोप होकर- पूर्वरात्रि अ। इस दशा में 'यस्येति च' सूत्र से रात्रि के इ का लोप होकर 'पूर्वरात्र' हुआ। अब 'रात्राह्नाहा:पुंसि' सूत्र से पुल्लिङ्ग होगा। प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय होने पर 'पूर्वरात्र:' प्रयोग बनता है।

ठीक इसी प्रकार संख्यारात्र :, पुण्यरात्र :अतिरात्र:अतिरात्र: प्रयोग बनता है।

(**वा**0) **संख्यापूर्व रात्र क्लीबम्। द्विरात्रम्। द्विरात्रम्।** संख्यावाचक पद जिसके पूर्व हो एसा 'रात्र' पद नपुंसकलिङ्ग होता है। जैसे –

द्विरात्रम्- 'द्वयो:रात्र्यो: समाहार:द्विरात्रम्' इस लौकिक विग्रह में तथा 'द्वि ओस् ओस' इस अलौकिक विग्रह में 'तद्धितार्थोन्तरपद समाहरे' सूत्र से समास होगा। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् का लोप होकर 'द्विरात्र' हुआ अब 'अह: सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रे:' सुत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होगा-द्विरात्रि अच्। च का लोप द्वि रात्रि अ। इस दशा में 'यस्येति च' सूत्र से रात्रि के इ का लोप-द्विरात्र। अच् इस दशा में 'संख्यापूर्वरात्रं क्लीबम्' वार्त्तिक से नपुंसकलिङ्ग होकर प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु होने पर 'द्विरात्रम्' प्रयोग सिद्ध होता है

इसी प्रकार 'त्रिरात्रम्' प्रयोग भी बनता है।

961 . राजाऽह: सखिभ्यष्टच् /5/4/ 91

एतदन्तात् तत्पुरूषात् टच् स्यात् परमराज:।

यदि तत्पुरूष समास के अन्त में राजन्, अहन् और सखि शब्द हो तो उससे समासान्त 'टच्' (अ) प्रत्यय होता है। जैसे-

परमराज: - लौकिक विग्रह 'परमश्च असौ राजा च' तथा 'परम सु राजन सु' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टा:पूज्यमानै:' सूत्र से कर्मधारय समास हुआ तथा 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो: सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर'परमराजन' हुआ।अब इस दशा में 'राजाऽह:सखिभ्यष्टच्' सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय होगा परम राजन् टच्। इस दशा में ट् औ च् का लोप होकर 'परमराजन अ' हुआ। इस स्थिति में 'नस्तद्धिते'सूत्र से राजन् की टि 'अन्' का लोप होकर 'परमराज् अ' हुआ= परमराज। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति प्रतयय लगने पर परमाराज: प्रयोग सिद्ध होता है।

962 . आन्महत: समानाधिकरण जातीययो: /6/3/46

महत अकारोऽन्तादेश: स्यात् समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे।

महाराज:। प्रकारवचने जातीयर्। महाकारा महाजातीय:।

प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ यह है कि यदि जातीय र् प्रत्यय परे हो या यदि समानाधिकरण उत्तर पद परे हो तो महत् के अन्तिम त् को आत् = आ आदेश होता है।

यहॉ पर समानाधिकरण से तात्पर्य ऐसे पद से है जिसका लिङ्ग वचन और विभक्ति समान होता है। सूत्र में महत: (षष्ठी) प्रयोग है। जैसे –

महाराज: - लौकिक विग्रह 'महान् चासौ राजा' तथा 'महत् सु राजन सु' इस अलौकिक विग्रह में 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टा : पूज्यमानै:' सूत्र से कर्मधारय समास होकर 'सुपो धातुप्रातिपादिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय सु का लोप होकर- महत् राजन् हुआ। इस स्थिति में 'आत्महत:समानाधि करणजातीमयो:' सूत्र से महत् को आ आदेश हुआ –मह आ राजन्। अब इस दशा में 'राजाह: सखिभ्यश्टच्' सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ- महाराजन टच्। इस दशा में ट् और च् का अनुबन्ध लोप होकर-महाराजन् अ हुआ।

प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होकर 'महाराज:' प्रयोग सिद्ध हुआ।

महाजातीय: शब्द में महत्+जातीयर् प्रत्यय होने पर महत को आ आदेश होने पर महाजातीय: प्रयोग बनता है।

963 . द्वयष्टन: संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्यो: 6/3/47

आत्स्यात्। द्वौ च दश द्वादश। अष्टाविंशति:।

प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ है कि- यदि बहुव्रीहि समास और अशीति शब्द परे न हो तो संख्यावाचक उत्तरपद परे रहने पर द्वि और अष्टन् के स्थान में आकार आदेश होता है। यहॉ पर ध्यातव्य है कि आकारादेश के लिए तीन बाते आवश्यक है-

(1) बहुव्रीहिसमास नही होना चाहिए।

(2) उत्तरपद में 'अशीति' शब्द न होना चाहिए।

(3) उत्तरपद में संख्यावाचक शब्द होना चाहिए।

'**अलोऽन्त्यस्य** ' सूत्र की परिभाषा से यह आकारादेश 'द्वि' के अन्त्य इकार और अष्टन् के अन्त्य नकार के स्थान पर ही होता है। जैसे-

अष्टाविंशति: - लौकिक विग्रह 'अष्टौ च विंशतिश्च' तथा 'अष्टन् जस् विंशति सु' इस अलौकिक विग्रह में द्वन्द समास होगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय का लोप होने पर- अष्टन्विंशति। इस दशा में 'द्वयष्टन: संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्यो:' सूत्र से अष्टन् के न् को आ आदेश होकर- अष्टाविंशति हुआ। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रतयय आने पर 'अष्टाविंशति:' रूप सिद्ध होता है।

द्वादश-'द्वौ च दश च' लौकिक विग्रह एवं 'द्वि औ दशन् जस्' इस अलौकिक विग्रह की दशा में द्वन्द समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्रसे विभक्ति प्रत्यय का लोप करने पर द्विदशन हुआ इस दशा में 'द्वयष्टन: संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्यों:' सूत्र से द्वि के इ को आत् आदेश होकर 'द्वादशन' हुआ ।अब इस दशा में विभक्ति प्रत्यय लगने पर प्रथमा बहुवचन में 'द्वादश' रूप सिद्ध होता है।

964. परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयो: /2/4/26

एतयो:परपदस्येव लिंगं स्यात्। कुक्कुटमयूर्याविमे। मयूरीकुक्कुटाविमौ। अर्धविप्पली।

(वार्त्तिक) द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्य:। पन्चसु कपालेषु संस्कृत: पन्चकपाल: पुरोडाश:।

प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ होगा कि समाहार से भिन्न द्वन्द्व और तत्पुरुष में लिंग उत्तरपद के समान होता है। यहॉ तात्पर्य यह है कि जो लिङ्ग उत्तरपद का होता है, वही लिङ्ग समस्तं

पद का भी होता है। समाहार द्वन्द्व में समस्त पद नपुंसकलिङ् होताहै । जैसे- 'कुक्कटश्च मयूरी च ' (मूर्गा और मोरनी) – इस विग्रह में द्वन्द्व समास हो कुक्कटमयूरी' प बनता है । यहॉ पर उत्तरपद्'मयूरी' है और यह स्त्रीलिङ्ग में है । अत: उपरोक्त सूत्र से उसी के समान समस्त शब्द से स्त्रीलिंग हो प्रथमा के द्विवचन में 'कुक्कुट' रूप बनता है । इसी प्रकार 'मयूरीकुक्कुट' रूप बनने पर उत्तर 'कुक्कुट' के पुल्लिग होने के कारण समस्त पद पर पुल्लिंग हो 'मयूरीकुक्कुटौ' रूप बनता है । इसी प्रकार'अर्धम्पिप्ल्या:'(पिप्पली का आधा)- इस विग्रह में तत्पुरुष समास होकर'अर्धपिप्पली' रूप बनने पर इसी प्रकार उत्तरपद 'पिप्पली' के स्त्रीलिंग होने से समस्त शब्द से स्त्रीलिंग हो 'अर्धपिप्पली रूप सिद्ध होता है ।

उपर्युक्त वार्त्तिक से तात्पर्य यह है कि (1) द्विगुसमास में (2) जिस समास का पूर्व पद प्राप्त, आयन्न , अलम् हो उसमें तथा (3) गति समास में उत्तरपद के समान समस्त पद के लिङ्ग का निषेध हो जाता है ऐसा समझना चाहिए।

यहॉ पर तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त तीन स्थितियों में समस्त पद का लिंग उत्तरपद के लिङ्ग के समान नही होता है । जैसे-पन्चसु कपालेषु संस्कृत: पुरोडाश: पन्चकपाल: । (पॉच कपालो में पकाया गया पुरोडाश) यहॉ पर 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारेच' सूत्र से द्विगु समास होता है । पन्चकपाल । इसका लिंग 'परवतिलिंगं द्वन्द्वतत्पुरुषयो:' सूत्र से 'कपालम्' उत्तरपद का नपुंसकलिङ्ग होना चाहिए किन्तु 'द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्व गतिसमासेषु' सूत्र से इसका निषेध हुआ तथा इसका लिङ्ग विशेष्य शब्द 'पुरोडाश:' के समान ही पुल्लिङ्ग होता है – पन्चकपाल: बना ।

यहॉ पर 'प्राप्त'और 'आपन्न' आदि के उदाहरण के लिए अग्रिम सूत्र का विधान किया गया है-

965 . प्राप्तऽऽपन्ने च द्वितीयया /2/2/4

समस्येते ।अकारश्चानयोरन्तादेश: । प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविक:। आपन्न जीविक:। अलं कुमार्यै अलंकुमारि: । अत एवं ज्ञापकांत्समास:। निष्क्रौशाम्बि:।

सूत्र का तात्पर्य है प्राप्त एवं आपन्न पदों का द्वितीया विभक्ति वाले दूरे सुबन्त के साथ समास होता है। यह समास भी तत्पुरूष समास के अन्तर्गत ही आता है। 'प्राप्त' और 'आपन्न' के समास में समास हो जाने पर अन्तिम अल् को अकार आदेश होता है। जैसे-

प्राप्तजीविक:- लौकिक विग्रह 'प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविक:' तथा 'प्राप्तसु जीविका अम्' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'प्राप्तापन्ने च द्वितीयया:' से समास हुआ । इस दशा में 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' सूत्र से जीविका की उपसर्जन संज्ञा होकर 'सुपो धातुप्रातिपदियो:' सूत्र से सुप् का लोप होकर- प्राप्तजीविका बना। इस दशा में 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य:' सूत्र से जीविका के आ को अ होकर प्राप्तजीविक बना। 'परवल्लिङ्ग द्वन्द्वतत्पुरूषयो:' सूत्र से समस्त पद स्त्रीलिङ्ग होना चाहिए किन्तु 'द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्य:' सूत्र से निषेध होकर विशेष्य के अनुसार लिंग होकर पुल्लिग में 'प्राप्तजीविक:' प्रयोग सिद्ध होता है ।

ठीक इसी प्रकार 'आपन्नजीविक:' प्रयोग भी बनता है ।

अलंकुमारि- (कुमारी के योग्य)

लौकिक विग्रह 'अलं कुमार्यै अलंकुमारि ङे' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्य:' वार्त्तिक से 'अलम्' के सुबन्त पद के साथ समास का निर्देष होने पर ही समास हुआ क्योंकि इसके लिए समास का कोई सूत्र नहीं है। इस दशा में 'एकविभक्ति◌ा चाऽपूर्वनिपाते' सूत्र से 'कुमारी' को उपसर्जन संज्ञा हुयी किन्तु पूर्वनियात नहीं होगा । इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से 'ङे' का लोप होकर अलंकुमारी बना। 'गोस्त्रियोरूपसर्जनस्य' सूत्र से कुमारी के अन्तिम ई को ह्रस्व इ होकर अलंकुमारि हुआ इस स्थिति में 'परवल्लिंगं द्वन्द्वतत्पुरूषयो:' सूत्र से स्त्रीलिङ्ग होना चाहिए किन्तु वार्त्तिक 'द्विगप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्य:' से निषेध होकर, विशेष्य करने पर 'अलंकुमारि:' प्रयोग सिद्ध होता है।

निष्कौशम्बि: - निष्कौशाम्बि: में भी ' परवल्लिङ्ग द्वन्द तत्पुरूषयो:' सूत्र से उत्तरपद कौशाम्बी के स्त्रीलिङ्ग के आधार पर लिङ्ग होता किन्तु गतिस मास होने के कारण 'द्विगुप्राप्तापन्नालं पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्य:' सूत्र से निषेध होकर विशेष्य के अनुसार पुल्लिंग होकर - ' निष्कौशम्बि:' प्रयोग सिद्ध होता है।

966 . अर्धर्चा: पुंसि च /2/4/31

अर्धर्चादय: शब्दा: पुंसि क्लीबे च स्यु:। अर्धर्च:, अर्धर्चम्। एवं ध्वज-तीर्थ: शरीर –मण्डप-यूप-देहांकुशपात्र-सूत्रादय:। सामान्ये नपुंसकम्। मृदु पचति। कमनीयम्।

सूत्र का शब्दार्थ है कि - (अर्धर्चा) 'अर्धर्च' आदि (पुंसि) पुल्लिंग में होते हैं (च) और.....। किन्तु यहॉ पर क्या होता है यह स्पष्ट नहीं होता है, इसे ठीक-ठीक समझने के लिए सूत्रस्थ 'च' के द्वारा पूर्वसूत्र 'अपथं नपुंसकम्' से 'नपुंसकम्' का ग्रहण होता है। 'अर्धर्चादि गण है और इसमें 'अर्धर्च' गोमय और कषाय आदि शब्दों का समावेश होता है। इस प्रकार सूत्र का भावार्थ होगा-'अर्धर्च' (आधी ऋचा) आदि शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों में ही होता है। इस प्रकार इन शब्दों के दो-दो रूप बनते हैं जैसे-

अर्धर्च: (आधी ऋचा) 'अर्धम् ऋच:' लौकिक विग्रह तथा 'अर्ध सु ऋच् ङस्' इस अलौकिक विग्रह में 'अर्धम्नपुंसकम्'सूत्र से समास हुआ इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् का लोप होकर अर्ध ऋच हुआ।

'ऋक्पूरब्धु: पथामानक्षे' सूत्र से समासान्त अ प्रत्यय होगा- अर्ध ऋच् अ।

गुण एकादेश सन्धि अ +ऋ= अर् आदेश होकर-अर्धर्च बना। 'परवल्लिंगं द्वन्द्वतत्पुरुषयो:' सूत्र से ऋच् स्त्रीलिंग है अत: स्त्रीलिंग होना चाहिए, किन्तु 'अर्धर्चा:पुंसि च' से पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिंग। सुप् विभक्ति प्रत्यय करने पर- अर्धर्च: प्रयोग तथा नपुंसकलिंग में 'अर्धर्चम्' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार से ध्वज, तीर्थ, शरीर मण्डप, युप, देह,अंकुश, पात्र, सूत्रआदि शब्द दोनों लिंगों में होते हैं। जब किसी विशेष लिंग की विवक्षा नहीं होती, तो सामान्य कथन में नपुंसकलिंग का प्रयोग होता है। जैसे- 'मृदुपचति' में मृदु (कोमल) क्रियाविशेषण है, सामान्यकथन के कारण नपुंसलिंग हुआ है। 'प्राप्त:कमनीयम्' प्रयोग में 'कमनीयम्' में सामान्य कथन के कारण नपुंसकलिंग हुआ।

अभ्यास के प्रश्न –

निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए –

1. परमराज: किस सूत्र का उदाहरण है –

क. तत्पुरुष:

ख. राजाऽह: सखिभ्यष्टच

ग. सप्तमी शौण्डै:

घ .पञ्चमी भयेन

2. प्राप्तजीविक: किस सूत्र का उदाहरण है –

क. प्राप्तऽऽपन्ने च द्वितीयया

ख. राजाऽह: सखिभ्यष्टच

ग. सप्तमी शौण्डै:

घ .पञ्चमी भयेन

3. अर्धर्च: किस सूत्र का उदाहरण है –

क. प्राप्तऽऽपन्ने च द्वितीयया

ख. राजाऽह: सखिभ्यष्टच

ग. सप्तमी शौण्डै:

घ . अर्धर्चा: पुंसि च

4. पंचकपाल: का सामासिक विग्रह है-

क.पंच कपाले संस्कृत:

ख. पंचे कपाले संस्कृत:

ग. पंचानां कपाले संस्कृत:

घ . पंचसु कपालेषु संस्कृत:

5. मृदुपचति में मृदु है –

क.क्रिया

ख. कर्म

ग. क्रिया विशेषण

घ . सहायक

6. अलंकुमारि में अलं शब्द प्रयुक्त है –

क. योग्यता हेतु

ख. जाने हेतु

ग. साधन हेतु

घ . कोई नहीं

7. अश्वक्रीती पद का शुद्ध विग्रह है –

क.अश्वस्य क्रीता

ख. अश्वेन क्रीता

ग. अश्वषु क्रीता घ . कोई नहीं

8. अष्टाविंशति का संख्या में क्या अर्थ है –

क.आठ और सात

ख. अट्ठाइस

ग. अठ्ठारह

घ . कोई नहीं

9. अर्धर्च: का अर्थ है –

क.आधा चर

ख. आधी ऋचा

ग. आधा मार्ग

घ.आधी रचना

10. कुम्भ कार: में कौन सा प्रत्यय प्रयुक्त है -

क.अण्

ख. क्यप्

ग. आर्

घ . ल्यप्

4.4 सारांश

कर्मधारय वस्तुत: पृथक समास है। फिर भी इसे तत्पुरूष के स्वभाव में सम्मिलत करते हुये उसके भेद के रूप में स्वीकार किया गया। यह उपमान समास है। इसमें दो पदों के अन्दर उपमान का समास निर्धारित किया जाता है। तत्पुरुष में कतिपय प्रयोग समासान्त प्रत्यय के साथ सिद्ध होते है। यथा अवसर उनके उदाहरण भी इस इकाई में दिये गये है। जिस प्रकार कर्मधारय तत्पुरुष का भेद माना गया है उसी प्रकार द्विगु समास भी कर्मधारय का भेद माना जाता है। किन्तु अनेकश: संख्यापूर्वपदों के द्वारा इस समास की निर्मिति देखी जाती है। पूर्ण रूप से संस्कृत व्याकरण का विषय समास रहा है, जो सिद्धान्तकौमुदी में विस्तृत है। फिर भी समास वर्णन के इस खण्ड में प्रमुखता के आधार पर इन समासों के वर्णन किये गये है। सभी लिंगों में, सभी वचनों में भी तत्पुरूष आदि के प्रयोग होते है। च के अर्थ में आने वाला समास द्वन्द्व समास कहलाता है। इसमें नित्य एकवचन में प्रयुक्त पद ग्रहण नहीं किये जाते। विशेष ध्यातव्य यह है कि द्वन्द्व समास के पद नपुंसक लिंग में प्रयुक्त होते हैं। अत: प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप इन समासों में बनने वाले प्रयोगों की सम्यक् जानकारी प्राप्त कर सूत्रों की व्याख्या को बताने में सक्षम हो सकेंगे।

4.5 शब्दावली

1. **कर्मधारय** – दो पदों के बीच में उपमान का निर्द्धारण कर के समास की सिद्धि की जाती है

2 . **द्विगु** – दो पदों में जिसका एक पद संख्यावाची हो किन्तु स्पष्ट न होने के कारण इसे द्वाभ्याम गच्छति इति द्विगु: कहा जाता है।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख. राजाऽह**:** सखिभ्यष्टच

2. क**.** प्राप्तऽऽपन्ने च द्वितीयया

3 घ . अर्धर्चा**:** पुंसि च

4. घ.पंचसु कपालेषु संस्कृत:

5. ग. क्रिया विशेषण

6. क. योग्यता हेतु

7. ख. अट्टाइस

8. ख. अट्टाइस

9. ख. आधी ऋचा

10. क.अण्

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1 . कर्मधारय समास को परिभाषित कर किसी एक उदाहरण की सिद्धि कीजिये।

2 . द्विगु का अर्थ बताते हुये संख्यापूर्वो द्विगु: सूत्र की व्याख्या लिखिये।

इकाई . 5 शेषो बहुव्रीहिः सूत्र से द्वन्द्वात् चु-द-ष- हान्तात् समाहारे सूत्र तक विस्तृत व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 शेषो बहुव्रीहिः सूत्र से द्वन्द्वात् चु-द-ष- हान्तात् समाहारे सूत्र तक विस्तृत व्याख्या
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

बहुव्रीहि समास का विस्तृत वर्णन इस इकाई का वर्ण्य विषय है। इसके पूर्व की इकाइयों में आपने अव्ययीभाव, और तत्पुरूष आदि समासों से लेकर द्वन्द्व समास तक का अध्ययन किया है। बहुव्रीहि का प्रारम्भ शेषो बहुव्रीहि: सूत्र से होता है जो इसका अधिकार सूत्र कहलाता है। यह द्वन्द्व के पूर्व तक चलता है किन्तु इसी इकाई में द्वन्द्व समास भी वर्णित है।

बहुव्रीहि की विशेषता यह है की जब प्रथमान्त पदों का उनसे अलग होकर किसी भी पद के विकल्प के साथ उसका समास बनाया जाया जाये तो वह बहुव्रीहि कहलाता है। तात्पर्य यह है कि उस समास में आये हुये पद यदि अपने अतिरिक्त किसी अन्य पद के अर्थ का भी बोध कराते हो तो वह बहुव्रीहि कहलाता है। द्वन्द्व समास पूर्व पद और उत्तर पद अर्थात् च के अर्थ का वाची होता है जिसमें युग्म पदों के होने पर भी और के अर्थ में प्रयुक्त रहने पर समास का निर्धारण किया जाता है।

अत: बहुव्रीहि समास के प्रयोगों एवं सूत्रों की सिद्धि और व्याख्या अर्थात् द्वन्द्व समास के प्रयोगों और व्याख्याओं का अध्ययन करने के पश्चात् आप अन्य पदों प्रधान अर्थ वाले शब्दों की सिद्धि करते हुये नपुंसक लिंग में प्रयुक्त युग्म पदों का समास भी बता सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

बहुव्रीहि और द्वन्द्व के वर्णन से सम्बन्धित इस तीसरी इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप बहुव्रीहि की व्यापकता बता सकेंगे।

- ❖ उसमें प्रयुक्त सूत्रों की व्याख्या कर सकेंगे।
- ❖ बहुव्रीहि और तत्पुरुष में अन्तर स्थापित कर सकेंगे।
- ❖ द्वन्द्व समास क्यों पृथक है, इसे समझा सकेंगे।
- ❖ किन पदों का कर्मधारय और बहुव्रीहि में अलग – अलग समास होता है यह भी जान सकेंगे।

5.3 शेषो बहुव्रीहि: सूत्र से द्वन्द्वात् चु-द-ष- हान्तात् समाहारे सूत्र तक विस्तृत व्याख्या

967 . शेषो बहुव्रीहि: 2/2/23।। अधिकारोऽयम् प्राग् द्वन्द्वात्।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ यह है- शेष (बाकी) बहुव्रीहि: अर्थात् बहुव्रीहि होता है। किन्तु यहाँ पर शेष शब्द कहने का भावार्थ यह है कि पिछले कहे गये अव्ययीभाव और 'तत्पुरुष समासों के बाद बचा हुआ। द्वन्द्व समास के पूर्व तक अधिकार चलता है।

बहुव्रीहि समास विधायक सूत्र-

968 . अनेकमन्यपदार्थे /2/24।

अनेक प्रथमान्तम् अन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहि:।

सूत्र का भावार्थ यह है, जब अनेक प्रकार के प्रथमान्त पदों का उनसे अलग किसी भी पद के विकल्प के साथ समास किया जाता है, तब वह बहुव्रीहि कहलाता है। तात्पर्य यह है कि समास में आये हुए पद यदि अपने अतिरिक्त किसी भी अन्य पद का बोध कराते है, तो वह बहुव्रीहि समास होगा। जैसे-पीत और अम्बर दो पद हैं, जिसका अर्थ

है, पीला वस्त्र। यहॉ पर पीताम्बर का अर्थ पीला वस्त्र है। अभिप्राय नहीं है, वास्तव में इसका प्रयोग तो श्रीकृष्ण के लिए हुआ है, जिनका वस्त्र पीला रहता था । श्रीकृष्ण पद समास में नहीं आया है, अत: वह अन्य पद है और उसी का बोध कराने के कारण पीताम्बर: समास बहुव्रीहि संज्ञक है।

969 . सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ 2/2/35। सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्।अत एव ज्ञापकाद् व्यधिकरणपदो बहुव्रीहि:।।

प्रस्तुत सूत्र में यह बताया गया है कि बहुव्रीहि समास में सप्तमी विभक्ति के पद का और विशेषण पूर्व निपात हो, अत: उसे समास में पहले रखा जाय। जब यह निर्णय न हो पाये कि किस पद को पहले रखा जाय तब इसी समसया के निदान के लिए इस सूत्र से विधान किया गया है कि सप्तम्यन्त और विशेषण वाची पदों को पहले ही रखना चाहिए जैसे- 'प्राप्तमुदकं ग्रामम्' (ऐसा गॉव जहॉ पर पानी पहुँच चुका हो) –इस विग्रह में 'प्राप्तम्' और 'उदकम्' दोनों का ही प्रथमान्त हैं, अत: उपसर्जन संज्ञक होने से 910 – उपसर्जन-बोध हो विशेषण वाचक पद' प्राप्तम्' का पहले प्रयोग होता हैं। इसी प्रकार 'कण्ठे कालो। यस्य' (जिसके गले में काला निशान हो) - इस विग्रह में सप्तम्यन्त पद 'कण्ठे का पहले प्रयोग होगा।

970. हलदन्तात् सप्तम्या: संज्ञायाम् 6/3/94। हलन्ताद् अदन्ताद् सप्तम्या अलुक्। कण्ठेकाल:। प्राप्तमुदंक यं प्राप्तोदको ग्राम: । ऊढ़रथोऽनड्वान् । उपहृतपशूं रूद्र: । उद्धृतौदना स्थाली । पीताम्बरो हरि:। वीरपुरुषको ग्राम:।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है- कि संज्ञा के अर्थ में हलन्त तथा अदन्त के बाद सप्तमी का। किन्तु इसे ठीक-ठीक जानने के लिए एक अधिकार सूत्र 'अलुगुत्तरपदे'6/3/1 से अलुक् पद की अनुवृत्ति करनी पड़ती है, इस प्रकार सूत्र का भावार्थ होता है-हलन्त (जिसके अन्त में हल् वर्ण हों) और अदन्त (अकारान्त) के पश्चात् संज्ञा के अर्थ में सप्तमी विभक्ति का लोप नहीं होता है। जैसे – कण्ठ ङि काल सु इस विग्रह में केवल सु को लोप होकर सप्तमी ङि का लोप नहीं होता है और कण्ठेकाल: रूप बनता है।

कण्ठेकाल: (जिसके गले में काला निशान हो)कण्ठे काल: यस्य स: इस लौकिक विग्रह तथा 'कण्ठ ङि काल सु' इस अलौकि विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ सूत्र से सप्तम्यन्त पद का पूर्व निपात होकर बहुव्रीहि समास बनेगा। इस स्थिति में 'हलदन्तात् सप्तम्या: संज्ञायाम्' सूत्र से सप्तमी के लोप का निषेध होकर अनुबंध लोप और गुण होकर 'कण्ठेकाल हुआ किन्तु प्रथमा एक वचन में 'सु' का आगम करने पर और रूत्व विसर्ग करने पर 'कण्ठेकाल:' प्रयोग सिद्ध।

प्राप्तोदक: ग्राम: जिसमें जल पहुँच चुका हो ऐसा ग्राम प्राप्तम् उदकम् यं स: इस लौकिक विग्रह तथा प्राप्त सु उदक सु इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम अनेकमन्य पदार्थ सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। इस स्थिति 'सुपोधातुप्रातिपदिकयो:सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा । इस स्थिति 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो: सूत्र से विभक्ति प्रत्ययों का लोप होगा । तत्पश्चात गुण एकादेश होकर प्राप्तोदक बनेगा। इस स्थिति में कृत्तद्धि-तसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन की विवक्षा में विशेष्य (ग्राम:) के अनुसार

पुल्लिंग में सु विभक्ति प्रत्यय प्राप्त होगा। तत्पश्चात् रूत्व विसर्ग करने पर 'प्राप्तोदकः' सिद्ध होगा 'प्राप्तोदक**:** ग्राम**:**।

ऊढ़रथ: (जिसने रथ खीचा हो ऐसा बैल) 'ऊढ़: रथ: येन स:' इस लौकिक विग्रह एवं ऊढ़ सु रथ सु इस अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्य पदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। इस स्थिति में'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' सूत्र से विशेषण पद ऊद का पूर्व निपात होगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो: सूत्र से विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर ऊढरथ बना। 'कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होने पर प्रथमा एकवचन में विशेष्य के अनुसार 'सु' विभक्ति प्रत्यय प्राप्त होगा तथा 'ऊढरथ सु' की दशा में रुत्व विसर्ग होने 'ऊढरथ:' रूप सिद्ध हुआ।

उपहृतपशु: (ऐस पशु जिसे पशु की बलि दी गयी हो) उपहृत: पशु: यस्मै स: इस लौकिक विग्रह तथा 'उपहृत सु पशु सु इस अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्य पदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। बहुव्रीहि समास होने पर 'सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ' सूत्र से विशेषणपद 'उपहृत' का पूर्व निपात होगा। 'उपहृत सु पशु सु' की दशा में 'सुपोधातु प्रतिपदिकयो:' से 'सु' विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर 'उपहृत पशु' रूप बना। इस स्थिति में प्रातिपदिक संज्ञा होने पर प्रथमा एकवचन में विशेष्य रूद्र: के अनुसार पुल्लिंग में 'सु' विभक्ति प्रत्यय प्राप्त हुआ। उपहृतपशु 'सु' की दशा में रूत्व विसर्ग कार्य होने पर 'उपहृतपशु: रूप सिद्ध हुआ।

उद्धृतौदना: **स्थाली** (ऐसा पतीली जिससे भात निकाल लिया गया हो।) उद्धृत: ओदन: यस्या: सा इस लौकिक विग्रह तथा उद्धृत सु ओदन सु' इस अलौकिक विग्रह में 'अनकमन्यपदार्थ' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। 'सप्तमी विशेष्णे बहुव्रीहौ सूत्र से विशेषण पद 'उदधृत का पूर्व निपात होगा। 'उद्धृत सु ओदन सु' की दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो: सूत्र से 'सु' विभक्ति प्रत्यय का लोप हुआ। 'उद्धृत ओदन' में वृद्धि एकादेश करने पर-उद्धृतोदन। उद्धृतौदन की प्रातिपदिक संज्ञा होकर विशेष्य स्थाली के स्त्रिलिंग में प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय लगने पर समस्त पद बना-उद्धृतौदाना।

पीताम्बर: हरि: (पीले वस्त्र वाले हरि) पीतम् अम्बरं यस्य स: लौकिक विग्रह में तथा पीत सु अम्बर सु इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहिसमास होगा। 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' सूत्र से पूर्व निपात पीतम् (विशेषण) का हुआ। 'पीत सु अम्बर सु' की दशा में सुपो धातुप्रातिपदिकयो: 'सूत्र से सु विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर 'पीत अम्बर' यह रूप हुआ। दीर्घ एकादेश होकर 'पीताम्बर' हुआ तथा प्रातिपदिक संज्ञा होने के पश्चात् प्रथमा एकवचन की विवक्षा में 'सु' की प्राप्ति और विभक्ति कार्य करने पर पीताम्बर: प्रयोग सिद्ध हुआ।

वीरपुकषक: ग्राम: (ऐसा ग्राम जिसमें वीर पुरुष रहते हैं) लौकिक विग्रह वीरा: पुरुषा: यस्मिन् स:' तथा अलौकिक विग्रह बीर जस् पुरुष जस् की स्थिति में 'अनेकमन्यपदार्थ' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। इस स्थिति में 'सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ' सूत्र से विशेषण वीरा:का पूर्व निपात होकर 'सुपोधातु-प्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप्। प्रत्ययों का लोप होकर वीरपुरुष हुआ। अब 'शेषाद्विभाषा' सूत्र से 'कप्' प्रत्यय लगने तथा अनुबंध लोप होने पर 'वीर पुरुषक' हुआ। प्रातिपदिक संज्ञा के बाद 'सु' की प्राप्ति तथा रूत्व विसर्ग होने पर 'वीरपुरुषक: रूप सिद्ध हुआ।

वार्त्तिक-प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोप: प्रपतितपर्ण: प्रपर्ण:।

धातु से निर्मित प्रथमान्त पद के आरम्भ में यदि प्र आदि आवें तो उनका किसी अन्य पद के साथ समास बनता है। इन प्रादिपूर्वक धातुज शब्दों के उत्तर पद का विकल्प से लोप भी होता है। जैसे-

'**प्रपतितपर्ण**:' इस सामाजिक पद में प्रपतित का पर्ण के साथ समास होने पर उत्तर पद पतित का लोप हो जाता है और 'प्रपर्ण:' प्रयोग सिद्ध होता है।

'प्रपर्ण' –प्रकृष्टं पतितं प्रपतितम्। पर्ण: प्रपर्ण:। प्रपतितानि पर्णानि यस्मात् इस लौकिक विग्रह तथा प्रपतित जस् पर्ण जस् इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'प्रातिदभ्योधातुजस्य वा चोत्तर पदलोप:' इस वार्तिक से बहुव्रीहि समास होगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होकर 'प्रपतितपर्ण' बना। इस दशा में 'प्रादिभ्यो धातुजस्य0' इत्यादि वार्त्तिक से प्रपतित के उत्तरपद पतित का विकल्प से लोप होकर 'प्रपर्ण' बनेगा। प्रथमा एकवचन पुल्लिंग में सु प्रत्यय लगने पर, विभक्ति कार्य करने पर प्रपर्ण: प्रयोग सिद्ध होगा।

वार्त्तिक – नञोस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोप: अविद्यमानपुत्र:अपुत्र:।।

नञ् के बाद अस्त्यर्थ (विद्यमान होना) पद का बहुव्रीहि समास होता है और उस स्थिति में उत्तरपद का विकल्प से लोप हो जाता है। जैसे- अविद्यमान का पुत्र: के साथ समास बनने पर उत्तर-पद विद्यमान का लोप होने से अपुत्र: समस्त पद बनता है।

'अपुत्र:' 'अविद्यमान: पुत्रो यस्य' इस लौकिक एवं अविद्यमान सु पुत्र सु इस अलौकिक विग्रह के अनुसार 'नञोस्त्यर्थानाम्0' इत्यादि वार्त्तिक से बहुव्रीहि समास बनेगा। सुप् प्रत्यय का लोप होकर'अविद्यमान पुत्र' ऐसा बनेगा। इस स्थिति में 'नञोस्त्यर्थानां वाच्यों वा0' इस वार्त्तिक से अस्त्यर्थ पद विद्यमान का लोप होकर 'अपुत्र' बनेगा। इस दशा में प्रथमा एकवचन पुल्लिंग में सु प्रत्यय लगने पर रूत्व कार्य करने पर 'अपुत्र' प्रयोग सिद्ध हुआ।

स्त्रीवाची पद को पुल्लिङ्गवत् बनाने का नियम

971. स्त्रिया:पुंवद भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणी प्रियादिषु 6/3/34 ।उक्तंपुस्कादनूङ् ऊड़ोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहि:, निपातनात् पन्चम्या: अलुक् षष्ठयाश्चलुक्। तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तनपुंसकंतस्मात्पर ऊड़ोऽभावो यत्र तथा भूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिंग, उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परत: । गोस्त्रियोरिति ह्रस्व:। चित्रगु:। रूपवद्धार्य: अनुङ् कि वामोरूभार्य:।

यदि प्रियादिगण और पूरणी (प्रथम, द्वितीय, तृतीया आदि) के शब्दों को छोड़कर कोई भी समानाधिकरण स्त्रीलिंग शब्द उत्तरपद के रूप में बाद में आया हो तो भाषितपुंस्क और उङ्प्रत्ययादिरहित स्त्रीवाचक पद के रूप पुलिंग के ही समान होते हैं।

भाषितपुंस्क क्या हैं ? ऐसा पद जिसका प्रयोग पुल्लिंग तथा उससे भिन्न लिंग में एक ही निमित्त से होता हो। प्रियादिगण में ये शब्द गिने जाते हैं- प्रिया, मनोज्ञा, कल्याणी , दुर्भगा, भक्ति:, सचिवा, कान्ता, समा, चपला दुहिता, वामा अबला तनया, आदि।

'**चित्रगु**:' 'चित्रा गावो यस्य' इस लौकिक विग्रह तथा चित्रा जस् गो जस् इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथमा 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। 'सुपोधातु प्रातिपदिकयो0' सूत्र से सुप् प्रत्ययों का लोप होकर 'चित्रागो' बनेगा। इस दशा

में 'स्त्रियो: पुंवद्भाषित0' इस सूत्र से चित्रा जो ऊड्प्रत्ययान्त नहीं है उसे पुल्लिंग 'चित्र' होकर चित्र गो रूप बनेगा। 'एक विभक्तिचाऽपूर्व-निपाते सूत्र से गो की उपसर्जन संज्ञा होगी तथा 'गोस्त्रियोरूपसर्जनस्य' सूत्र से गो के ओ को ह्रस्व उ होकर चित्रगु रूप बनेगा। प्रथमा एकवचन का कार्य करने पर 'चित्रगु:' प्रयोग सिद्ध होगा।

रूपवद्भार्य: - (रूपवती भार्या वाला)

'रूपवती भार्या यस्य स:' इस लौकिक विग्रह तथा 'रूपवती सु भार्या सु' इस अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थ' सूत्र से समास बनेगा।'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर 'रूपवती भार्या ' बनेगा। इस स्थिति में 'स्त्रिया: पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ्' इस वार्त्तिक से रूपवती को पुल्लिंग होकर-रूपवद्भार्या बनेगा। 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' सूत्र से भार्या की उपसर्जन संज्ञा होगा तथा 'गोस्त्रियोरूपसर्जनस्य' सूत्र से उसे ह्रस्व होकर 'रूपवद्भार्य:' बनेगा। प्रथमा विभक्ति एकवचन में सु की प्राप्ति होने तथा विभक्ति कार्य करने पर रूपवद्भार्य: प्रयोग सिद्ध होगा।

वामोरूभार्य: पद में वामोरू के अन्त में ऊड् प्रत्यय है अत: उसे पुंवदभाव होकर ह्रस्व नहीं होगा किन्तु भार्याशब्द के अन्तिम आ को तो 'गोस्त्रियो0' इत्यादि सूत्र से ह्रस्व होगा ही।

972 . अप-पूरणी-प्रमाण्यो: 5/4/126।

पूरणार्थ प्रत्ययान्तं यत् त्रीलिङ्गं, तदन्तात् प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहे: अप् स्यात् ।कल्याणी पन्चमी यासां रात्रीणाम् ता: कल्याणीपन्चमा रात्र्य: । स्त्री प्रमाणी यस्य स स्वीप्रमाण: । अप्रियादिषु किम्? कल्याणीप्रिय:। इत्यादि।

जहॉ पर पूरण अर्थ वाले प्रत्यय से अन्त होने वाला स्त्रीलिंग शब्द आवे या जिसके अन्त में प्रमाणी शब्द हो उससे समासान्त अप् प्रत्यय लगता है।

कल्याणीपन्चमा रात्र्य: (जिन रात्रियों में पॉचवीं रात कल्याणकारी हो) यहॉ पर पन्चन् शब्द से डट् प्रत्यय होकर उसके स्थान पर मट् आदेश होने पर और पन्चन् के न का लोप होकर पन्चम बनता है। पुन: पूरण अर्थ में ङीप् प्रत्यय करने पर पन्चम शब्द हुआ है। 'कल्याणी सु पन्चमी सु' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार 'सुपोधातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से प्रत्ययों का लोप हो जाने पर कल्याणीपन्चमी+अप् हुआ। अनुबन्ध लोप होकर 'यस्येति च' सूत्र से पन्चमी के ईकार का लोप होकर कल्याणीपन्चम् बना। स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् प्रत्यय करने से कल्याणीपन्चमा बना और बहुवचन में जस् प्रत्यय करने पर कल्याणी पन्चमा: रूप सिद्ध हुआ।

'स्त्रीप्रमाण:' (स्त्री जिसके लिए प्रमाण हो) 'स्त्री प्रमाणी यस्य स:' इस लौकिक विग्रह 'तथा स्त्री सु प्रमाणी सु' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। 'सुपोधातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सु:प्रत्ययों का लोप होकर स्त्रीप्रमाणी बनेगा। अत: इस बहुव्रीहि समास के अन्त में प्रमाणी शब्द होने के कारण'अप-पूरणी प्रमाण्यो:' सूत्र से अप् प्रत्यय प्राप्त होकर स्त्रीप्रमाणी अप् होगा। अनुबन्ध लोप होकर तथा 'यस्येति च' सूत्र से ईकार का लोप होकर स्त्रीप्रमाण शब्द बना। पुल्लिङ्ग प्रथमा एकवचन में सु की प्राप्ति करने और विसर्ग कार्य करने पर 'स्त्रीप्रमाण:' प्रयोग सिद्ध होगा।अप्रियादिषु क्यों कहा ? जब प्रिया आदि शब्द परे हो तो स्त्रीलिंग नहीं होगा। जैसे –

'कल्याणी प्रिय:' शब्द में 'कल्याणी प्रिया यस्य स:' इस लौकिक विग्रह तथा 'कलयाणी सु प्रिया सु'। इस अलौकिक विग्रह के अनुसार समास करने पर कल्याणी के बाद प्रिया शब्द है अत: कल्याणी को पुल्लिंग कल्याण नही होग । इस दशा में 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' सूत्र से प्रिया को ह्रस्व होकर 'कल्याणी प्रिय' और प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय करने पर कल्याणी प्रिय: रूप बनेगा।

973. बहुव्रीहौ सवथ्यक्ष्णो: स्वांगात् षच् 5/4/123

स्वांगवाचिसक्थ्यक्ष्णन्ताद्बहुव्रीहे:षच् स्यात्। दीर्घसक्थ:। जलजाक्षी । स्वांगात किम् ? दीर्घसक्थि शकटम्। स्थूलाक्षा वेणुयष्टि:। अक्ष्णो-अदर्शनादिति वक्ष्यमाणोऽच्।

यदि कहीं पर बहुव्रीहि समास वाले पद के अन्त में स्वांगवाचक (प्राणी के अंग) सक्थि (जॉघ), अक्षि (ऑख) शब्द आते हों तो वहॉ पर समासान्त षच् प्रत्यय का विधान होता है। जैसे-'दीर्घे सक्थिनी यस्य स:' इस लौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास बनेगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होकर- दीर्घसक्थि होगा। 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णो0' इत्यादि सूत्र से षच् प्रत्यय लगाने पर, अनुबन्ध लोप करने पर 'दीर्घसक्थि अ' बनेगा। पुन: 'यस्येति च' सूत्र से इ का लोप करने पर दीर्घसक्थ् अ=दीर्घसक्थ बनेगा। इस स्थिति में प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय करने और विसर्ग कार्य करने पर दीर्घसक्थ: प्रयोग सिद्ध होगा ।

जलजाक्षी-(जिसके नेत्र जलज (कमल)की तरह हो) 'जलजे इव अक्षिणी' इस लौकिक तथा' जलज औ अक्षि औ' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होकर 'जलजाक्ष' बनेगा। बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णो: स्वांगात् षच् सूत्र से षच् प्रत्यय करने पर अनुबन्ध लोप करने पर तथा 'यस्येति च ' सूत्र से इ का लोप होने पर –जलजाक्ष बनेगा। षित् होने के कारण 'षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र से ङीष् प्रतयय करने पर 'जलाजाक्षी' प्रयोग सिद्ध होगा।

स्वागात् किम् ? प्रश्न यह है कि प्राणी के वाचक होने पर ही सक्थि और अक्षि से अन्त होने वाले पदों के साथ ही षच् प्रत्यय क्यों लगेगा? यह इसलिए कि 'दीर्घसक्थ शकत' (लम्बे धुरे वाली गाड़ी) और 'स्थूलाक्षावेणु यष्टि ' (मौटी ऑखों वाली बॉस की लाठी) आदि प्रयोगों में सक्थि तथा अक्षि शब्द प्राणी के अंगवाचक नहीं है। बल्कि शकट और यष्टि के अंगवाची हैं जो प्राणी है ही नहीं । अत: बहुव्रीहि समास हो जाने पर भी षच् प्रत्यय नहीं होगा। 'स्थूलक्षा' पद में 'अक्ष्णोऽदर्शनात्' सूत्र से अच् प्रत्यय होकर , 'यस्येति' सूत्र से स्थूलाक्षि के इ का लोप होने पर 'स्थूलाक्ष' बनेगा। स्त्रीलिंग में 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से टाप् (आ) प्रत्यय करने पर स्थूलाक्षा प्रयोग सिद्ध होगा ।

974 . द्वि त्रिभ्यां ष मूर्ध्न: 5/4/215।

आभ्यां मूर्ध्न: ष: बहुव्रीहौ द्विमूर्ध: त्रिमूर्ध:॥

यदि बहुव्रीहि समास में द्वि तथा त्रि शब्द के बाद मूर्धन् शब्द आया हो तो उससे समासान्त ष प्रत्यय लगता है। जैसे -

द्विमूर्ध: – (दो सिरों वाला)'द्वौ मूर्धानौ यस्य ' इस लौकिक विग्रह तथ 'द्वि औ मूर्धन् औ' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में ' सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर द्विमूर्धन् बनेगा 'द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्न:' सू0 से ष प्रतयय करने पर विभक्ति कार्य

करने पर द्विमूर्ध: प्रयोग सिद्ध हुआ। 'त्रिमूर्ध:' त्रयो मूर्धान: यस्य' इस लौकिक तथा 'त्रि जस् मूर्धन् जस्' इस अलौकिक विग्रह की दशा में द्विमूर्ध: की तरह त्रिमूर्ध: प्रयोग की सिद्ध हो जायेगी।

समासान्त अप् प्रत्यय -

975 .अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्न: 5/4/117।

आभ्यां लोम्नो अप् स्यात् बहुव्रीहौ। अन्तर्लोम:। बहिर्लोम:।

यदि अन्तर् तथा बहिर् शब्दों के बाद लोमन् शब्द का बहुव्रीहि समास हो तो समासान्त अप् प्रत्यय लगता है। जैसे –

'अन्तर्लोम:' (जिसके रोएँ अन्दर हों)

'अन्तर लोमानि यस्य स:' इस लौकिक विग्रह तथा 'अन्तर लोमन् जस्' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्यय जस् का लोप होकर अन्तर्लोमन बनेगा। अन्तर्बहिर्भ्यां 'च लोम्न:' सूत्र के द्वारा अप् प्रत्यय करने पर अन्तर्लोमन् अप् हुआ। 'नस्तद्धिते' सूत्र से अन्तर्लोमन् के अन् (टी) का लोप तथा सु प्रत्यय करने पर विसर्ग कार्य करने पर अन्तर्लोम: प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार बहिर्लोम: की सिद्धि भी समझनी चाहिए।

976 . पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्य: 5/4/138।

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात् परस्य पादशब्दस्य लोप: स्याद् बहुव्रीहौ। व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात्। अहस्त्यादिभ्य: किम्? अस्तिपाद: कुसूलपाद:।

हस्ति (हाथी) आदि के अलावा किसी अन्य उपमान के बाद यदि 'पाद' शब्द आया हुआ हो तो पद शब्द के अन्तिम अल् (अ) का लोप हो जाता है, बहुव्रीहि समास में। हस्त्यादि गण में बताये गये 19 शब्द हैं-हस्तिन्, कुद्दाल, अश्व, कशिक, कुयत, कटोल, कटोलक, गण्डोल, गण्डोलक, गण्डोल, आज, कपोत , जाल, गण्ड, महिला, दासी, गणिका आदि।अन्तिम अल् के उदाहरण में व्याघ्रपात् की सिद्धि -

व्याघ्रपात्- 'व्याघ्रस्येव पादौ अस्य' लौकिक विग्रह तथा 'व्याघ्र ङस् पाद औ' इस अलौकिक विग्रह में व्यधिकरण बहुव्रीहि समास बनेगा। सुपो धातुप्रातिपदिकयो: सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होकर व्याघ्रपाद् बना। 'पादस्यलोपोऽहस्तादिभ्य:' सूत्र से अन्तिम अल (अ) का लोप होकर व्याध्रपाद् बना।

व्याघ्रपात्- 'व्याघ्रस्येव पादौ अस्य' लौकिक विग्रह तथा 'व्याध्र ङस् पाद औ' इस अलौकिक विग्रह में व्याधिकरण बहुव्रीहि समास बनेगा। सुपाधातु प्रातिपदिकयो: सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होकर व्याघ्रपाद् बना। 'पादस्यलोपोहस्त्यादिभ्य:' सूत्र से अन्तिम अल (अ) का लोप होकर व्याघ्रपाद् बना।

अहस्तादिभ्य: किम्? हस्त्यादि इसलिए कहा कि हस्ति आदि शब्द उपमान के रूप में हो और उनके साथ 'पाद' शब्द आया हो तो पाद के अ का लोप नहीं होगा। जैसे- हस्तिपाद: (हाथी के पैर के समान पैर वाला)। हस्तिन: पादौ इव पादौ यस्य तथा हस्तिन् ङस् पाद और इस अलौकिक विग्रह में 'सुपोधातुप्रा0' इत्यादि सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होकर 'हस्तिपाद' ऐसा पद बना। हस्ति पद का वर्णन तो सूत्र में ही

किया गया है इसलिए पाद् के अ का लोप नहीं होगा। प्र0 एकवचन में सु होकर विसर्ग होकर हस्तिपाद: प्रयोग सिद्ध होगा। इसी प्रकार कुसूलपाद: की सिद्धि भी समझनी चाहिए

977 . संख्या सु पूर्वस्य 5/4/140।

पादस्य लोप: स्यात् समासान्तो बहुव्रीहौ। द्विपात्।1 सुपात।।

हस्ति (हाथी) आदि के जब बहुव्रीहि समास के अन्तर्गत संख्यावाचक शब्द अथवा सु के बाद पाद शब्द आया हो तो पाद के अन्तिम अ का समासान्त लोप हो जाता है। जैसे –

द्विपात् (दो पैर वाला) 'द्वौ पादौ यस्य' इस लौकिक विग्रह तथा 'द्वि औ पाद औ' इस अलौकिक विग्रह की दशा में बहुव्रीह की दशा में बहुव्रीहि समास बनेगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों औ आदि का लोप होकर –द्विपाद बना। 'संख्यासुपूर्वस्य' सूत्र से 'पाद' शब्द के अ का लोप होकर'द्विपाद् या द्विपात' प्रयोग सि' हुआ। इसी प्रकार 'शोभनौ पादौ यस्य ' लौकिक तथा 'सु पाद औ' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में सुप् लोप तथा अ लोप होकर सुपात् प्रयोग बन जायगा।

978 . संख्या सु पूर्वस्य 5/4/140 ।

लोप: स्यात्। उत्काकुत, विकाकुत्। जब कभी बहुव्रीहि समास में उद् तथा वि के पश्चात् 'काकुद' शब्द आ जाय तो (काकुद)के अन्तिम अल् अ को समासान्त लोप प्राप्त होता है। जैसे-

उत्काकुत् – (जिसका तालु भाग ऊपर उठा हो)'उद्गतं काकुदं यस्य' लौकिक तथा 'उद् काकुद सु' इस अलौकिक विग्रह की दशा में बहुव्रीहि समास करने पर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्यय का लोप हो जाने पर –उद्काकुद बनेगा। 'उद्विभ्याम् काकुदस्य' इस सूत्र से काकुद के अन्तिम अल् अ का लोप होने से – उत्काकुत् या उद्काकुद बनेगा।

विकाकुत्- (जिसका तालुभाग विकृत हो) 'विगतं काकुदं यस्य' लौकिक एवं 'वि काकुद सु' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सुप् लोप , अल् (अ) लोप तथा वाऽवसाने सूत्र द को त होने पर – विकाकृत् बनेगा।

979 .पूर्णाद् विभाषा 5/4/149

पूर्णकाकुत् पूर्णकाकुद:। पूर्ण शब्द का काकुद् शब्द के साथ बहुव्रीहि समास करने पर काकुद के अन्तिम अल् (अ) का विभाषा अर्थात् विकल्प से समासान्त लोप होता है। जैसे – पूर्णकाकुत् , पूर्णकाकुद- (जिसका तालु पूरा हो) 'पूर्ण काकुदं यस्य' लौकिक तथा 'पूर्णकाकुद-सु' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में बहुव्रीहि समास बनेगा। इस दशा में पूर्णाद् विभाषा सूत्र से अन्त्य 'अ' का समासान्त लोप करने पर तथा सुपोधातु प्रातिपदिकयो: सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होने पर- पूर्णकाकुद् तथा वाऽवसाने सूत्र से 'द' को 'त्' होकर पूर्णकाकुत् रूप बना। यदि अन्त्य अल् का लोप न हो तो प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय करने पर और विसर्ग कार्य करने पर पूर्णकाकुद: प्रयोग सिद्ध होगा

980 . सुहृद्-दुहृदौ मित्राऽमित्रयो: 5/4/150

सुदुभ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते। सुहृद् –मित्रम्। दुर्हृद्-अमित्र:। मित्र के अर्थ में सुहृद् तथा अमित्र के अर्थ में दुर्हृद् शब्दों में हृद् निपातन होता है। जो कार्य बिना सुत्र तथा नियम के होते है उन्हें निपातन कहा जाता है। निपातन की परिभाषा है – लक्षणं विनैव निपातति प्रवर्तते लक्ष्येषु इति निपातमम्।

जैसे- सुहृत्-(मित्र) 'शोभनं हृदयं यस्य' लौकिक तथा 'सुहृदय सु 'इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सु प्रत्यय का लोप होने पर 'सुहृदय' प्रयोग बना। इस दशा में 'सुहृदुहृर्दौ-मित्राऽमित्रयो:' सूत्र से हृदय को हृद् आदेश होने पर सुहृद् बना तथा पुलिंग प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय करने और वावऽसाने सूत्र से द् को त् करने पर सुहृद् तथा सुहृत् प्रयोग बना।

इसी प्रकार दुष्टं हृदयं यस्य तथा 'दुर्हृदय सु' इन विग्रहों में प्रकृत सूत्र से दुर्हृद शब्द की सिद्धि होगी।

981 . उद: प्रभृतिभ्य: कप् 5/4/151।

बहुव्रीहि समास के अन्तर्गत उरस् आदि शब्दों से समासान्त कप् प्रत्यय होता है।

उरस् गण में –सर्पिस, उपानह, पुमान्, अनड्वान्, पय:, नौ: लक्ष्मी: दधि, मधु , शाली , अर्थान्नज: आदि आते हैं।

182 . कस्कादिषु च 8/3/48।

एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य ष: अन्यस्य तु स:। इति स: -व्यूढोस्क:। प्रियसर्पिष्क:।

कस्क गण में कहे गये शब्दों में जहॉ पर इ और उ (इण्) के बाद विसर्ग आया हो तो उसे ष् आदेश होता है; किन्तु जहॉ पर विसर्ग इण् से परे न हो तो उस विसर्ग को 'स्' आदेश होता है। निम्नलिखित शब्द कस्कादिगण में गिनाये गये है -

कस्क:, कौतस्कुत:, भ्रातुष्पुत्र: , भ्रातुष्पुत्र:, शुनकर्ण:, सद्यसकाक्त:, सद्यस्की:, कास्कान्, सर्पिष्कुण्डिका,धनुष्कपाक्तम्, यजुषाम, अयस्कान्त:, तमस्काण्ड:, मेदस्पिण्ड:, भास्कर:, बर्हिस्पलम् आदि। 'व्यूढोरस्क:'- (जिसका वक्षस्थल विशाल)

'व्यूढम् उरो यस्य' लौकिक तथा 'व्यूढ सु उरस् सु' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार बहुव्रीहि समास बनेगा। सुप् लोप होकर –व्यूढोरस् बना। 'उर:प्रभृतिभ्य: कप्' सूत्र से कप् प्रत्यय करने पर, अनुबन्ध लोप करने पर व्यूढोरस्क हुआ। 'ससजुषोरु:' सूत्र से स को रू आदेश हुआ और अनुबन्ध लोप होकर'खरवसानयोर्विसर्जनीय:' सूत्र से विसर्ग होकर – व्यूढोर: +क हुआ। इस स्थिति में 'कस्कादिषु च'सूत्र से विसर्ग को स आदेश होकर व्यूढोरस्क हुआ। पुलिंग प्रथमाएकवचन में सु प्रत्यय का आगम करने और विसर्ग कार्य करने पर व्यूढोरस्क: प्रयोग सिद्ध हुआ।

983 . निष्ठा 2/2/36

निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्व स्यात्। युक्तयोग:।

निष्ठा के अर्थ को व्यक्त करने वाले प्रत्यय जिसके अन्त में हों उसका प्रयोग बहुव्रीहि समास में पहले ही होता है। जैसे- 'युक्तयोग' (योग में रमा हुआ) 'युक्त:' योगो येन यस्य वा' लौकिक तथा युक्त सु योग सु इस अलौकिक विग्रह में बहुव्रीहि समास होगा। 'निष्ठा' सूत्र से 'युक्त' शब्द का पूर्व में प्रयोग होकर-सुप् लोप होकर युक्तयोग बना।

पुलिंग प्रथमा एकवचन में सु का आगम और विभक्ति कार्य करने पर युक्तयोग: प्रयोग सिद्ध हुआ।

984 . शेषाद्विभाषा 5/4/154

अनुक्तसमासन्ताद् बहुव्रीहे: कप् वा। महायशस्क:। महायशा:।

बहुव्रीहि समास के अन्तर्गत जब किसी समासान्त प्रत्यय का विधान न हुआ हो तो उससे विकल्प के द्वारा कप् प्रत्यय होता है। जैसे -

'महायशस्क:' - (महान यशस्वी) 'महत् यशो यस्य' इस लौकिक तथा 'महत्सु यशस् सु' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार बहुव्रीहि समास बनेगा। सुप् होकर –महत् यशस् होगा। किसी अन्य समासान्त का विधान न होने से 'शेषाद् विभाषा' सूत्र से कप् प्रत्यय करने पर महत् यशस् कप् हुआ। अनुबन्ध लोप होने पर महत् में त् के स्थान पर 'आन्महत:' सूत्र से आ करने पर महायशस्+क हुआ। 'ससजुषो रु:' सूत्र से स् को रु आदेश करने पर, अनुबन्ध लोप करने पर खरवसानयोर्विसर्जनीय: सत्र से विसर्ग कार्य तथा 'सोऽपदादौ' सूत्र से पुन: विसर्ग को स् आदेश करने पर महायशस्क रूप बना। पुलिंग प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय का आगम करने पर विसर्ग कार्य करने पर विसर्ग कार्य करने पर महायशस्क: प्रयोग सिद्ध हुआ।

महायशा- 'महत्सु यशस् सु' अलौकिक विग्रह के अनुसार सुप् लोप होकर महत् यशस् और'आन्महत:'सूत्र से त् को आ होकर महायशस् बना । इस स्थिति में 'अत्वसन्तस्य चाधातो:' सूत्र से उपधा के 'अ' को दीर्घ होकर महायशास् बना। पुलिंग प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय का आगम और विसर्ग कार्य करने पर महायशा: प्रयोग सिद्ध हुआ।

5 . द्वन्द्व समास

985 . चार्थे 2/2/29

अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते, स द्वन्द्व:। समुच्चयऽन्वाचयेतरेतरयोग-समाहारा-श्चार्था: । तत्र 'ईश्वरं गुरूं च भजस्व इति परस्पर निरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नवय: समुच्चय: भिक्षामट गां चानय । इति अन्यतरस्यानुषंगिकत्वेनाऽन्वयोऽन्वाचय:। अनयोरसामर्थ्यात् समासो न। 'धवखदिरौ छिन्धि' इति मिलितानामन्वय: इतरेतरयोग:संज्ञापरिभाषम् इति समूह: समाहार:।

अनेक सुबन्त जब 'च' का अर्थ बताने वाले होते है तब उन सुबन्तों का विकल्प से समास होता है। उस समास को द्वन्द्व समास कहते हैं। 'च' का प्रयोग चार प्रकार के अर्थो में होता है- समुच्चय , अन्वाचय, इतरेतरयोग और समाहार।

(क) **समुच्चय**- 'ईश्वर और गुरू की सेवा करो' ऐसे वाक्यों में परस्पर निरपेक्ष अनेक पदार्थो के एक साथ अन्वय करने पर 'च' समुच्चय अर्थ वाला होता है। जैसे-'ईश्वरं गुरूं च भजस्व'।

(ख) **अन्वाचय**- 'भिक्षा के लिए जाओ तथा गाय भी ले आओ' आदि वाक्यों में जब एक साथ अन्वय होने वाले पदार्थो में प्रथम वाक्य का दूसरे वाक्य के साथ गौण रूप से अन्वय किया जाय तो अन्वाचय का अर्थ होता है जैसे- 'भिक्षा अट गां च आनय'।

(ग) **इतरेतरयोग**- जब सुबन्त पद के साथ कई पदार्थ मिलकर अन्वित होते है तो उसे इतरेतरयोग कहते है किन्तु विशेषता यह है कि ये सुबन्त पद के अर्थ के साथ अन्वित होते हैं। जैसे -'खैर तथा धव को काटो' आदि वाक्य में धव तथा खैर आपस में मिलकर आगे आने वाले छिन्धि (काटना) क्रिया के साथ अन्वित हो रहे हैं। अत: यहॉ इतर-इतर योग है। इन स्थितियों में आने वाले पदों का एक साथ समास बनता है।

(घ) समाहार- समाहार शब्द समूह का वाचक होता है किन्तु इसमें पदार्थों के समूह का अन्वय होता है। जैसे- संज्ञा और परिभाषा का समूह । इस दशा में भी अनेक सुबन्त पदों का द्वन्द्व समास बनता है। अत: द्वन्द्व समास के दो भेद हो जाते हैं।

(1) **इतरेतरद्वन्द्व**

(2) **समाहार द्वन्द्व**

986 राजदन्तादिषु परम् 2/2/31

एषु पूर्व प्रयोगार्ह परं स्यात् । दन्तानां राजा-राजदन्त: ।

'राजदान्त' आदि शब्दों में जिसका प्रयोग पहले होना चाहिए उसी को बाद में रखा जाता है। राजदन्तादिगण में पचास से अधिक शब्द गिनाये गये हैं1जैसे – राजदन्त: -(प्रमुख दॉत) 'दान्तानां राजा' लौकिक तथा 'दन्त आम् राजन् सु' इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'षष्ठी' सूत्र से षष्ठ्यन्त पद का सुबन्त पद के साथ तलपुरूष समास होगा। यहॉ पर प्रथमा होने से षष्ठ्यन्त पद दन्तानां की 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा होगी और 'उपसर्जनम् पूर्व' सूत्र से उसका पहले से प्रयोग होना चाहिए किन्तु , 'राजन्तादिषुपरम्' सूत्र से पहले प्रयोगन होकर वह बाद में रखा जायेगा तब राजन्सु दन्त आम् ऐसा रूप बनेगा। इस दशा में सुप् लोप होने पर - राजन् दन्त बनेगा। 'न लोप: प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से न का लोप होने पर राजदन्त होगा। पुलिंग प्रथमा एकवचन में सु का आगम्, अनुबन्ध लोप और विसर्ग कार्य करने पर राजदन्त: प्रयोग सिद्ध होगा।

(वार्तिक) धर्मादिश्वनियम: ।अर्धधमौ, धर्मार्थवित्यादि।

जब धर्म आदि शब्द हो तो पूर्व अथवा हो तो पूर्व अथवा पर में रखने का कोई निश्चित विधान नहीं है। अर्थात् राजन्तादि गण में प्रयुक्त धर्मार्थौ, कामार्थौ, अर्थधर्मौ शब्दार्थौ आदि पदों में इच्छानुसार किसी भी पद का पहले प्रयोग हो सकता है। जैसे-

धमार्थौ- 'धर्मश्चअर्थश्च' लौकिक तथा 'धर्मसु अर्थ सु' इस अलौकिक विग्रह में इतरेतरयोग होने से सर्वप्रथम'चार्थे द्वन्द्व:' सूत्र से द्वन्द्व समास प्राप्त होगा। 'धर्मादिश्वनियर्म:' इस वार्त्तिक के अनुसार प्रयोग का अनियम होने से और सुप् लोप होने से धर्मार्थ पद बनेगा। प्रथमा विभक्ति द्विवचन में औ प्रत्यय करने पर धर्मार्थौ प्रयोग सिद्ध हुआ।

987 . द्वन्द्वे घि 2/2/32

द्वन्द्वे धिसंज्ञं पूर्व स्यात्। हरिश्च हरश्च हरिहरौ।

घि संज्ञक पद का प्रयोग द्वन्द्व समास में पहले ही होता है। जैसे-

हरिहरौ – हरिश्च हरश्च लौकिक और 'हरिशु और हर सु' इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'चार्थेद्वन्द्व: सूत्र' से द्वन्द्व समास बनेगा। हरि तथा हर में हरि घिसंज्ञक पद है।

अत: 'द्वन्द्वे घि' सूत्र से वह पहले प्रयुक्त होकर सुप् लोप होने के बाद 'हरिह' पद बनेगा। प्रथमा विभक्ति के द्विवचन में 'औ' प्रत्यय लगाने पर हरिहरौ प्रयोग सिद्ध होगा।

988 . अजाद्यदन्तम् 2/233 इदं द्वन्द्वे पूर्व स्यात् । ईशकृष्णौ।

द्वन्द्व समास के अन्तर्गत स्वर से आरम्भ होने वाले और अदन्त (ह्रस्व अ) पदों का प्रयोग पूर्व में होता है। जैसे-ईशकृष्णौ-'ईशश्च कृष्णश्च' लौकिक तथा 'ईश सु कृष्ण सु' इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम चार्थे द्वन्द्व:' सूत्र से द्वन्द्व समास होगा। ईश पद अजादि तथा ह्रस्वान्त है। अत: 'अजाद्यदन्तम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होकर सुप् लोप होने से ईशकृष्ण बना। समुदाय के कारण द्विवचन में औ प्रत्यय करने पर 'ईशकृष्णौ' प्रयोग सिद्ध हुआ।

989 अल्पाच्तरम् 2/2/34 शिव केशवौ

जिस पद में स्वर वर्ण कम हो वहॉ द्वन्द्व समास करते समय उनका प्रयोग पूर्व में होता है। जैसे-

शिवकेशवौ – 'शिवश्च केशवश्च' लौकिक तथा 'शिवासु केशव सु' इस अलौकिक विग्रह में 'चार्थेद्वन्द्व:' सूत्र से द्वन्द्व समास हुआ। सुप् लोप होकर' अल्पाच्तरम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होने पर-'शिवकेशव' रूप बना। प्रथम विभक्ति द्विवचन में 'औ' प्रत्यय करने पर 'शिवकेशवौ' प्रयोग सिद्ध हुआ।

990 . **पिता मात्रा** 1/2/70माता सहोक्तौ पिता वा शिश्यते। माता च पिता च माता पितरौ वा। जब माता पद के साथ पिता पद का प्रयोग द्वन्द्व समास में हो तो विकल्प से 'पित' शब्द ही शेष बचता है तथा माता पद का लोप हो जाता है। जैसे –

पितरौ – 'माता च पिता च' लौकिक और मातृ सु पितृ सु' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में सर्वप्रथम द्वन्द्व समास बनेगा। पितामात्रा' इस सूत्र से विकल्प से मातृ पद का लोप होकर 'पितृ शब्द बना समूदायवाची होने से द्विवचन में औ प्रत्यय करने तथा 'ऋतो ङि सर्वनामस्थानयो:' सूत्र से ऋ को अर् गुण होकर 'पितरौं प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'मातृ सु पितृ सु इस अलौकिक विग्रह में 'अभ्यर्हित पूर्व' सूत्र से 'मातृ' सु पितृ सु' इस अलौकिक विग्रह में 'अभ्यर्हितं पूर्व' सूत्र से 'मातृ पद का पूर्व में प्रयोग और 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' सूत्र से मातृ से मातृ के ऋ को आनङ् आदेश, अनुबन्ध लोप होकर 'माता पितृ' रूप बनेगा। तथा समुदाय वाची होने से द्विवचन में 'औ' प्रत्यय करने पर 'माता पितरौ' प्रयोग सिद्ध होगा।

991 . द्वन्द्वश्च प्राणि तूर्य-सेनांगानाम् 2/4/2 **एषां द्वन्द्व एकवत्**। पाणिपादम्। मार्दंगिक वैणिविकम् रथिकाश्वारोहम्।प्राणी के अंगो के वाचक, वाद्ययन्त्र के अंगों के वाचक या प्रकार' सेना के अगों के वाचक पदों का द्वन्द्व समास एकवचनान्त होता है। यह सब समाहार द्वन्द्व में आता है। जबकि इतरेतरद्वन्द्व द्विवचन या बहुवचन में होता है। जैसे-

पाणिपदम्- 'पाणी च पादौ च' लौकि और 'पाणि और पाद औ' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार द्वन्द्व समाहार समास होगा। सव् लोप तथा 'द्वन्द्वश्चप्राणितुर्य0 इत्यादि सूत्र से नपुंसक लिंग प्रथमा एक वचन में पाणिपदम् प्रयोग सिद्ध होगा।

मार्दङिक वैणविकम् - (मृदंग तथा वंशी वादकों का समूह)। मार्दंगिकाश्च वैणविकश्च ऐतेषां समाहार:' लौकिक और 'मार्दङ्गिक जस् वैणविकजस् अलौकिक विग्रह में सुप् लोप

होकर प्रकृत सूत्र से तथा सनपुंसकम् सूत्र से नपुंसकलिंग की विवक्षा में प्रथमा एकवचन में मार्दङि गकवैणविकम् प्रयोग सिद्ध होगा। इसी प्रकार 'रथिकाश्च अश्वारोहाश्च ऐतेषां समाहार: लौकिक तथा रथिक जस् अश्वारोह जस् इस अलौकिक विग्रह में सूप् लोप तथा प्राणितूर्य इत्यादि सूत्र से एकवद भाव होकर नपुंसकलिंग में प्रथमा एकवचन में रथिकाश्वारोहम प्रयोग बनेगा।

992 . द्वन्द्वात् चु –द-ष- हान्तात् समाहारे 5/4/106

चवर्गान्ताद् दषहान्ताट्टच् द्वन्द्वट् टच् स्यात् समाहारे । वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम् त्वकस्रजम् । शमीदृशदम्। वाकत्विषम् । छात्रोपानहम् । समाहारे किम्? प्रावृट्शरदौ।

समाहार के अर्थ में जब द्वन्द्व समास के अन्त में चवर्ग द् ,ष् ,और 'ह्' होता है तब उससे समासान्त टच् प्रत्यय का विधान किया जाता है। जैसे –

वाक्त्वचम् - 'वाक् च त्वच् च' लौकिक और समास होकर सुप् लोप होने से - वाच्त्वच् बनेगा।'चो: कु:' इस सूत्र से वाच् के च् का क् आदेश होकर वाक्त्वच् होगा पुन: द्वन्द्वात् चु इत्यादि सूत्र से टच् प्रत्यय होकर अनुबन्ध लोप होकर वाक्त्वच रूप बनेगा।'सनपुंसकम्' सूत्र से नपुंसकलिंग प्रथमा एकवचन में वाकत्वचम् प्रयोग सिद्ध होगा इसी प्रकार 'खक् च स्रक् च तयो: समाहार:' लौकिक और 'त्वच् सु स्रज् सु' इस अलौकिक विग्रह में प्रकृत सूत्रों से त्वक्स्रजम् पद की सिद्धि होगी।

शमीच दृषद् च तयो: समाहार: (शमी और सिलवट) इस लौकिक विग्रह तथा 'शमी सु दृषद् सु' इस अलौकिक विग्रह में समासान्त टच् प्रत्यय करने पर शमीदृशदम् प्रयोग बनेगा। 'वाक्च त्विट् च तयो: समाहार:' (वाणी और तेज) लौकि तथा 'वाच् सु त्विष् सु इस अलौकिक विग्रह में द्वन्द्व समास होकर प्रकृत सूत्र से समासान्त प्रत्यय टच् लगाने पर नपुसंकलिंग प्रथमा एकवचन में वाक्त्विषम् प्रयोग सिद्ध होगा।

'छत्रं च उपनत् च तयो: समाहार: लौकिक और छात्र सु उपानह् सु' इस आलौकिक विग्रह में सुप् लोप गुण आदेश तथा समासान्त टच् प्रत्यय करने पर अनुबन्ध लोप होकर छात्रो पानहम् प्रयोग बना। समाहार अर्थ में ही टच् प्रत्यय क्यों होगा, इसके लिए कहते हैं कि इतरेतरयोग होने पर टच् प्रत्यय नहीं होगा। जैसे- प्रावृष्सु शरद सु अलौकिक विग्रह में इतरेतर अर्थ में द्वन्द्व समास होगा। सुप् लोप होकर प्रावृष् के प्कार को जस् करने पर ड् तथा ड् को टु करने पर प्रावृट् शरद् बनेगा। यद्यपि यह प्रयोग दकारान्त है फिर भी समाहार द्वन्द्व न होने से टच् प्रत्यय नहीं होगा तब इतरेतर योग से प्रथमा के द्विवचन में 'और' प्रत्यय करने पर – 'प्रावृट्शरदौ' प्रयोग सिद्ध होगा।

अभ्यास के प्रश्न –

निम्न लिखित के एक शब्द में उत्तर दीजिए –

1.पितरौ में कौन सा समास होता है

2.पाणिपादम् में समास है

3.शिव केशव का अर्थ है

4.मार्दंगिक का क्या अर्थ है

5. वैणविक कहलाता है

6. ईशकृष्णौ में समास किस सूत्र से होता है

7. द्वन्द्व समास कितने प्रकार का का होता है

5.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आपने जाना कि बहुव्रीहि समास का अधिकार द्वन्द्व समास के प्रारम्भ होने से चलता है । सर्वप्रथम इसमें प्रथमान्त पदों का उनके साथ अनेक वैकल्पिक पदों के साथ समास करने पर बहुव्रीहि समास कहलाता है। उदाहरण केलिये यदि कहा जाये कि पीत और अम्बर दो पद है जिसका अर्थ है – पीला वस्त्र । किन्तु पीताम्बर और जिसके लिये पीला वस्त्र है उसका अभिप्राय किसी अन्य पद में अभीष्ट है । यह कहा गया है श्री कृष्ण के लिये अत: वह समास में नहीं आया अन्य पद में आया इसीलिये पीला वस्त्र है जिसका ऐसा अन्य कोई श्री कृष्ण है आदि । इस प्रकार का अर्थ की प्रतीति कराने वाले पदों में समास जब बनता है तब वह बहुव्रीहि के अन्तर्गत आता है । द्वन्द्व समास तो च के अर्थ में भी प्रचलित है । किन्तु यह चार प्रकार से होता है - समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतर, समाहार । इन चार प्रकार के अर्थो को बताने वाला चारों में अलग – अलग प्रयोगों की सिद्धि कराने वाला द्वन्द्व समास कहलाता है । किन्तु इसमें प्रयुक्त पद नपुंसक लिंग में गिने जाते है । प्रमुखता का अर्थ भी द्वन्द्व का कारक होता है । जैसे – दन्तराज ।

अत: इस इकाई में आपने व्याकरण की प्रक्रिया के आधार पर बहुव्रीहि और द्वन्द्व समास का अध्ययन करके उनके प्रयोगों की सिद्धि जाना हैं । इनसे सम्बन्धित बनने वाले अन्य प्रयोगों को भी आप बता सकेंगे ।

5.5 निबन्धात्मक प्रश्न

1. द्वन्द्व समास के किन्हीं दो सत्रों की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए .

2.पितरौ की सिद्धि कीजिए

3. शिवकेशवौ की

चतुर्थ सेमेस्टर/ SEMESTER-IV

खण्ड – द्वितीय

व्याकरण दर्शन (वाक्यपदीय)

खण्ड – द्वितीय, इकाई – प्रथम
आचार्य भर्तृहरि एवं उनके वाक्यपदीय का परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 आचार्य भर्तृहरि एवं उनके वाक्यपदीय का परिचय
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 वहुविकल्पीय प्रश्न-उत्तर
1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न-उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 उपयोगी पुस्तकें
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1- प्रस्तावना:-

व्याकरण दर्शनशास्त्र से सम्बन्धित खण्ड द्वितीय की यह प्रथम इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि व्याकरण दर्शनशास्त्र में वाक्यपदीयम् की आवश्यकता क्या है ? व्याकरणदर्शन शास्त्र में वाक्यपदीयम् किसे कहते है। व्याकरण दर्शनशास्त्र में वाक्यपदीयम् शब्द का क्या अर्थ है ? आचार्य भर्तृहरि ने इस ग्रन्थ का नाम वाक्यपदीय रखा जिसका अर्थ है वाक्य और पद के विषय में विचार के लिए आरम्भ ग्रन्थ **(वाक्यं च पदं च वाक्यपदे ते अधिकृत्य कृतो ग्रन्थो वाक्यपदीयम्)।** इस वाक्यपदीय में तीन काण्ड हैं, इसीलिए इसे त्रिकाण्डी भी कहा गया है। महामहोपाध्याय पण्डित श्री गङ्गाधर शास्त्री मानवल्ली ने काशी संस्करण की भूमिका में लिखा है कि 'वाक्य और पद विचारक ग्रन्थ होने के कारण दो काण्ड की ही 'वाक्यपदीय' संज्ञा है, यही बात द्वितीय काण्ड के अन्तिम श्लोकों से ही व्यक्त हो जाती है जो ग्रन्थ-समाप्ति में लिखे गये हैं। तृतीय काण्ड तो कारक आदि विचार परक है अतः आरम्भ के दो काण्डों को ही 'वाक्यपदीय' स्वीकार करना चाहिए।' इधर जो वाक्यपदीय पर स्वोपज्ञ टीका प्राप्त हुई है वह भी दो काण्डों पर ही है, यह भी सिद्ध करता है कि आचार्य भर्तृहरि ने प्रथम और द्वितीय काण्ड को ही 'वाक्यपदीय' के रूप में स्वीकार किया हो।

1.2- उद्देश्य:-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- ❖ वाक्यपदीयम् का अर्थ क्या है इसके विषय में परिचित हो सकेंगे।
- ❖ वाक्यपदीयम् में कितने काण्ड है, इसके विषय में परिचित होंगे।
- ❖ भर्तृहरि के विषय में परिचित होंगे।
- ❖ भर्तृहरि के काल के विषय में परिचित होंगे।
- ❖ भर्तृहरि रचित ग्रन्थ के विषय में परिचित होंगे।
- ❖ क्या भर्तृहरि बौद्ध थे ? इसके विषय में परिचित होंगे।

1.3- आचार्य भर्तृहरि एवं उनका वाक्यपदीय का परिचय:-

आचार्य भर्तृहरि और उनका वाक्यपदीय—

वैयाकरणों की परम्परा में पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि के बाद जिनका नाम बड़े आदर और सम्मान से लिया जाता है वे भर्तृहरि हैं। इन्होंने किस समय भारतभूमि को अलंकृत किया अथवा इनके द्वारा भारत भू और भारती ने कब अपना गौरव बढ़ाया यह कहना अत्यन्त कठिन

है। इन्होंने अपने परिचय के लिये भी कुछ नहीं लिखा है। केवल इनके परवर्ती विद्वानों ने जहाँ कहीं इनका नाम ग्रहण किया है उसी से इनके पूर्ववती होने का अनुमान किया जा सकता है।

भर्तृहरि का परिचय—

आचार्य भर्तृहरि ने अपने परिचय के लिए जो लिखा है वह वाक्यपदीय द्वितीय काण्ड के अन्त में ही कुछ है। जब व्याकरण पढ़ने वाले विद्यार्थियों में आलस्य आ गया, वे संक्षिप्त अध्ययन और अल्प विद्या से ही सन्तुष्ट होने लगे तब व्याडि रचित एक लक्ष श्लोक का संग्रह ग्रन्थ लुप्त हो गया। उस समय भगवान् पतञ्जलि को दया आई और तीर्थदर्शी इस विद्वान ने समस्त न्याय बीजों का संग्रह करके व्याकरण शास्त्र पर महाभाष्य की रचना की, जो इतना गम्भीर है कि थाह लगाना कठिन है और इतना सरस और मनोरम है कि छिछला लगता है। अकुशल विद्वानों के लिए तो उसके स्वरूप का ठीक परिज्ञान ही नहीं हो सकता बैजी, सौभव और हग्र्यक्ष आदि ने व्याकरणागम के रहस्य को न समझ कर केवल शुष्क तर्क द्वारा आर्ष ग्रन्थ की छीछालेदर कर डाली। इस प्रकार पतञ्जलि के शिष्यों से व्याकरणागम भ्रष्ट होकर दाक्षिणात्यों के घर में केवल ग्रन्थ के रूप में अलमारी की शोभा बढ़ाने लगा। फिर चन्द्राचार्य प्रभृति विद्वानों ने (त्रिकुट पर्वत पर स्थिर त्रिलिंग देश से रावण रचित मूलभूत व्याकरणागम जिसे किसी ब्रह्म राक्षस ने चन्द्राचार्य और वसुरात प्रभृति विद्वानों को दिया था प्राप्त करके) प्रचार किया तथा उसमें अनेक शाखायें बनीं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि महाभाष्यकार पतञ्जलि के बहुत दिनों के बाद आचार्य भर्तृहरि का जन्म माना जाना चाहिए तथा वसुरात के शिष्य भर्तृहरि ने यह ग्रन्थ रचा।

भर्तृहरि का काल—

आचार्य भर्तृहरि किस काल में हुए यह कहना अत्यन्त कठिन अथवा असम्भव है। आजकल के विद्वानों के चीनी यात्री इत्सिंग के कथनानुसार भर्तृहरि का समय विक्रम के सप्तम शतक का अन्त अथवा अष्टम शतक का आरम्भ स्वीकार किया है। इत्सिंग ने यह लिखा है कि 'उस भर्तृहरि की मृत्यु हुए चालीस वर्ष बीत चुके थे।' किन्तु यह कथन असत्य सिद्ध हो जाता है जब काशिका के 4।3।88 सूत्र के उदाहरण में वाक्यपदीय ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। यह संवत् 680 के 701के मध्य लिखा गया है। कातन्त्र व्याकरण की दुर्गसिंह कृत वृत्ती काशिका से प्राचीन सिद्ध होती है। शतपथ ब्राह्मण की टीका में हरि स्वामी ने वाक्यपदीय की प्रथम कारिका का उत्तरार्ध उद्धृत किया है। इनका समय इनके निम्नलिखित श्लोक से परिज्ञात होता है-

श्रीमतोऽवन्तिनाथस्य विक्रमार्कस्य भूपतेः।
धर्माध्यक्षो हरिस्वामि व्याख्यछातपतीं श्रुतिम्।।
यदाब्धानां कलेर्जग्मुः सप्तत्रिंशच्छतानि वै।
चत्वारिंशत् समाश्चान्यास्तदा भाष्यमिदं कृतम्।।

इसके अनुसार हरि स्वामी का समय 3740 कलिगताब्ध अथवा वि० सं० 695 में पडता है। जैसा मीमांसक जी ने इतिहास में लिखा है वह खींचातानी न भी कि जाय तो भी कोई कठिनाई न होगी। तन्त्रवार्तिक के अ० 1 पा० 3 अ० 8 में वाक्यपदीय की 1।13 कारिका को उद्धृत कर कुमारिल भट्ट ने भर्तृहरि को अपना पूर्ववर्ती सिद्ध किया है। अष्टाङ्ग संग्रह के टीकाकरण वाग्भट्ट का शिष्य इन्दु उत्तार तन्त्र अ०50 की टीका में लिखता है-

तासु च तत्र भवतो हरेः श्लोको-
संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्य विरोधिता।
अर्थः प्रकरणम् लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः।।
सामर्थ्यमौचितिर्देशः कालो व्यक्तिः सवरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः।।इत्यादि

यह कारिका वाक्यपदीय के 2।315-316 में उपलब्ध है। काशी संस्करण में दूसरा भाग त्रुटित है जो अशुद्धि पत्र में छपा है। वाग्भट्ट का काल ऐतिहासिकों ने चन्द्रगुप्त का काल माना है। पश्चात् ऐतिहासिक चन्द्रगुप्त द्वितीय का काल वि० सं० 437-470 तक स्थिर करते हैं। इस प्रकार भर्तृहरि का समय वि० सं० 400 के पश्चात् मानना उचित नहीं प्रतीत होता। विक्रमादित्य, जिन्हें उज्जैन मालवगण राज्य का राजा कहा जाता है, उनके भाई के रूप में भर्तृहरि का स्मरण लोग करते हैं। भर्तृहरि के योगी होने की बात प्रायः अधिक प्रसिद्ध है। उज्जैन के किले में भर्तृहरि की गुफा है जिसकी सरकार ने खुदाई की है। चुनार के किले में भी भर्तृहरि गुफा प्रसिद्ध है। यह किला भी विक्रमादित्य का बनावाया हुआ कहा जाता है। इससे यह तो सिद्ध होने लगता है कि भर्तृहरि और विक्रमादित्य में कोई सम्बन्ध अवश्य है। कुछ भी हो एक उच्चकोटि का वैदिक विद्वान् भर्तृहरि अवश्य बहुत प्राचीन विद्वान् है।

इत्सिंग का मत—

चीनी यात्री इत्सिंग ने-जिसने सप्तमी शती ई० के अन्त में भारत यात्रा की थी, लिखा है कि 'हमारे भारत पहुँचने के 40 वर्ष पूर्व लगभग 351 ई० में भर्तृहरि नामक एक वैयाकरण की मृत्यु हो गई थी जो निश्चय ही भारतीय व्याकरणशास्त्र की अन्तिम मौलिक कृति वाक्यपदीय का लेखक था।' इनके सम्बन्ध में इत्सिंग कहता है कि 'उसका मन विरक्त तथा गृहस्थ जीवन में सदा दोलायमान रहता था और वह सात बार मठ और संस्कार के बीच में आता जाता रहा। जैसा कि बौद्धों के लिए अनुज्ञात है। एक अवसर पर जब वह बौद्ध विहार में प्रवेश कर रहा था उसने एक विद्यार्थी से अपने लिए बाहर रथ सज्जित रखने के लिए कहा जिससे उसके दुःसाध्य निश्चय पर यदि सांसारिक इच्छायें काबू पा जाँय तो वह उस पर चढ़ कर जा सके।

इत्सिंग को भले ही किसी ने भुलावा में डाल दिया हो अथवा किसी भर्तृहरि नाम के वैयाकरण की उस समय मृत्यु भी भले ही हो गई हो और वह बौद्ध तथा जैसा इत्सिंग ने समझा वैसा ही रहा

हो। किन्तु वाक्यपदीयकार भर्तृहरि के विषय में इत्सिंग का कहना अत्यन्त असत्य है,क्योंकि जैसा मैं आगे भर्तृहरि को वैदिक सिद्ध करने चल रहा हूँ उन युक्तियों से कथमपि कोई बोध नहीं सिद्ध किया जा सकता।

किसी पाठक के लेख का हवाला देकर श्रीकीथ ने लिखा है कि 'बड़े ठोस साक्ष्य के आधार पर यह दिखाया जा चुका है कि इत्सिंग का कथन ब्रह्म पूर्ण नहीं है।' हमने बङा प्रयत्न किया कि पाठक का लेख मिले और उसमें देखा जाय कि किन तर्कों पर उन्होंने आचार्य भर्तृहरि को बौद्ध सिद्ध किया है किन्तु पत्रिका 'सरस्वतीभवन पुस्तकालय' में भी उपलब्ध न हो सकी।

भर्तृहरि द्वारा रचित ग्रन्थों का परिचय—

आचार्य भर्तृहरि के रचित निम्नलिखित ग्रन्थ कहे जाते है-

(1) महाभाष्यदीपिका (महाभाष्यटीका)

(2) वाक्यपदीय (3 काण्ड)

(3) वाक्यपदीयटीका (1-2 काण्ड)

(4) भट्टीकाव्य

(5) भागवृत्ति

(6) सुभाषितत्रिशती

इनके अतिरिक्त तीन ग्रन्थों के नाम और उपलब्ध हैं जो भर्तृहरि रचित कहे जाते हैं-

(1) मीमांसाभाष्य।

(2) वेदान्तसूत्रवृत्ति।

(3) शब्दधातुसमीक्षा।

इन ग्रन्थों के भर्तृहरि रचित होने के लिए कुछ कहना आवश्यक है जो हम आगे कर रहे हैं। युधिष्ठिर मीमांसक ने अपने 'संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास' ग्रन्थ में प्रथम तीन तथा चार और द्वितीय तीन ग्रन्थों को भर्तृहरि रचित सिद्ध किया है। भट्टिकाव्य और भागवृत्ति किसी अन्य भर्तृहरि की रचित हैं कहा जा सकताहै। मीमांसक जी ने अनेक उदाहरणों के द्वारा यह भी सिद्ध किया है कि भर्तृहरि और भागवृत्तिकार एक नहीं हो सकते। एक तो भाषा भिन्न है दूसरे सिद्धान्त भी भिन्न हैं। कहीं-कहीं भर्तृहरि का खण्डन भी है अतः दोनों को एक मानना अयुक्त है। यह भी सम्भावना हो सकती है कि आचार्य भर्तृहरि के नाम से बहुत विद्वान् प्रसिद्ध हुए हों।

भर्तृहरि के बौद्ध होने का कारण—

चीनी यात्री इत्सिंग ने लिखा है कि 'वाक्यपदीय और महाभाष्य व्याख्या का रचयिता आचार्य भर्तृहरि बौद्धमतानुयायी था, उसने सात बार प्रव्रज्या ग्रहण की थी। किन्तु वाक्यपदीय ग्रन्थ देखने से पता चलता है कि 'वाक्यपदीयकार और महाभाष्य की टीका का रचयिता आचार्य भर्तृहरि

वैदिक धर्म का अनुयायी था और उसने कभी भी बौद्धधर्म नहीं स्वीकार किया था।' इसे हम समप्राण सिद्ध कर रहे हैं-

(1) वाक्यपदीय के ब्रह्मखण्ड के आरम्भ में लिखा है कि-

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।1।।
एकमेवं यदाम्रातं भिन्नं शक्तिव्यपाश्रयात्।
अपृथक्त्वेऽपि शक्तिभ्यः पृथक्त्वेनेव वर्तते।।2।।
प्राप्त्युपायोऽनुकारश्च तस्य वेदो महर्षिभिः।
एकोऽप्यनेकवत्रमेव समाम्रातः पृथक् पृथक्।।3।।

इन कारिकाओं द्वारा जिसने अनादि और अनन्त शब्दब्रह्म का विवर्त जगत् को स्वीकार किया और उस ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय महर्षियों के अभयस्त वेदों को स्वीकारा वह क्षणिक विज्ञानवादी और वेदबाह्य बौद्ध कैसे कहा जा सकता है।

(2) आचार्य भर्तृहरि ने शब्द को ब्रह्म तथा काल शक्ति उसकी स्वतन्त्र शक्ति को स्वीकार किया है-

अध्याहितकलां यस्य कालशक्तिमुपाश्रिताः।
जन्मादयो विकारा षड् भावभेदस्य योनयः।।113।।
तमस्य लोकतन्त्रस्य सूत्रधारं प्रचक्षते।
प्रतिबन्धाभ्यनुज्ञाभ्यां तेन विश्वं विभज्यते।।314।। (कालसमुछेश)

इन कारिकाओं से ब्रह्म की शक्ति से अभिन्न और शक्ति का आश्रय भी स्वीकार किया है वह सिद्धान्त बौद्धों का कभी भी नहीं है।

(3) आचार्य भर्तृहरि ने व्याकरण को स्मृति और ब्रह्मप्राप्ति का साधन स्वीकार किया है-

यदेकं प्रकियाभेदैर्बहुधा प्रविभज्यते।
तद् व्याकरणमागम्य परं ब्रह्माधिगम्यते।।1122।।
(4) स्मृतियों को वेदमूलक स्वीकार किया है-
स्मृतयो बहुरूपाश्च हष्टाहष्टप्रयोजनाः।
तमेवाश्रित्य लिङ्गेभ्यो वेदविद्धि प्रकल्पिताः।।117।।

(5) व्याकरण को वेद का मुख्य अंग स्वीकार किया गया है-

आसन्नं ब्रह्मणस्तस्य तपसामुत्तमं तपः।
प्रथमं छन्दसामंगं प्राहुव्याकरणं बुधाः।।1।11।।

(6) शब्द ब्रह्म को छन्दोमयी तनु कहा गया है-

अत्रातीतविपर्यासःकेवलामनुपश्यति ।

छन्दस्यछन्दसां योनिमात्माछन्दोमयीं तनुम्।।1।17।।

(7) वेद शब्द से ही जगत् की उत्पत्ति है-

शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नायविदो विदुः।
छन्दोभ्य एव प्रथममेतद्विश्वं व्यवर्तत।।1।120।।

(8) प्राणियों में चेतना शक्ति भी शब्द ही है-

सैषा संसारिणां संज्ञा बहिरन्तश्च वर्तते।
तन्मात्रामनतिक्रान्तं चैतन्यं सर्वजन्तुषु।।1।126।।

(9) समस्त आगम कर्तृक हैं उनका विनाश ध्रुव है। किन्तु समस्त आगमों का मूल त्रिवेदी सदा व्यवस्थित और नित्य है-

न जात्वकर्तृकं कश्चिदागमं प्रतिपद्यते।
बीजं सर्वागमापाये त्रय्येवातो व्यवस्थिता।।1।133।।

(10) वेद और शास्त्र मूलक तर्क ही नेत्र है-

वेदशास्त्राविरोधी च तर्कश्चत्तुपश्यताम्।
रूपमात्रद्धि वाक्यार्थः केवलान्नावतिष्ठते।।1।136।।

(11) भर्तृहरि ने आत्मा को नित्य स्वीकार किया है-

आत्मा वस्तु स्वभावश्च शरीरं तत्वमित्यपि।
द्रव्यामित्यस्य पर्यायस्तच्च नित्यमिती स्मृतम्।। द्रव्यसमुछेशः।।

इन समस्त प्रमाणों को देखकर तथा व्याक्यपदीय की दार्शनिक पृष्टभूमि को देखकर कोई भी नही स्वीकार सकता कि आचार्य भर्तृहरि बौद्ध थे अथवा उनके हृदय में बौद्ध धर्म के प्रति कोई आस्था या राग रहा हो। अतः आचार्य भर्तृहरि को बौद्धधर्मावलम्वी कहने ने इत्सिंग भूल की है। सम्भवतः उसने बौद्ध भर्तृहरि के विषय में कुछ सुना हो और वाक्यपदीय आदि ग्रन्थों का उसी से सम्बन्ध जोड़ दिया हो। क्योंकि कोई भी विद्वान वाक्यपदीय ग्रन्थ को देखकर अथवा शतकत्रय देकखकर भर्तृहरि को बौद्ध कहने का साहस नहीं करेगा।

वाक्यपदीय का परिचय—

आचार्य भर्तृहरि रचित अनेक ग्रन्थों का नाम पीछे बतलाया जा चुका है। हम इस प्रकरण में उनके समस्त ग्रन्थों का न तो परिचय देगें न उन पर कुछ विचार ही करेंगे किन्तु प्रकृत ग्रन्थ वाक्यपदीय के विषय में कुछ परिचयात्मक विचार व्यक्त करने चल रहे है। आचार्य भर्तृहरि ने इस ग्रन्थ का नाम वाक्यपदीय रखा जिसका अर्थ है वाक्य और पद के विषय में विचार के लिए आरम्भ ग्रन्थ (वाक्यं च पदं च वाक्यपदे ते अधिकृत्य कृतो ग्रन्थो वाक्यपदीयम्)। इस वाक्यपदीय में तीन काण्ड हैं इसलिए इसे त्रिकाण्डी भी कहा गया है।

महामहोपाध्याय पण्डित श्री गङ्गाधर शास्त्री मानवल्ली ने काशी संस्करण की भूमिका में लिखा है कि 'वाक्य और पद विचारक ग्रन्थ होने के कारण दो काण्ड की ही 'वाक्यपदीय' संज्ञा है, यही बात द्वितीय काण्ड के अन्तिम श्लोकों से ही व्यक्त हो जाती है जो ग्रन्थ-समाप्ति में लिखे गये हैं।

तृतीय काण्ड तो कारक आदि विचार परक है अतः आरम्भ के दो काण्डों को ही 'वाक्यपदीय' स्वीकार करना चाहिए।' इधर जो वाक्यपदीय पर स्वोपज्ञ टीका प्राप्त हुई है वह भी दो काण्डों पर ही है, यह भी सिद्ध करता है कि आचार्य भर्तृहरि ने प्रथम और द्वितीय काण्ड को ही 'वाक्यपदीय' के रूप में स्वीकार किया हो। द्वितीय काण्ड की-

वत्र्मनामत्र केषाञ्चिद् वस्तुमात्रमुदाहृतम्।
काण्डे तृतीये न्यक्षेण भविष्यति विचारणा।।2।484।।

कारिका में आचार्य भर्तृहरि ने स्वयं तृतीय काण्ड रचने की प्रतिज्ञा भी है। इसके तृतीय काण्ड के भर्तृहरि रचित होने में कोई विवाद नहीं है। हाँ, यह अवश्य है कि वाक्यपदीय पूर्ण है किन्तु तृतीय काण्ड में उन्हीं सिद्धान्तों पर विषद विचार हैं। अतः यह कहना कि 'वाक्यपदीय' दो काण्डों में पूर्ण नहीं है असंगत है। तृतीय काण्ड के बिना दो काण्ड अधूरे हैं यह कहना संगत हो सकता है। इसीलिए प्राचीन विद्वानों ने(स्वयं हेलाराज तथा वाक्यपदीयकार ने)तृतीय काण्ड को'वाक्यपदीय'का पूरक माना है और इसीलिए उसे प्रकीर्ण काण्ड भी कहा जाता है। अतः हम श्री चारुदत्त शास्त्री के इस कथन से सहमत नहीं हैं कि 'तृतीय काण्ड वाक्यपदीय का मुख्य अंग है, प्रकीर्ण नहीं।'

वाक्यपदीय की कारिकाओं का परिचय—

वाक्यपदीय की प्रत्येक कारिका भाष्य के किसी न किसी वाक्य को आधार मानकर रची गई है। जैसे भाष्य के त्रिपादी में **'यथाऽम्बाम्बेति शिक्षामाणो बालोऽन्यथोच्चारयति'** इसको आधार मानकर—

अम्बाम्बेती यथा बालः शिक्षमाणो प्रभाषते। अव्यक्तं तद्विदां तेन व्यक्ते भवति निश्चयः।।

इत्यादि इस पर विशेष रूप से अनुसन्धान अपेक्षित है कि भाष्य के किन सिद्धान्तों के आधार पर किस कारिका का निर्माण हुआ है। कुछ लोगों का कथन है कि 'वाक्यपदीय' की समस्त कारिकायें आचार्य भर्तृहरि रचित नहीं हैं किन्तु बहुत सी कारिकायें संग्रह ग्रन्थ से ले ली गई हैं। यह कोई असम्भव नहीं है। सम्भवतः व्याकरणागम की रक्षा को ध्यान में रखकर ग्रन्थ निर्माण प्रवृत्त ग्रन्थकार ने अपने पूर्ववर्ती संग्रह अथवा गुरु रचित आगम संग्रह के श्लोंको का संग्रह किया हो । कुछ भी हो वाक्यपदीय की कारिकायें व्याकरण शास्त्र की दर्शन शाखा के लिए आधार स्तम्भ हैं।

आज जो वाक्यपदीय कारिकायें उपलब्ध है। ब्रह्मकाण्ड 153, वाक्यकाण्ड 483, पदकाण्ड 1218, वाक्यपदीय के कई संस्करणों में कुछ कारिकायें अधिक उपलब्ध होती हैं किन्तु हमने जो अभी तक वाक्यपदीय कारिकाओं का संग्रह किया है वह कुल 1860 है। हमारी अपनी राय है कि वाक्यपदीय की लगभग 140 कारिकायें नष्ट हो गई हैं। यह ग्रन्थ दो सहस्र श्लोकों से अधिक

का न रहा होगा। हम यह भी सोच सकते हैं कि जैसे व्याकरणसागर को आचार्य भर्तृहरि ने दो सहस्त्र श्लोकों में संगृहीत किया वैसे ही आचार्य सायण ने 'जैमिनीयन्याय माला' संग्रह किया हो और सायण को वाक्यपदीय से प्रेरणा मिली हो।

वाक्यपदीय के द्वितीय काण्ड की कारिका 79 में पुष्पराज ने लिखा है कि **'एतेषां वितत्य सोपपत्तिकं सनिदर्शनं स्वरूपं पदकाण्डे लक्षणसमुछेशे विनिर्दिष्टमिति ग्रन्थकृतैव स्ववृत्तौ प्रतिपादितम्। आगमभ्रंशाल्लेखकप्रमादादिना वा लक्षणसमुछेशश्च पदकाण्डमध्ये न प्रसिद्धः।'** इस उद्धरण से पता चलता है कि लक्षणसमुछेश्य नाम का कोई प्रकरण वाक्यपदीय का अभी अनुपलब्ध है। इसी कारिका की व्याख्या में पुण्यराज लिखते हैं कि **'यस्मादुक्तम्।सेयमपरिमाण विककल्पा बाधा विस्तरेण बाधासमुछेशे समर्थयिष्यते'** यह बाधा समुछेश भी अभी तक अनुपलब्ध है। इसी प्रकार-

'अपायं यदुदासीनं चलं वा यदि वाचलम्।ध्रुवमेवातदावेशात्तदपादानमनुच्यते।।पतो ध्रुव एवाश्वो यस्मादश्वातपतत्यसौ।तस्याप्यश्वस्य पतने कुड्यादि ध्रुवमिष्यते।। इत्यादि कारिकाओं को भर्तृहरि के नाम से आचार्य भट्टोजी दीक्षित प्रभृति ने स्मरण किया है किन्तु ये ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं हैं। इससे यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि वाक्यपदीय ग्रन्थ की खोज अभी बन्द नहीं होनी चाहिये।

वाक्यपदीयम् की टीकायें—

आचार्य भर्तृहरि की वृत्ति— वाक्यपदीय ग्रन्थ में व्याकरणागम का यर्थाथ रूप प्रकट है। यह शुद्ध कारिका के रूप में रचा गया है। कारिकायें कण्ठ करने में सरल तो पड़ती हैं किन्तु पूर्ण विषय का विवेचन उनमें नहीं हो पाता इसीलिए सर्वप्रथम वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने ही आरम्भ के दो काण्डों पर विवरण लिखा है। आचार्य मम्मट, न्यायमञ्जरीकार जयन्त आदि ने वृत्ति सहित कारिकाओं को वाक्यपदीय स्वीकारा है। मम्मट ने 'नही गौः स्वरूपेण गौः नाप्यगौः गौत्वाभिसम्बन्धातु गौरिति' इस वाक्यपदीय पंक्ति का उल्लेख अपने काव्य प्रकाश में किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि वाक्यपदीय पर सर्वप्रथम स्वयं ग्रन्थकार ने ही विवरण लिखा है। यह वृत्ति अभी तक अमुद्रित थी किन्तु कुछ विद्वानों के प्रयत्न से ब्रह्मकाण्ड तथा वाक्यकाण्ड का कुछ भाग मुद्रित हुआ है। इस वृत्ति के प्राप्त हो जाने से 'वाक्यपदीय' की कारिकाओं का आशय लगाना सरल तो हो ही गया साथ में अगले पण्डितों की व्याख्या में प्रामाण्य भी आ गया है।

प्रथम काण्ड वृत्ति—

यह एक विवाद का विषय बन गया है कि भर्तृहरि ने वाक्यपदीय पर दो वृत्तियाँ रची थीं। एक लघुविवरण दूसरी बहुतीवृत्ति। दोनों वृत्तियाँ अब मुद्रित हैं। प्रथम वृत्ति चौखम्बा सिरीज़ में मुद्रित

है, जिसके अन्त में लिखा है कि 'इति महावैयाकरणहरिवृषभविरचितवाक्य-पदीयप्रकाशे आगमसमुच्चयो नाम ब्रह्मकण्डं प्रथमं समाप्तम्।'दूसरी वृत्ति लाहौर से मुद्रित है जिसकें अन्त में लिखा है कि'इति श्रीहरिवृषभमीवैयाकरणविरचिते वाक्यपदीये आगमसमुच्चयो नाम ब्रह्मकाण्डं समाप्तम्।'

इस प्रकार हरिवृषभकृत दो वृत्तियाँ ब्रह्मकाण्ड पर मुद्रित हैं। दोनों में यत्र-तत्र अवतरण आदि में भेद भी है। लाहौर मुद्रित वृत्ति विशद है तथा उस पर एक वृषभदेव की टीका भी मुद्रित है, जिससे लाहौर संस्करण की अत्यधिक उपयोगिता सिद्ध हो जाती है।

पुण्यराज की टीका— वाक्यपदीय के द्वितीय काण्ड पर पुण्यराज की टीका पर भी चौखम्बा वाराणसी और लाहौर से मुद्रित हैं। यह टीका भर्तृहरि की वृत्ति के आधार पर रची गई है तथा वृत्ति से कुछ विशद है, वाक्यपदीय के तात्पर्य मत्र का निर्देश करती है। फिर भी टीका अत्यन्त उत्तम है। इनका जन्मकाल क्या होगा यह कठिन है क्योंकि इन्होंने अपने जन्म के विपय में कुछ भी नहीं लिखा है। केवल किसी कश्मीर के राजा राजानकशूरवर्म के समय में शशाङ्ग के शिष्य से इन्होंने व्याकरण का अध्ययन किया तथा यह टीका लिखी; यह इन्हीं की टीका के अन्तिम श्लोक से पता चलता है-

तत उपसृत्य विरचिता राजानकशूरवर्मनान्ना वै।
शशाङ्गशिष्याच्छ्रेत्वैतद्वाक्यकाण्डं समासतः।।

वामन रचित अलंकार सूत्रवृत्ति के प्राचीनतम टीकाकार सहदेव ने अपने विषय में लिखा है कि-

चतुर्दाशानमपि यः प्रसिद्धौ विद्यास्थितीनां परपारहश्वा।
शशाङ्कपूर्वाधर इत्युदारं यन्नामलोके नितरां प्रसिद्धम्।।
तदीयशिष्यः सहदेवनामा कुले प्रसुतः खलु तोमणाराम्।
व्याख्यामिमां काव्यविचारशास्त्रे व्यधत्त लध्वीमिह वामनीये।।
काश्मीरदेशादपश्रपतो मे शब्दानुशुद्धिं त्रिमुनिं निशम्य।

इससे पता चलता है कि कश्मीर के शाशाङ्गधर के शिष्य सहदेव से ही पुण्यराज ने व्याकरण शास्त्र सिखा हो।

हेलाराज की टीका— वाक्यपदीय के तृतीय काण्ड पर जो अभी तक मुद्रित है एक ही टीका हेलराज की है। हेलराज ही इस भाग पर प्रथम टीकाकरण हैं यह नहीं करना चाहिए क्योंकि स्वयं हेलाराज ने ही अपने पूर्ववर्ती टीकाकरणों का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया हैं । इनके भी समय का ठीक परिज्ञान नहीं हो सका है फिर भी इन्होने जो कुछ अपने विषय में लिखा है उसीसे पर्याप्त प्रकाश मिलता है । हेलराज ने तृतीय काण्ड के अन्त में लिखा है-

मुक्तापीड इति प्रसिद्धिमगमत्कश्मीरदेशे नृपः

श्रीमान् ख्यातयशा बभूव नृपतेस्तस्य प्रभावानुगः।
मन्त्री लक्ष्मण इत्युदारचरितस्तस्यान्ववायो भवो
हेलराज इमं प्रकाशमकरोच्छ्रिभूतिराजात्मजः।।

इससे पता चलता है कि कश्मीर देश के राजा मुक्तापीड के प्रधान मन्त्री लक्ष्मण के वंश में भूतिराज के पुत्र के रूप में हेलाराज ने जन्म लिया यह सन्धिग्ध ही रह जाता है। फिर भी बूहलकर महोदय (जो अनेक प्राचीन पुस्तकों की खोज ही किया करते थे। अभिनवगुप्त रचित गीताभाष्य पुस्तक प्राप्त की, जिसमें अभिनव गुप्त ने भूतिराज के पुत्र भट्टेन्दुराज को अपना गुरु स्वीकार किया है। भूतिराज के पुत्र होने के कारण यह स्वीकार करना पडता है कि भट्टेन्दुराज और हेलाराज सोदर भाई थे। अभिनव गुप्त के काल के आधार पर हेलाराज का काल खीस्तीय दशम शतक का उत्तरार्ध स्वीकार किया जा सकता है। राजतरंगिणीकार महाकवि कल्हण ने हेलाराज की एक श्लोक में चर्चा की है-

बद्धा द्वादशभिग्रन्थसहस्त्रैः पार्थिवावलिः।
प्राङ्भहाव्रतीना येन हेलाराजद्विजन्मना।।

डा० कीथ ने कल्हण का समय ई० की 11वीं शताब्दी स्वीकार किया है इससे भी स्पष्ट है कि हेलाराज उनसे पूर्ववर्ती रहे हैं। हेलाराज ने सम्पूर्ण वाक्यपदीय पर टीका रची है।इन्होंने स्वयं लिखा है कि 'काण्डद्वये यथावृत्ति सिद्धान्तार्थसतत्वतः।' प्रथम काण्ड की टीका का नाम इन्होंने 'शब्दप्रभा' रक्खा था जैसा कि इन्होंने लिखा है कि **'विस्तारेणागमप्रामाण्यं वाक्यपदीयेऽस्माभिः प्रथमकाण्डे शब्दप्रभायां निर्णीतम्।'** हेलराज ने वाक्यपदीय टीका रचने के पूर्व 'क्रियाविवेक' और 'वर्तिकोन्मेश' नाम के दो ग्रन्थों का भी निर्माण कर लिया था। जैसा कि उन्होंने तृतीय काण्ड की कई करारिकाओं की व्याख्या में निर्देश किया है।

1.तृतीयकाण्ड जाति समुछेश 50 कारिका की व्याख्या में लिखा है कि **'कियाविवेकेविस्तरेणास्मभिरभिहितमिति तत एवावधार्यताम्।'**

2. क्रियासमुछेश की 1 कारिका की टीका के अन्त में **'फलतस्तु सामथ्र्याöवति क्रियाविवेके विस्तरेणास्माभिरभिहीतमिति तत एवावधार्यम्।'** इन अंशो तथा इसी प्रकार अनेक स्थानों पर अपनी कृति का क्रियाविवेक के नाम से स्मरण किया है।

3. वार्तिकोन्भेष की चर्चा तो लिंगसमुछेश के अन्त में **'सिद्धान्तस्तु यथाभाष्यं गुणावस्थारूपं लिङ्गमित्यस्माभिः वार्तिकोनमेषे यथागमं व्याख्यातं तत एवावधार्यम्।'**

4. द्रव्यसमुछेश की 15 वीं कारिका की टीका में इन्होंने अपने 'अद्वयसिद्धि' नाम के ग्रन्थ की सूचना दी है। जैसे- 'कारणान्त -रव्युदासश्चाद्वयसिद्धाभविहीत इति सत्यर्थित्वे तत एवावगन्तव्यः।' हेलाराज की टीका जो केवल तृतीय काण्ड की उपलब्ध है वह भी पूर्ण नहीं

है।काशी से मुद्रित संस्करण में कई स्थलों पर लिखा है **'इतो ग्रन्थापातसन्धानाय फुल्लराजकृतिर्लिख्यते'।**

फुल्लराज की टीका— फुल्लराज ने वाक्यपदीय के कितने भाग पर टीका की यह अभी तक गवेषणा का विषय है।हाँ, टीका के कुछ भागों के देखने से पता चलता है कि वह टीका भी 'वाक्यपदीय' को सुबोध बनाने में अवश्य सहायक है। इनका क्या समय रहा होगा यह तो कहना असमभव है तबतक जबतक उनके विषय में विशेष गवेषणा न हो।

वाक्यपदीय पर अन्य टीकायें—

वाक्यपदीय पर कुछ लोगों ने केवल छात्रों के लिए कुछ टिकायें रची हैं जो इतनी संक्षिप्त हैं कि इन्हें महत्तव देना आवश्यक नहीं है। इनमें श्रीद्रव्येश झा तथा श्रीनारायणदत्त शास्त्री (नृसिंह) जी की टीका अवश्य उल्लेखनीय है। इधर श्री पं० रघुनाथ शास्त्रीजी ने समस्त वाक्यपदीय पर टीका लिखना आरम्भ किया है जो भर्तृहरि वृत्ति के आधार पर रची जा रही है तथा भावबोध के लिए बडी सरल भी है। यदि इस महाविद्वान् को संस्कृत विश्वविद्यालय ने इस कार्य में रत रखने की व्यवस्था की तथा इस ग्रन्थरत्र का मुद्रण किया तो वाक्यपदीय का सचमुच उद्धार हो जायगा। अब हम आगे वाक्यपदीय ग्रन्थ का कुछ संक्षिप्त परिचय देना चाहते हैं जिसमें प्रकृत काण्ड का विशेष तथा शेष काण्डों का सामान्य परिचय होगा। वाक्यपदीय के तीन काण्ड में से प्रथम काण्ड अथवा ब्रह्मण्ड आगमसमुच्चय काण्ड है। इस काण्ड में आचार्य भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के दार्शनिक अधार का चित्रण किया है।

प्रथम काण्ड का प्रतिपाद्य विषय—

प्रथम काण्ड को मुख्यतः आगमकाण्ड कहा जाता है। इस काण्ड में शब्द को ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया है। आचार्य भर्तृहरि ने शब्द को अनादिनिधन, अक्षर, जगत्कारण, नित्य और चेतन स्वीकार किया है। शब्द ब्रह्म अपनी स्वतन्त्र शक्ति 'कालशक्ति' के द्वारा समस्त जगत् की उत्पत्ति अथवा अभिव्यक्ति को नियन्त्रित मानता है। इसलिए इनके यहाँ एक ही शब्द से एक काल में अनेक कार्य नहीं उत्पन्न होते। उस ब्रह्म का स्वरूप और प्राप्ति का मुख्य उपाय 'वेद' है, जो एक है, किन्तु जो महर्षियों के द्वारा विभिन्न रूप में अभ्यस्त होने के कारण अनेक रूप का हो गया है। यह वेद अनेक अंगों और उपाङ्गों से युक्त है, जिसमें व्याकरण वेद का प्रधान अंग है और व्याकरण के द्वारा प्रत्यगात्म स्वरूप शब्द ब्रह्म का साक्षात्कार होता है जिसमें मोक्ष की प्राप्ति होती है। शब्द, अर्थ और उनका सम्बन्धी भी नित्य है, जिनमें प्रकृति-प्रत्यय आदि की कल्पना उनके साधुत्वरूप के साक्षात्कार के लिए की गई हैं। शब्दों के नित्य होने के ही कारण व्याकरण शास्त्र बनाना सार्थक है अन्यथा शब्दों की अनित्यता से सुस्थिर व्याकरण का बनाना

सम्भव न होता। अतः साधु शब्दों के परिज्ञान के लिए व्याकरणागम की रचना वेद के आधार पर की गई।

आगम प्रामाण्य—

आगम समस्त प्रमाणों में श्रेष्ठ है। अनुमान प्रमाण में आगम का अन्तर्भाव नहीं हो सकता क्योंकि आषाढ़ में बोया गेहूँ और कार्तिक में बोये हुए धान से फल उत्पन्न होना सम्भव नहीं है। अतः शक्ति के भेद से वस्तुस्थिति में भेद हो जाता है। धर्माधर्म निर्णय के लिए आगम ही प्रमाण है। शंख की पवित्रता की भाँति मनुष्य के शिर का कपाल अनुमान द्वारा पवित्र सिद्ध नहीं किया जा सकता। अनुमान में सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वह किसी वस्तु को एक तर्क से सिद्ध करता है फिर विपरीत तर्क से खण्डित हो जाता है। अभ्यास भी अनुमान में अन्तर्हित नहीं हो सकता। मणि के मूल्य में तारतम्य का ज्ञान अनुमान से नहीं हो सकता। अहष्ट भी प्रत्यक्ष अनुमान से परे ही है। पितरों, राक्षसों और पिशाचों की सिद्धियों प्रत्यक्ष अथवा अनुमान नहीं हैं।

वाक्यपदीयकार के मत में प्रमाण—

इन विवेचनों से प्रतीत होता है कि वाक्यपदीयकार प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, अभ्यास और अदृष्ट इस प्रकार 5 प्रमाण मानते हैं।

प्रत्यक्ष प्रमाण—

वाक्यपदीयकार के मत में प्रत्यक्ष दो प्रकार का है एक लौकिक और दूसरा अलौकिक लौकिक प्रत्यक्ष तो हम लोगों का है किन्तु अलौकिक प्रत्यक्ष ऋषियों का है जो बिना इन्द्रिय की सहायता के ही होता है और लोक उसे अपने प्रत्यक्ष से कम महत्त्व नहीं देता। का० ॥37-40॥

अनुमान प्रमाण—

प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमान प्रमाण की विशेष सिद्धि के उपाय तो नहीं वर्णित हैं किन्तु उसका खण्डन भी नहीं किया है अतः 'अप्रतिसिद्धं ह्यनुमतं भवति' न्याय के आधार पर स्वीकार किया जाता है कि वाक्यपदीयकार अनुमान प्रमाण स्वीकार करते हैं।

शब्द (आगम) प्रमाण—

शब्द को प्रमाण स्वीकार करने के लिए वाक्यपदीयकार ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी हैं। ऊपर कहे गए समस्त तर्क आगम को प्रमाण ही सिद्ध कर रहे हैं।

अभ्यास प्रमाण—

वाक्यपदीयकार ने अपनी 3वीं कारिका के आधार पर अभ्यास नाम के प्रमाण की चर्चा की तथा कहा कि 'जो मणि आदि के मूल्यों के तारतम्य का ज्ञान है वह दूसरों को बताया नहीं जा सकता किन्तु 'जो मणि आदि के मूल्यों के तारतम्य का ज्ञान है वह दूसरों को बताया नहीं जा सकता किन्तु अभ्यास से ही होता है, इससे पता चलता है कि इनको अभ्यास नाम का प्रमाण भी स्वीकृत रहा होगा। दूसरे दार्शनिकों का कहना है-'कल मेरा भाई आएगा यह मेरा हृदय कहता है' इस ज्ञान की भाँति अभ्यास भी प्रत्यक्ष ही है जैसे आर्ष ज्ञान।

अहष्ट प्रमाण—

वाक्यपदीय की 36 वी. कारिका के आधार पर अदृष्ट प्रमाण की भी चर्चा की गई है। प्रेत अथवा पितर भीत से बिना छिद्र बनाये हाथ बाहर निकाल देते हैं से सिद्धयाँ अदृष्टजन्य ही हैं। दूसरे दार्शनिक इसे भी आर्ष ज्ञान की भाँति प्रत्यक्ष ही मानते हैं। जैसे तपःसाध्य आर्ष ज्ञान है वैसे ही पितरों की सिद्धियाँ भी हैं।

वाक्यपदीयकार ने उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, सम्भव और एतिह्म नाम के प्रमाणों की कोई चर्चा भी नहीं की है। सम्भवतः उन्होंने इन प्रमाणो को नगण्य माना हो। श्री म० म० तात्याशास्त्री प्रभृति वैयाकरणों ने व्याकरण सिद्धान्त में साख्य सिद्ध प्रमाण मान्य कहें हैं। अत एव यह भी एक पक्ष प्रमाणित प्रतीत होता है कि व्याकरण सिद्धान्त में प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीन ही प्रमाण्य मान रहे हैं।

इस प्रकार नित्य चेतन शब्द प्राप्ति के लिए उसकी प्राप्ति के साधन वेद के प्रधान अंग व्याकरण का अध्ययन आवश्यक, प्रामाणिक और आभ्युदयिक सिद्ध है। फिर भी सर्वदा शब्द का प्रतिभास न होने में कोई कारण अवश्य होगा। इत्यादि अनेक शंकाओं के समाधान के लिए शब्द के वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है।

शब्द के दो रूप—

वैयाकरणों ने शब्द के दो रूप स्वीकार किये हैं। एक निमित्त और दूसरा अर्थबोधक। स्फोट और वैखरी रूप से दो प्रकार के शब्दों में कार्यकारणभाव माना गया है।

1. स्फोट–

स्फोट वह शब्द है जहाँ अन्य शब्द छिपकर बैठे रहते हैं और जिसके अनुग्रह से शब्द सुनाई पड़ते हैं तथा अर्थ का बोध होता है स्फोट निमित्त और अर्थ बोधक भी है। श्रोता के लिए वैखरी निमित्त है और स्फोट अर्थबोधक है। क्योंकि पूर्वपूर्ववर्णों के नाश हो जाने से उत्तर-उत्तर वर्ण के एक साथ न रहने से अर्थबोधक नहीं हो सकता था। अतः स्फोट ही अर्थबोधक माना गया है।

वक्ता के तात्पर्य से स्फोट वैखरी का निमित्त है और वैखरी ही अर्थबोध (स्फोट प्रकाशन) के लिए उच्चारित होती है। इन दोनों पक्षों में स्फोट ही अर्थबोधक स्वीकृत है। यद्यपि ध्वनियों के क्रम से जन्म लेने के कारण स्फोट सक्रम प्रतीत होता है तथापि वह सक्रम नहीं है किन्तु मयूर के अण्डे के रस के मयूर के अंग प्रत्यंग अक्रम रहते हैं किन्तु क्रम से ही विकसित होते हैं वैसे स्फोट भी अक्रम है किन्तु ध्वनि के क्रम से उच्चारित होने से स्फोट में सक्रमता प्रतीत होती है। इसी प्रकार शब्द में वर्ण, पद, वर्णावयव, पदावयव, जाति, व्यक्ति, सखण्ड आदि प्रतीतियाँ भ्रम हैं। वस्तुतः एक तथा सत्य वाक्य ही स्फोट है।

जगत् शब्द का अर्थ विवर्त है—

वाक्यपदीयकार ने जगत् को शब्द का विवर्त और परिणाम दोनों माना है यह 'शब्दस्य परिणामाऽयम्' 'एतद्विश्वं व्यवर्तत' इस कारिका से सिद्ध होता है।कुछ ऐसे वचन मिले हैं जिनसे परिणाम और विवर्त शब्द में पर्यायता प्रतीत होती है जैसे भवभूति ने **'आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकरान्'** कहा है। विकार और परिणाम पर्याय शब्द हैं। बुद्बुद पानी का विवर्त है विकार नहीं फिर भी दोनों शब्दों के व्याकरण में सांकर्य कहा है। स्फोट सिद्धि के प्रारम्भ में गोपालिका टीकाकरण ने शब्द को जगत् का विवर्त और विकार दोनों माना है। उनका कहना है कि स्फोट का विवर्त जगत् है किन्तु ध्वनि अथवा वैखरी का परिणाम है। यह उचित भी प्रतीत होता है। जब 'वागेव विश्वाभुवनानि जज्ञे' सुभूरिति व्याहरत् भुवमसृजत्' श्रुतियाँ भुव्याहार को जगत सृष्टि में कारण मानती हैं तब वैखरीका परिणाम जगत् मान लेने में कोई हानि नहीं प्रतीत होती।

शब्द से सृष्टि प्रक्रिया—

वैयाकरणों के मत से सृष्टि का क्रम इस प्रकार मान्य है। सृष्टि के आरम्भ में पश्यन्ति वाग्रूपी शब्द ब्रह्म ने अपनी अपरिमित शक्ति वाली माया के साथ होकर विभिन्न प्रकार के प्राणियों के कर्मो की सहायता से समस्त नाम-रूपात्मक जगत को बुद्धिस्थ करके 'यह मैं करूँगा' संकल्प करता है और तब अपनी स्वतन्त्र शक्ति 'कालशक्ति' के साथ आकाशदिकों की, उसके बाद भूतों की सृष्टि करता है। कहा भी है कि-

'यः सर्वपरिकल्पानामाभासेऽप्यनवस्थितः।
तर्कागमानुमानने बहुधा परिकल्पितः।।
अन्तर्यामी स भूतानामराद् दूरे च हश्यते।
सोऽत्यन्तमुक्तो मोक्षाय मुमुक्षुभिरुपाश्यते।।
तस्यैकमपि चैतन्यं बहुधा प्रविभज्यते।
अंगाराङ्कितमुत्पाते वारिराशेरिवोदकम्।।
त्रयीरूपेण तज्जयोतिः प्रथमं परिवर्तते।
ब्रह्मेदं शब्दनिर्माणं शब्दशक्तिनिबन्धनम्।।

विवृत्त शब्दमात्राभ्यस्तास्वेव प्रवीलीयते।'

'जो प्रलय के बाद स्थिर है, जिसकी तर्क, आगम और अनुमान द्वारा अनेक प्रकार से कल्पना की गई है, जो समस्त प्राणियों के दूर और अन्तर विद्यमान है,जो मुक्त है और मोक्षार्थी जिसकी उपासना करते हैं उसीका एक चैतन्य अनेक रूप में प्रविभक्त है। जिसकी प्रथम ज्योति त्रयी (वेद) रूप में परिणत होती है वह शब्द है और उसी की मात्रा से जगत् का विवर्त हुआ है और उसी में ही विलीन होता है।'

नागेशभट्ट ने सृष्टि का क्रम कुछ दूसरा ही स्वीकार किया है। जैसे 'प्रलय काल में समस्त प्राणियों के भोग्य कर्मो का जब प्रक्षय हो जाता है तबब जगत् माया में और माया ईश्वर में लीन हो जाती है। यह लिनता नाश नहीं है किन्तु सुप्त होना है। उसके बाद जो कर्म फल देने योग्य नहीं थे काल वश फल देने के लिए उन्मुख हुए तब भगवान् की माया और पुरूष के रूप में अबुद्धिपूर्वक सृष्टि होती है फिर परमेश्वर में सृष्टि चलाने की इच्छा रूपा माया वृत्ति का उदय होता है और अव्यक्त, त्रिगुण विन्दु उत्पन्न होता है। इसे ही 'शक्तितत्व' कहते हैं। इस बिंदु में तीन अंश हैं। चिदंश (बीज) चिदचिन्मिश्र अंश नाद (परावाक्) चिदंश विन्दु। इस प्रकार उत्पन्न नाद ही परावाक् है जिसे वाक्य पर्दायकार ने यावत्सृष्टिस्थिती अथवा प्रवाहनित्यता के आधारपर अनादिनिधन शब्द से कहा है। वस्तुतः शब्द अनादि और अनन्त नहीं है।' यह ही मत 'प्रपञ्चसार' में (जो तन्त्रशास्त्र का ग्रन्थ है) प्रतिपादित है जैसे-

प्रकृतिः पुरुषश्चैव नित्यौ कालश्च सत्तम।
अणोरणीयसी स्थूलात्स्थूला व्याप्तचराचरा।।
स जानाति विनाकांश्च तस्यां सम्यग्व्यवस्थितान्।
सा तत्तवसंज्ञा चिन्मत्रा ज्योतिषः सन्निधेस्तदा।।
विचिकीर्षुर्घनीभूतः सा चिदभ्येति विन्दुताम्।
काले न भिद्यमानस्तु स विन्दुर्भवति त्रिधा।।
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते।
स विन्दुनादवीजत्वभेदेन च निगद्यते।।
विन्दोस्तस्तमाद्भिद्यमानाद्रवोऽव्यक्तात्मकोऽभवत्।
स रवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।।इत्यादि।।

तात्पर्य यह कि घनीभूत ब्रह्म, उनकी विचिकीर्षा, अव्यक्त (कारणविन्दु), अव्यक्तरव (परावाक्), पश्यन्ति (कर्मविन्दु रूप सामान्यस्पन्धवति), मध्यमा (नादरूप स्पन्धविशेषवति), वैखरी (बीजरूपा अकारादिवर्णरूपा)। इस प्रकार नागेश का मत तन्त्रशास्त्र की वासना के आधार पर वाक्यपदीय कारिकाओं का अर्थ अन्यथा करने वाला है।जहाँ वाक्यपदीयकार शब्द ब्रह्म को नित्य मानते हैं तथा जगत् को शब्द ब्रह्म का विवर्त मानते हैं वहीं नागेश शब्द ब्रह्म को अनित्य मानते हैं तथा प्रवाहनित्यता को ध्यान में रखकर वाक्यपदीय की 'अनादिनिधनं ब्रह्म'कारिका का अन्यथा अर्थ करते हैं।इनका यह मत शैवागम के 'शिवहष्टि' ग्रन्थ तथा बौद्धदर्शन के तत्तवसंग्रह

ग्रन्थ में वैयाकरणमत के रूप में उद्धृत तथा स्वीकृत सिद्धान्त से भिन्न होने के कारण तथा वाक्यपदीय के सर्वथा विपरित होने के कारण असंगत है। यह अन्य ग्रन्थकार (जैसे न्यायमंजरीकार जयन्त और शारदातिलक) के द्वारा ज्ञात वैयाकरण मत से भी विरुद्ध है।

सिद्धान्तशैव, शांकर और वैयाकरण मत में भेद—

सिद्धान्तशैव का मत है कि 'शिव और शक्ति (ज्ञानरूपा)एक तत्तव, शिव की परिग्रह शक्ति 'विन्दु' जो 'क्रियाशक्ति भी कही जाती है द्वितीय तत्तव, आत्म तृती तत्तव, इस प्रकार तीन तीन'रत्र' हुए।विन्दु के दो भेद एक शुद्ध (महामाया) दूसरा अशुद्ध (माया)विन्दु की शक्ति का नाम विकल्प है। उसे ही आश्रय बनाकर शिव शिद्धबिन्दु को क्षुब्ध करते हैं।उससे शब्द और अर्थ सृष्टि की धारा उत्पन्न होती है।वह शब्दधारा क्रम से परा. पश्यन्ति,मध्यमा और वैखरी के रूप में है फिर अशुद्ध बिन्दु क्षुब्ध होकर अशुद्ध शब्द धारा उत्पन्न करता है। वह भी क्रम से परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी रूप है। इस प्रकार दोनों प्रकार के बिन्दुओं से उत्पन्न धाराएँ जङ हैं। उनका परिणाम वाणी भी जड है'। उसका अतिक्रम ही मोक्ष है। वाक् तादात्मय मोक्ष नहीं है।' यह मत शैव सिद्धान्त के अष्टप्रकरण में प्रतिपादित है। विशेष वहीं देखना चाहिए।

अभिनव गुप्त का मत है कि प्रकाश और विमर्श दो ही वस्तु हैं। प्रकाश ही शिव है और विमर्श ही उसकी स्वातन्त्र्यशक्ति उमा कही जाती है। फिर भी प्रकाश के बिना विमर्श और विमर्श के बिना प्रकाश नहीं रह सकता अतः दोनो एक ही हैं इसिलिए इन्हें 'अद्वैति' कहा जाता है।विमर्श को परावाक् और प्रकाश को अर्थ माना है। यही सिद्धान्त कालिदास ने 'वागर्थाविव स्मपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।' में वर्णित किया है। जब सर्वस्वतन्त्र शिव अपनी स्वतन्त्र शक्ति का संकोच करते हैं तब 'मैं यह जानता हूँ' भेद बुद्धि होती है। इस प्रकार स्वातन्त्र्य शक्ति रहित अंश जडवर्ग वर्ग है और शक्ति सहित अंश चेतन वर्ग है। शांकरमत में विशेषता यह है कि'प्रकाश को स्वप्रकाश मान लेने से कार्य चल जाता है प्रकाशक के रूप में विमर्श मानना आवश्यक नहीं है। प्रकाश ही ब्रह्म है जो अनिर्वचनीय अविद्या के द्वारा अनेक रूप में प्रतीत होता है।' शब्द ब्रह्मवादियों का मत है कि विमर्श (पश्यन्ति) ही ब्रह्म है। वह अविधा के द्वारा अनेक रूप में भासित होता है।

इस प्रकार वैयाकरण के मत में पश्यन्ति वाक् ही शब्द ब्रह्म है और शब्द ब्रह्म में तादात्मय ही जीव का मोक्ष है। मुक्ति में भी शब्दात्मना जीव की स्थिति रहती है। सिद्धान्तशैव के मत में मोक्षदशा में अशुद्ध वाक् रूप बन्धन का अतिक्रम हो जाता है और शुद्ध वाग् रूप का अनुगम रहता है इसलिए वह 'चित्' रूप में भासित होता है और वाणी 'चिद्' रूप में प्रतीत होती है। वस्तुतः जीव का वाक् तादात्मय नहीं होता।

वाणी के तीन भेद—

वाणी के तीन भेद माने गए हैं पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी।इन तीनों के भी तीन-तीन भेद हैं, स्थूला, सूक्ष्मा और परा।इस प्रकार वाणी के नव भेद हुए। वर्ण विभाग रहित स्वर प्रधान संगीत रूपा वाक् स्थूला पश्यन्ति, यही जिज्ञासा सहित सूक्ष्मा पश्यन्ती,यही जिज्ञासा हीन संवीद्रूपा परा मध्यमा पृथक्-पृथक् विलक्षणता के कारण स्पष्ट व्यक्त वर्ण रूपा वाक् स्थूला वैखरी। यही विवक्षा रूपा सूक्षमा वैखरी।यही विवक्षा रहित होने परसंविदुरूपा परा वैखरी। इस प्रकार पश्यन्ति ही सूक्ष्मतर अवस्था में 'परा' वाक् भी कही जाती है। तात्पर्य यह है कि एकक विन्दु में तीन रेखा डाल देने से भी मूलभूत विन्दु एक ही है।उस एक विन्दु में पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी तीन रेखायें हैं और इन एक-एक रेखाओं में भी स्थूला, सूक्ष्मा और परा तीन रेखाएँ हैं। इस प्रकार नव वाणी बनती है जिनमें एक वह अलग ही है जिनमें तीन-तीन भेद के साथ तीनों वाणियाँ हैं अतः वह रूप दशम भेद है। पूर्वाक्त नव और उनकी कारण तीन वाणियाँ इस प्रकार द्वादश भेद हुए। इन्हें द्वादशरश्मियाँ कहा जाता है और सूर्य भी कहा जाता है। अत एव कहा है कि-

सर्वभूतान्तरचरः शब्दब्रह्मात्मको रविः।
भित्वा यं बोधखड्गेन निर्गच्छन्त्यविशङ्किताः।।

'समस्त प्राणियों के हृदय में विचारने वाला शब्दब्रह्म रूप सूर्य बोधरूप खड्ग से जिसका भेदन कर निडर लोग निकल जाते हैं।' आत्मशक्तियाँ ही चिन्मरीचियाँ अथवा सूर्य रश्मियाँ हैं। सूर्य ही समस्त अर्थो का प्रकाशक होने से शब्द ब्रह्मत्मक अथवा वेदात्मक है। बोडशकला वाले पुरुष में 15 कलायें परिणामशालिना हैं फिर भी सोलहवीं कला चित्कला और परिणाम की साक्षीभूता और परम अमृत रूप है। इसीलिए इसका निरोध भी सम्भव नहीं विनाश तो दूर की बात है। सिद्धान्तशैवों का मत है कि परा, पश्यन्मि, मध्यमा और वैखरी नाम की चार वाणियाँ हैं और ब्रह्म उनसे अलग है। पश्यन्ति आदि तीनों वाणियाँ परावस्था में परब्रह्म से संगत होकर एक रूप में स्थिर हैं। फिर वाचस्पति परमेश्वर अपनी ज्योति से अपने से अभिन्न वस्तु समुदाय को नित्य भासित करता है जिससे इच्छा उठती है और यही सृष्टिक्रम का कारण बनता है। नागेशभट्ट ने सिद्धान्तशैव के इसी मत पर और **'परा वाङ्गमूलचकस्था पश्यन्ति नाभिसंस्थिता। हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशका'** इस तन्त्रशास्त्र के मत में आधार पर वाणी के चार भंदा परा, पश्यन्ति, मध्यमा, और वैखरी मान लिया जो वास्तव में व्याकरण सिद्धान्त के विरुद्ध है। क्योंकि आचार्य भर्तृहरि ने **'वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्रैचद्भुतम्। अनेकतीर्थभेदायास्त्रय्या वाचः परं पदम्'** कारिका में वाणी के तीन ही भेद स्वीकार किए हैं। 'सारस्वती सुषमा' के लेख में जिस विद्वान् ने **'स्वरूपज्योतिरेवान्तः परावागनपायिनी'** कारिका को वाक्यपदीय की मानकर प्रमाण के रूप में उपस्थित कर परा वाणी को भर्तृहरि समस्त कहने का दुःसाहस किया है उसने वाक्यपदीय को न देखकर ही ऐसा किया है अतः हम इस विषय में कुछ नहीं कहेगें। जिन लोगों ने **'चत्वारी वाग् परिमिता पदानि'** महाभाष्यस्थ मन्त्र

की नागेश की टीका के आधार पर वाणी के चार भेदों की कल्पना का समर्थन किया है उन्हें इसी मन्त्र का प्रदीप देखना चाहिए, जहाँ कैय्यट ने लिखा है कि-

'चतुर्णा (नामाख्यतोपसर्गनिपातानाम्) पदजातानामेकैकस्य चतुर्थभागं मनुष्या अवैयाकरणा वदन्ति।' यद्यपि 'चतुर्णाम्' की व्याख्या 'नामाख्यातोपससर्गनिपातानाम्' इस मन्त्र की व्याख्या में कैय्यट ने लिखा है तथापि 'चत्वारी श्रृङ्गा' मन्त्र की व्याख्या में भाष्यकार ने स्वयं कण्ठतः 'नामाख्यात' आदि की गणना की है, इस प्रकाश नागेश की वाणी के चार भेद स्वीकार करने वाला सिद्धान्त व्याकरण सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है।

हाँ, एक बात यह रह जाती है कि वे वाणी के चार भाग कौन हैं जिनमें अवैयाकरण केवल चतुर्थ भाग बोलते हैं। इसका उत्तार तो अत्यन्त स्पष्ट है। एक तो यह की अवैयाकरण वाणी के उस रूप को हम जानते हैं जिसमें लोक व्यवहार होता है, शेष साधुत्वादि रूप नहीं जानते दूसरा अर्थ तो यह हो सकता है कि-

'त्रिपादुध्र्व उदैत् पुरुषः पादोस्येया भवत पुनः।
पादोस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।

इस मन्त्र में वर्णित ब्रह्म के चार अंश का जो विवेचन हैवही शब्द ब्रह्मवादियों के मत में सुस्थिर है यह वाक संस्कृत वाक् है जिनके ज्ञान से पुण्य होता है जिसका फल है 'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति।'

द्वितीय काण्ड का परिपाद्य विषय—

हम यहाँ द्वितीय काण्ड के प्रतिपाद्य समस्त विषयों की चर्चा न करके केवल उसकी मुख्य विचारधारा का निर्देश मात्र देना उपयुक्त समझते हैं। प्रथम काण्ड में वाक्यस्फोट को ही मुख्य सिद्ध किया गया है किन्तु वाक्य का स्वरूप क्या है इसका विवेचन द्वितीय काण्ड का मुख्यतया प्रतिपाद्य विषय है। वाक्यपदीय के द्वितीय काण्ड के आरम्भ में वाक्य के विषय में विभिन्न दृष्टिकोणों की चर्चा की गई हैं जिनमें मुख्य ये हैं।

वाक्य विचार—

वाक्य दो प्रकार के हैं एक अखण्ड और दूसरा सखण्ड। अखण्ड पक्ष वाक्य के तीन भेद हैं।(1) संघातवर्तिनीजाति, (2) एक अनवयव शब्द और(3) बुद्ध्यनुसंहित। सखण्ड पक्ष में पाँच भेद हैं (1) केवल आख्यातशब्द,(2) क्रम, (3) संघात्, (4) आद्यपद, (5) पृथक सर्वपद साकांक्ष।सखण्ड पक्ष के पाँच भेदों में संवात और क्रम अभिहितान्बयवाद पक्ष में और आख्यातशब्द, आद्यपक, पृथक् सर्वपद साकांक्ष तीन लक्षण अन्विताभिधानवादपक्ष में हैं।इस

प्रकार विभिन्न दर्शनों के आधार पर आठ प्रकार के वाक्यों के लक्षण किए गए हैं। इसके बाद वार्तिककार और मीमांसकों के मत से वाक्य के लक्षण कहे गए हैं।

वाक्यार्थ विचार—

वाक्यार्थ का विचार अनेक पक्षों में किया गया हैं जिनमें अभिहितान्वयवाद, अन्विताभितान्वयवाद और प्रतिभावाद मुख्य हैं। उपर्युक्त प्रथम दो वादों में अनेक प्रकार के दोषों का उöवन करके प्रतिभा को ही वाक्यार्थ रूप में स्थिर किया गया है।

प्रतिभा का स्वरूप—

वैयाकरणों के मत में प्रतिभा ही वाक्यार्थ है। नागेश ने भी मंजूषा में स्वीकार किया है कि 'प्रतिभा वाक्यार्थः'। वाक्यपदीयकार ने कहा हैकि संज्ञावाचक शब्दों में नियत संज्ञी की ही प्रतीति होती है। अतः कल्पित पदार्थो से सिद्ध प्रतिभा को ही वाक्यार्थ कहा गया है-**विच्छेदग्रहणेऽर्थानां प्रतिभान्यैव जायते। वाक्यार्थ इति तामाहुः पदार्थैरुपपादिताम्।।** यह प्रतिभा प्रत्येक आत्मा के लिए भिन्न भिन्न सिद्ध है तथा 'यह उसका स्वरूप है' यह जानकर भी दूसरे को नहीं समझाया जा सकता। **इदं तदिति सान्येषामनाख्येया कथञ्चन। प्रत्यात्मधृत्तिसिद्धा सा कत्र्रापि न निरूप्यते।।** उसका यह स्वभाव है विना विचार या अवसर दिये ही समस्त अर्थो का मेल कर देती है इसलिए विषय में सर्वरूपता प्राप्त कर गई है। **उपश्लेषमिवार्थानां सा करोत्यविचारिता। सार्वरूप्यमिवापन्ना विषयत्वेन वर्तते।।** चाहे किसी की भावना से अथवा शब्द द्वारा उत्पन्न हुई इस प्रतिभा का कोई भी व्यक्ति कार्य के प्रकार निर्णय करने में अतिक्रमण नहीं करता। **साक्षात्शब्देन जनितां भावानानुगमेन वा। इतिकर्तव्यतायां तां न कश्चिदतिवर्तते।।** समस्त प्राणी इसी (प्रतिभा) को प्रमाण मानते हैं और मनुष्यों की भाँति पशु और पक्षियों के भी समस्त कर्मो का आरम्भ प्रतिभा ही करती है। **प्रभाणत्वेन तां लोकः सर्वः समनुपश्यति। समारम्भाः प्रतीयन्ते तिरश्चामपि तद्वशात्।।** यह सर्व प्राणियों की सिद्धि है जैसे कीन्हीं द्रव्यों के परिपाक के साथ ही बिना किसी प्रयत्र के मादकता आ जाती है। वैसे प्रत्येक व्यक्तियों के नियत संस्कार से जन्य प्रतिभा भी प्रतिभा वालों के विकसित होने में यत्नान्तर की अपेक्षा नहीं करती। यथा द्रव्यविशेषाणां परिपाकैरयत्नजाः। मदादिशक्तयो हष्टा प्रतिभाष्टद्वतां तथा।। प्रतिभा ही एक ऐसी वस्तु है जो समय-ससमय पर स्फुरित होती रहती है। वसन्त में कोयल के मीठे शब्द स्वयं हो जाते हैं, पक्षियों को घर बनाने की शिक्षा भी स्वयं आ जाती है। किसी प्राणी को किसी आहार के प्रति प्रीती, दूसरे को द्वेष, जैसे ऊँट को आम के पल्लव से द्वेष और नीम के पल्लव से प्रीती है। मनुष्य को बडे प्रयत्र पर तैरना आता है किन्तु भैंस के बच्चे जन्म लेते ही तैरने लगते हैं। इस प्रकार यह मानना पडता है कि समस्त प्राणियों की समस्त क्रियायें प्रतिभा के द्वारा ही हो रही हैं। प्रतिभा का कारण भी शब्द ही है। हाँ; यह भेद हो सकता है कि किसी

अवसर पर इस जन्म का अनुभूत शब्द प्रतिभा का कारण बने। वाक्यार्थ प्रतिभा है यह पक्ष इस प्रकार उपस्थित किया गया है जिससे व्याकरण के सिद्धान्त की नींव दृढ़ हो जाती है। 'सर्वे सर्वार्थवाचकाः' सिद्धान्त उसी समय पुष्ट हो जाता है जब हम स्वीकार कर लेते हैं कि 'प्रतिभा' में जितने अर्थ उपस्थित हैं सब उस शब्द के अर्थ है।क्योंकि प्रतिभा का कारण वह शब्द है जिससे विभिन्न प्रकार के अर्थो का प्रतिभान हुआ है। मन्त्रों के जप में भी ध्यान का ही महत्तव है कि आराधक मन्त्र के अर्थ का ध्यान करता हुआ अपने ध्यान में स्थित आकार वाले देवता को उस योग साक्षात् करे।

अस्तु प्रतिभावाद के स्वीकार कर लेने से ही वैयाकरणों का एक-वृत्तिवाद भी समन्वित हो जाता है। इन्हें लक्षणा अथवा अथवा व्यञ्जन भी सिद्धान्तः नहीं मानना पडता। जब किसी शब्द की विभिन्न आनुपूर्वी से विभिन्न अर्थो की उपस्थिती होती है तब कोई कारण नहीं कि मुख्यार्थ और अमुख्यार्थ का विवेचन किया जाय तथा वाक्यार्थ बोध के लिए लक्षण माना जाय। इसी प्रकार व्यञ्जना भी मानने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि जब समस्त अर्थ शब्दजन्या प्रतिभा से जन्य हैं तब तो सब अर्थ समान रूप से प्रतिभा ही हैं, उनमें शक्ति, लक्षणा और व्यञ्जना का भेद स्वीकार करना अयोग्यता ही है।अतः यदि किसी ने किसी टीका में यह लिख दिया हो कि वैयाकरणों के मत में तीन वृत्तियाँ हैं शक्ति, लक्षणा और व्यञ्जना तो यह निश्चय जान लेना चाहिए कि इसे व्याकरण के मूल सिद्धान्त का परिज्ञान नहीं है। हाँ; एक बात है, शब्दशास्त्र में दो पहलू हैं एक सम्यग्ज्ञान और दूसरा सम्यक् प्रयोग। व्याकरण द्वाराःकृत्रिम उपायों से सम्यग्ज्ञान शब्दसाधुत्वज्ञान होता है अर्थात् शब्द के व्यावहारिक रूप से शब्द के पारमार्थिक रूप का प्रत्यक्ष होता है। किन्तु स्म्यक् प्रयोग तो पारमार्थिक नहीं शुद्ध व्यावहारिक ही है तथा व्यवहार में किसी शब्द की शक्ति नियत है फिर व्यावहार में मुख्यार्थ बाध आदि के रहने से किसी रूप में तीन अथवा चार वृत्तियाँ भी मान्य होती ही हैं।हम तो यह मानते हैं कि 'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सु प्रयुक्तः'स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति'मन्त्र के सम्यग्ज्ञान का शास्त्र व्याकरण और सम्यक् प्रयोग का शास्त्र साहित्य है। अत एव इसी मंत्र को आधार मानकर दोनों शास्त्र अपनी उपादेयता भी सिद्ध करते हैं इस प्रकार वाक्यपदीय के द्वितीय काण्ड में वाक्य और वाक्यार्थ के विषय में जितने भी तर्क उपस्थित हुए हैं अथवा हो सकते हैं सब पर संक्षिप्त विचार किया है।

1.4 सारांश:-

इस इकाई में वाक्यपदीय एवं भर्तृहरि के विषय में परिचय दिया गया है वाक्यपदीय के तीन काण्ड में से प्रथम काण्ड अथवा ब्रह्मण्ड आगमसमुच्चय काण्ड है। इस काण्ड में आचार्य भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के दार्शनिक अधार का चित्रण किया है। आगम समस्त प्रमाणों में श्रेष्ठ है। हम यहाँ द्वितीय काण्ड के प्रतिपाद्य समस्त विषयों की चर्चा न करके केवल उसकी मुख्य विचारधारा का

निर्देश बताया गया हैं। सखण्ड पक्ष के पाँच भेदों में संवात और क्रम अभिहितान्बयवाद पक्ष में और आख्यातशब्द, आद्यपक, पृथक् सर्वपद साकांक्ष तीन लक्षण अन्विताभिधानवादपक्ष में हैं। इस प्रकार विभिन्न दर्शनों के आधार पर आठ प्रकार के वाक्यों के लक्षण किए गए हैं। इसके बाद वार्तिककार और मीमांसकों के मत से वाक्य के लक्षण कहे गए हैं। इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है।

1.5 शब्दावली:-

शब्द	अर्थ
‘एतेषां	इनके
दर्शनम्	दर्शन को
स्वरूपम्	स्वरूप को
पदकाण्डे	पद काण्ड में
ग्रन्थकृतैव	ग्रन्थ के रचना करने वाले ही
प्रतिपादितम्	प्रतिपादित किया
लेखकप्रमादादिना	लेखक के प्रमाद से
पदकाण्डमध्ये	पद काण्ड के मध्य में
प्रसिद्धः	प्रसिद्ध
‘यस्मादुक्तम्	जिसके द्वारा कहा गया
विस्तरेण	विस्तार से

1.6 बहुविकल्पीय प्रश्न-उत्तर

1-वैयाकरणों की परम्परा में पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि के बाद जिनका नाम बड़े आदर और सम्मान से लिया जाता है

1 भर्तृहरि 2 सूर्यनारायण

2 पुण्यराज 4 इत्सिंग

उत्तर-1 भर्तृहरि

2-वाक्यपदीयम् के रचयिता है

1 भर्तृहरि 2 सूर्यनारायण

2 पुण्यराज 4 इत्सिंग

उत्तर-1 भर्तृहरि

3-वाक्यपदीयम् में कितने काण्ड है

1 एक 2 तीन

2 दो 4 सात

उत्तर- 2 तीन

4- महाभाष्य के रचयिता है

1 भर्तृहरि 2 सूर्यनारायण

2 पुण्यराज 4 पतंजलि

उत्तर-4 पतंजलि

5- एक लक्ष श्लोक का संग्रह ग्रन्थ के रचयिता है

1 भर्तृहरि 2 सूर्यनारायण

2 पुण्यराज 4 व्याडि

उत्तर- 4 व्याडि

6- भर्तृहरि के गुरू का नाम है

1 वसुरात 2 सूर्यनारायण

2 पुण्यराज 4 व्याडि

उत्तर- 1 वसुरात

7-कातन्त्र व्याकरण के रचयिता है

1 भर्तृहरि 2 सूर्यनारायण

3 दुर्गसिंह 4 पतंजलि

उत्तर- 3 दुर्गसिंह

8- विक्रमादित्य के भाई का नाम है

1 वसुरात 2 भर्तृहरि

3 पुण्यराज 4 व्याडि

उत्तर- 2 भर्तृहरि

9-उज्जैन के किले में किसकी की गुफा है

1 वसुरात 2 भर्तृहरि

3 पुण्यराज 4 व्याडि

उत्तर- 2 भर्तृहरि

10-भर्तृहरिरचित कितने ग्रन्थ

1 एक 2 तीन

2 दो 4 सात

उत्तर- 4 सात

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न - उत्तर

1-प्रश्न- ईत्सिंग किस देश का यात्री था।

उत्तर-चीन देश

2-प्रश्न-वाक्यपदीयम् में कितने कारिकायें हैं

उत्तर-एक सै तीरपन

3-प्रश्न- भट्टीकाव्य के लेखक कौन है

उत्तर-भर्तृहरि

4-प्रश्न- वेदान्तसूत्रवृत्ति के लेखक कौन है

उत्तर-भर्तृहरि

5-प्रश्न- शब्दधातुसमीक्षा के लेखक कौन है

उत्तर-भर्तृहरि

6-प्रश्न- किसने लिखा है कि 'वाक्यपदीय और महाभाष्य व्याख्या का रचयिता आचार्य भर्तृहरि बौद्धमतानुयायी था।

उत्तर-ईत्सिंग

7-प्रश्न- आचार्य भर्तृहरि ने इस ग्रंथ का नाम वाक्यपदीय क्यों रखा।

उत्तर- वाक्य और पद के विषय में विचार है।

8-प्रश्न- वाक्यपदीय त्रिकाण्डी क्यां कहा गया है।

उत्तर- इसमें तीन काण्ड हैं

9-प्रश्न- वाक्यकाण्ड कितने कारिकायें हैं।

उत्तर- 483

10-प्रश्न- पदकाण्ड कितनी कारिकायें हैं।

उत्तर-1218

1.8 सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची:-

1- पुस्तक का नाम- वाक्यपदीयम् - लेखक का नाम- भर्तृहरि- सम्पादक का नाम-वासुदेव आचार्य - प्रकाशक का नाम- कृष्णदास आकादमी वाराणसी।

2-पुस्तक का नाम- वैयाकरण- सिद्धान्तकौमुदी-लेखक का नाम- भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम- गोपालदत्त पाण्डेय - प्रकाशक का नाम- चैखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।

3-पुस्तक का नाम - व्याकरण महाभाष्य-लेखक का नाम - पतंजलि - प्रकाशक का नाम - चैखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।

1.9 उपयोगी पुस्तकें:-

1. पुस्तक का नाम-वाक्यपदीयम्-लेखक का नाम- भर्तृहरि-सम्पादक का नाम-वासुदेव आचार्य-प्रकासक का नाम- कृष्णदास आकादमी वाराणसी

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1- भर्तृहरि का परिचय दीजिये।

खण्ड – द्वितीय, इकाई – 02
वाक्यपदीयम् - कारिका एक से पचास तक व्याख्या

इकाई की रूप रेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 कारिका एक से पचास तक हिन्दी में व्याख्या
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 बहुविकल्पीय प्रश्न-उत्तर
2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न-उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 उपयोगी पुस्तकें
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना:-

व्याकरण दर्शनशास्त्र से सम्बन्धित खण्ड द्वितीय की यह द्वितीय इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप वाक्यपदीयम् के दर्शन को समझ सकेंगे। व्याकरण दर्शनशास्त्र में प्रथम काण्ड को मुख्यतः आगमकाण्ड कहा जाता है। इस काण्ड में शब्द को ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया है। आचार्य भर्तृहरि ने शब्द को अनादिनिधन, अक्षर, जगत्कारण, नित्य और चेतन स्वीकार किया है। शब्द ब्रह्म अपनी स्वतन्त्र शक्ति 'कालशक्ति' के द्वारा समस्त जगत् की उत्पत्ति अथवा अभिव्यक्ति को नियन्त्रित मानता है। इसलिए इनके यहाँ एक ही शब्द से एक काल में अनेक कार्य नहीं उत्पन्न होते। उस ब्रह्म का स्वरूप और प्राप्ति का मुख्य उपाय 'वेद' है, जो एक है, किन्तु जो महर्षियों के द्वारा विभिन्न रूप में अभ्यस्त होने के कारण अनेक रूप का हो गया है। यह वेद अनेक अंगों और उपाङ्गों से युक्त है, जिसमें व्याकरण वेद का प्रधान अंग है और व्याकरण के द्वारा प्रत्यगात्म स्वरूप शब्द ब्रह्म का साक्षात्कार होता है जिसमें मोक्ष की प्राप्ति होती है।

1.2 उद्देश्य:-

इस इंकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- ❖ आचार्य भर्तृहरि रचित व्याकरण दर्शनशास्त्र के वाक्यपदीय के एक से पचास कारिका तक का अध्ययन करेंगे।
- ❖ ब्रह्म के विषय में परिचित होंगे ।
- ❖ एक से पचास कारिका के विषय में परिचित होंगे
- ❖ छः प्रकार के विकारों के बारे में परिचय प्राप्त सकेंगे।
- ❖ व्याकरण भी मोक्ष का साधन है, इसके विषय में परिचित होंगे
- ❖ वेद की शाखाओं के विषय में परिचित होंगे ।
- ❖ शब्दानुशासन के विषय में परिचित होंगे ।

2.3 कारिका एक से पचास तक हिन्दी में व्याख्या

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥1॥

हिन्दी व्याख्या:- जो उत्पन्न तथा विनष्ट नहीं होता तथा जिसमें आगे पीछे उत्पन्न होने का क्रम भी नहीं है,जो (ककारादिरूप) वर्णो का कारण होते हुए भी (अविद्यारूपी बाह्य अर्थो की वासना से घट पट) आदि अर्थ (कार्य) रूप में भासित होता है (जो शब्द अर्थ अभय रूप है) जिससे

जगत् की (समस्त विकारों की) प्रक्रिया (उत्पत्ति या व्यवहार) चलती है वह पश्यन्ति वाक् रूपी शब्दत्त्व ही ब्रह्म है। जैसे वैशेषिकदर्शन में कार्य (घट) में पृथ्वीत्वधर्म रहने से उसके कारण (परमाणु) में भी पृथ्वीत्वधर्म ही मानते हैं और सांख्यदर्शन में विकारों (पञ्चमहाभूत और एकादश इन्द्रियों) सुख-दुःख का समन्वय देखकर इनके कारण प्रधान (प्रकृति) में भी सुखदुःखरूपता मानी गई है। वैसे घट-पट आदि अर्थो में भी शब्दरूपता के अनुगम होने से घट-पट आदि के कारणों को भी शब्दरूप मानना ही पड़ेगा। क्योंकि प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है एक सविकल्पक दूसरा निर्विकल्पक। दोनों प्रत्यक्ष सर्वदा, सर्वथा और सर्वत्र किसी न किसी शब्द से ही कहे जाते हैं। शब्द से ही अर्थ की प्रतीति होती है। अतः शब्द और अर्थ में तादात्म्य माना जाता है। अतः वैयाकरणों के मत में शब्द ही ब्रह्म है।

यह शब्दतत्त्व ही जब अविद्याविशिष्ट ज्ञेयरूपता से शून्य चैतन्यमात्र में रहता है तब जीव कहा जाता है, जब किसी अर्थ (घट) के उच्चारण की इच्छा से युक्त होता है तब उसे मध्यमा वाक् कहते हैं, जब मुँह में आकर कण्ठ, तालु आदि स्थानों से क, ख, ग, आदि वर्णों के रूप में व्यक्त होता है तब उसे वैखरी वाक् कहते हैं और वही अविद्यारूपी बाह्य अर्थ की वासना से प्रेरित होकर घट-पट आदि रूप में परिणत (विवर्त) हो जाता है। विवर्त-अवास्तविक अन्यथा भाव को कहते हैं। जैसे रस्सी में सर्पबुद्धि। वस्तुतः रस्सी सर्प नहीं है, किन्तु भासित होती है वैसे ही शब्द ही घटरूप में भासित होता है। वस्तुतः शब्द से अतिरिक्त घट कोई अलग सत्य नहीं है।।

विशेष:- अनादिनिधनं = जो उत्पन्न तथा विनष्ट नहीं होता, शब्दत्त्वं = जो ककारादिरूप वर्ण, विवर्तते = परिणत।

एकमेव यदाम्नातं भिन्नं शक्तिव्यपाश्रयात्।
अपृथक्त्वेऽपि शक्तिभ्यः पृथक्त्वेनेव वर्तते।।2।।

हिन्दी व्याख्या:- (वह एक और समस्त जगत का कारण ब्रह्म (शब्द) जो एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, आदि श्रुतियों से एक ही कहा गया है वह उस नित्य शक्ति का आश्रय है (जिससे घट-पट आदि विचित्र प्रकार के भिन्न-भिन्न कार्य और ऋग्देव के, यर्जुवेद और सामवेद रूप से भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट होते हैं।) यद्यपि उस ब्रह्म में वास्तविक भेद नहीं है फिर भी शक्ति की विचित्रता से भेद दिखाई पड़ता है।

विशेष:- एकमेव = एक ही, यदाम्नातं = वेद, भिन्नं =भिन्न, शक्तिव्यपाश्रयात् = शक्ति की विचित्रता से।

अध्याहितकलां यस्य कालशक्तिमुपाश्रिताः।
जन्मादयो विकाराः षड्-भावभेदस्य योनयः।।3।।

हिन्दी व्याख्या:- जिस ब्रह्म की काल्पनिक भेदों वाली शक्ति कालशक्ति स्वतंत्र शक्ति है (जिसमें निमेष, पल, घटी आदि की कल्पना की गई है और जिस शक्ति के कारण ब्रह्म अनन्यशक्तिमान् माना जाता है।) उसी के अनुसार जन्म (जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, ह्रस्ति, नश्यति) आदि छः प्रकार के विकार हैं जो भावों (पदार्थों) के भेद के (क्रमिक भेद के) कारण माने जाते हैं।

विशेष:- अध्याहितकलां = ब्रह्मकी काल्पनिक , यस्य = जिस, कालशक्तिम्= काल शक्ति के, जन्मादयो = जायते, आदि, विकाराः= विकार।

एकस्य सर्वबीजस्य यस्य चेयमनेकधा।

भोक्तृभोक्तव्यरूपेण भोगरूपेण च स्थितिः।।4।।

हिन्दी व्याख्या:- इस तरह सर्वशक्तिमान् और अद्वितीय ब्रह्म है, पदार्थभेद अविद्याकल्पित और अवास्तविक हैं किन्तु विविध कार्यों के देखने से शक्ति में ही विचित्रता माननी पड़ती है। ब्रह्म में निरर्थक मानना निरर्थक ही है।।4।।

विशेष:- एकस्य = इस तरह, सर्वबीजस्य = सर्वशक्तिमान, भोक्तृभोक्तव्यरूपेण = विविध कार्यों के देखने से।

प्राप्त्युपायोऽनुकारश्च तस्य भेदो महर्षिभिः।

एकोऽप्यनेकवर्त्मैव समाम्नातः पृथक् पृथक्।।5।।

हिन्दी व्याख्या:- इस कारिका में प्राप्त्युपाय में दो पद हैं एक प्राप्ति और दूसरा उपाय। 'मेरा' और 'मैं' इस प्रकार की अहंकार-ग्रन्थि का छूटना ही प्राप्ति है। अहंकार और चिदात्मा का तादाम्याध्यास ही ग्रन्थि है।।5।।

विशेष:- प्राप्त्युपायः = प्राप्ति उपाय, अनुकारश्च' = मेरा' और – मैं, एकोऽप्यनेकवर्त्मेव = चिदात्मा।

भेदानां बहुमार्गत्वं कर्मण्येकत्र चाङ्गता।

शब्दानां यतशक्तित्वं तस्य शाखासु दृश्यते।।6।।

हिन्दी व्याख्या:- यद्यपि उस वेद की शाखाओं (पद, क्रम, धन, जटा और माला आदि) में (बहुत मार्ग अभ्यास के उपाय हैं) और शाखाओं की भिन्नता रहने पर भी एक कर्म में दुसरी शाखा के अङ्गों का परस्पर में उपकार्य उपकारक भाव भी है। तथापि (एक वेद की अनेक शाखाओं में विहित दर्शपूर्णमास याग एक नहीं है। क्योंकि वेद की शाखाओं में उन-उन कर्मों का

निधान करने वाले वाक्यों की शक्तियाँ उन-उन शाखाओं के अध्ययन करने वाले ही जानते हैं।।6।।

विशेष:- भेदानां बहुमार्गत्वं = भेद के बहुत मार्ग, कर्मण्येकत्र = एक कर्म में, शब्दानां = वेद की, यदशक्तित्वं = जो शक्तियाँ।

स्मृतयो बहुरूपाश्च दृष्टादृष्टप्रयोजनाः।

तमेवाश्रित्य लिङेग्भ्यो वेदविद्भिः प्रकल्पिताः।।7।।

हिन्दी व्याख्या:- ये स्मृतियाँ भी अनेक रूप की मिलती हैं। जिनमें कुछ स्मृतियों का प्रयोजन स्पष्ट दिखाई पड़कता है, कुछ का प्रयोजन अदृष्ट (पुण्य) मात्र है। ये स्मृतियाँ मन्त्र में पढ़े हुए लिङ्गों (चिह्नों) को देखकर वेद के जानकार द्वारा कल्पित (रचित) हैं।।6।।

विशेष:- स्मृतयः =स्मृतियाँ, बहुरूपाश्च= अनेक रूप की मिलती हैं, दृष्टादृष्टप्रयोजनाः= दिखाई पड़ता है, प्रयोजन अदृष्ट , तमेवाश्रित्य = ये स्मृतियाँ, लिङ्गेभ्यः = चिह्नों को, वेदविद्भि = वेद के जानकार, प्रकल्पिताः = रचित।

तस्यार्थवादरूपाणि निश्चिताः स्वविकल्पजाः।

एकत्विनां द्वैतिनां च प्रवादा बहुधा मताः।।8।।

हिन्दी व्याख्या:- वेद के ही मन्त्रों में जहाँ अर्थ परस्पर विरूद्ध दिखाई पढ़ते हैं वहाँ (भिन्न-भिन्न दर्शनाचार्यों ने) उनमें एक को अर्थवाद (प्रशंसा करने वाला) और दूसरे को सिद्धान्त मानकर अपनी- अपनी रूचि के अनुसार एकत्ववाद या द्वैतवाद मान लिया है और अपने - अपने आग्रह पर अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते हैं।

विशेष:- तस्यार्थ = वेद के ही मन्त्रों में जहाँ अर्थ, वादरूपाणि = परस्पर विरुद्ध, निश्चित्य = सिद्धान्त, स्वविकल्पजाः = अपनी-अपनी रूचि के।

सत्या विशुद्धिस्तत्रोक्ता विद्यैवैकपदागमा।

युक्ता प्रणवरूपेण सर्ववादाविरोधिनी ।।9।।

हिन्दी व्याख्या:- मानते हैं इनमें परस्पर मत भेद है किन्तु जो सत्य है उससे दोनों से कोई मतभेद नहीं है। क्योंकि प्रधान या परमाणु ब्रह्म से अन्य है ही नहीं। अतः ब्रह्म को कारण मानने वाले अद्वैतियों की दृष्टि में दोनों में कोई विरोध नहीं है। अतः ब्रह्म ही सत्य है। अथवा ब्रह्म की प्रकृष्ट स्तुति करने वाले प्रणव से ब्रह्म में तादात्म्य है अतः ब्रह्म होने के कारण प्रणव सत्य है उसके विवर्त जो अन्य है वह असत्य (मिथ्या) हैं। मिथ्या द्वैत से सत्य अद्वैत का कोई विरोध नहीं है।

यहाँ वास्तविकता यह है कि बोधनीय शिष्य की शक्ति के अनुसार ही विषय का ज्ञान कराना चाहिए बोद्धा परमाणु को ब्रह्म समझता है अतः उसे वही जगत् का कर्ता बताया गया है।

विशेष:- सत्या = जो सत्य है, विशुद्धितत्रोक्ता = जगत् का कर्ता बताया गया, विद्यैवैकपदागमा = ब्रह्म को कारण मानने वाले, युक्ता = युक्त, प्रणवरूपेण = प्रणव।

विधातुस्तस्य लोकानामङ्गोपाङ्गनिबन्धनाः।

विद्याभेदा प्रतायन्ते ज्ञानसंस्कारहेतवः।।10।।

हिन्दी व्याख्या:- जगत् की सृष्टि या उपदेश करने वाले इसी प्रणवरूपी वेद के अङ्ग (विधि) और उपाङ्ग (मन्त्र, अर्थवाद और उपनिषत्) अथवा अङ्ग (व्याकरण, शिक्षा, निरूक्त, कल्प, और छन्दः शास्त्र) और उपाङ्ग (पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र) मूलक ज्ञान और संस्कार के कारण ही व्याकरण आदि विद्या के भेदों का विस्तार हुआ है।

विशेष:- विधातुस्तस्य = सृष्टि या उपदेश, लोकानाम् =जगत् की, विद्याभेदाः =विद्याके भेदों का।

आसन्नं ब्रह्मणस्तस्य तपसामुत्तमं तपः।

प्रथमं छन्दसामङ्गं प्राहुर्व्याकरणं बुधाः।।11।।

हिन्दी व्याख्या:- और यही उचित भी है क्योंकि वेद के अर्थ का ज्ञान निरुक्त से, छन्दः विवेक छन्दः शास्त्र से, वर्णों के उच्चारण का ढंग शिक्षा से, कर्मों के प्रयोग का ज्ञान कल्प से, और उपर्युक्त तिथि नक्षत्रादिज्ञान ज्योतिष से अपेक्षित है। किन्तु वेद के स्परूप ज्ञान के पहले इनकी कोई अपेक्षा नहीं है। अतः पदों में प्रकृति-प्रत्यय के ज्ञान द्वारा वेद रचा और एक शब्द के स्थान पर दूसरे शब्द का उचित प्रत्यय के द्वारा ऊह करने के लिए व्याकरणाध्ययन की परमावश्यकता है। 'ब्राह्मणेन निष्कारणः' इत्यादि श्रुतियों से नित्य तथा 'एकः शब्दः' श्रुति के द्वारा काव्य होने से व्याकरण की अवश्य पठनीयता आगम प्रमाण भी सिद्ध कर रहे हैं। इस प्रकार रक्षा, ऊह और आगम रूप महाभाष्योक्त व्याकरणाध्यन के प्रयोजनों को ध्यान में रखकर व्याकरणाध्यन अवश्य करना चाहिए। इसलिए व्याकरण वेद के स्वरूप ज्ञान में अत्यन्त आसन्न भी है।।11।।

विशेष:- आसन्नं =आसन्न, ब्रह्मणस्तस्य = छन्दःशास्त्र से, तपसामुत्तमं= व्याकरण वेदके स्वरूप ज्ञानमें अत्यन्त

प्राप्तरूपविभागाया यो वाचः परमो रसः।

यत्तत्पुण्यतमं ज्योतिस्तस्य मार्गोऽयमाञ्जसः।।12।।

हिन्दी व्याख्या:- क्योंकि शब्द अनन्त है। उसका ज्ञान राजकोश के साथ करना असम्भव है। एक बार इन्द्र की इच्छा हुई थी कि सब शब्दों को पढ़ लिया जाय उन्होंने देवगुरू बृहस्पित को बुलाया और पढ़ने लगे। एक हजार वर्ष बीत गए किन्तु शब्दराशि का अन्त नहीं हुआ। आजकल तो जो दीर्घायु होगा सौ वर्ष तक जी सकेगा फिर उसे शब्दराशि का ज्ञान कैसे हो सकता है। इसलिए शब्दों के ज्ञान के लिए कुछ नियम बना लेना चाहिए जो नियम कुछ सामान्य नियम हों और कुछ विशेष नियम हों। विशेष नियमों से सामान्य नियमों का बोध हुआ करेगा इस प्रकार थोड़े से समय और परिश्रम से बडे शब्द सागर को पार किया जा सकता है। अतः व्याकरण नाम के इस शास्त्र का निर्माण हुआ जो थोड़े से परिश्रम में शब्दराशि का ज्ञान कराता है। अतः यह व्याकरण शब्द-ब्रह्म के ज्ञान में लाघव (शीघ्रता) करने वाला है अर्थात् थोड़े परिश्रम में अधिक शब्दों का ज्ञान कराता है।।12।।

विशेष:- प्राप्तरूपविभागाय = शब्दों के ज्ञान के लिए, वाचः = वाणी, परमो रसः = ब्रह्म के ज्ञान।

अर्थप्रवृत्तितत्त्वानां शब्दा एव निबन्धनम्।

तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते।।13।।

हिन्दी व्याख्या:- और किसी भी अर्थ के (घट, पट आदि के प्रवृत्ति) (व्यवहार, जैसे पानी भरना), और घट शब्द के प्रयोग में (उच्चारण में जातिशब्द, गुणशब्द और क्रिया) शब्द ही बोधक हैं क्योंकि जितने व्यवहार है सब शब्द से ही चलते हैं उन शब्दों के तत्त्व का(निःशेष साधुत्व, यायथार्थबोधकत्व का) ज्ञान बिना व्याकरण के नहीं हो सकता।

विशेष:- अर्थप्रवृत्तितत्त्वानां= किसी भी अर्थ के, शब्दा एव निबन्धनम् = शब्द ही बोधक हैं, तत्त्वावबोधः = शब्दों के तत्त्व का, व्याकरणादृते = बिना व्याकरण के।

तद्द्वारमपवर्गस्य वाङ्मलानां चिकित्सितम्।

पवित्रं सर्वविद्यानामधिविद्यं प्रकाशते।।14।।

हिन्दी व्याख्या:- और यही व्याकरण अपवर्ग का (मोक्ष का) उपाय है, पाप को उत्पन्न करने वाले अपशब्दरूपी वाणी के मलों की चिकित्सा (औषध) करने वाला है सब विद्याओं में पवित्र और साधुशब्दों को बताने के कारण सब 'विद्याओं से आदृत भी है।

विशेष:- तद्द्वारमपवर्गस्य =व्याकरण अपवर्ग का, वाङ्मलानां = वाणी के मलों का, चिकित्सितम् = औषध।

यथाऽर्थजातयः सर्वाः शब्दाकृतिनिबन्धनाः।

तथैव लोके विद्यानामेषा विद्या परायणम्।।15।।

हिन्दी व्याख्या:- अतः लोक की तरह वेद में भी शक्तिग्रह व्याकरण के द्वारा ही होने के कारण व्याकरण का अध्ययन वेदज्ञान द्वारा मोक्ष के लिए उपयुक्त है। इस प्रकार व्याकरण भी मोक्ष का साधन है।।15

विशेष:- यथार्थजातयः = वेद में भी, शब्दाकृतिनिबन्धनाः= व्याकरण का अध्ययन, विद्यानामेषा =वेदज्ञान द्वारा।

इदमाद्यं पदस्थानं सिद्धिसोपानपर्वणाम्।

इयं सा मोक्षमाणानामजिह्मा राजपद्धतिः।।16।।

हिन्दी व्याख्या:- तात्पर्य यह है कि व्याकरण केवल शक्तिग्रह के लिए ही नहीं उपयुक्त है अपितु ब्रह्मसाक्षात्कार के लिए भी है। व्याकरण के द्वारा ही वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ति का क्रम से ज्ञान होता है। पश्यन्ति ही परा रूपमें 'ब्रह्म हैं। अतः ब्रह्मज्ञान का कारण व्याकरण भी है।।16।।

विशेष:- इदमाद्यं = व्याकरण शक्तिग्रह के लिये, पदस्थानं =पश्यन्ति ही परा रूपमें 'ब्रह्म हैं, सिद्धिसोपानपर्वणाम्= ब्रह्मसाक्षात्कार के लिये सोपान है।

अत्रातीतविपर्यासः केवलामनुपश्यति।

छन्दस्यश्छन्दसां योनिमात्मा छन्दोमयीं तनुम्।।17।।

हिन्दी व्याख्या:- यह प्रथम कारिका में ही बताया गया है कि पश्यन्तिवाक् ही किसी अवस्था में जीव है। इसलिए पश्यन्ति का साक्षात्कार और आत्मसाक्षात्कार में कोई भेद नहीं है अतः शब्दसाक्षात्कार के द्वारा मोक्ष होता है।।17।।

विशेष:- अत्रातीतविपर्यासः = पश्यन्तिवाक् ही किसी अवस्था में जीव, केवलामनुपश्यति = आत्मसाक्षात्कार में कोई भेद नहीं, छन्दस्यश्छन्दसां = शब्दसाक्षात्कार के द्वारा मोक्ष देना

प्रत्यस्तमितभेदाया यद्वाचो रूपमुत्तमम्।

यदस्मिन्नेव तमसि ज्योतिः शुद्धं विवर्तते।।18।।

हिन्दी व्याख्या:-जो क्रम रहित वाणी का उत्तम और शुद्ध (मायाके प्रपञ्चोंसे परे) आलोक और तम का भी प्रकाशक शब्दब्रह्मरूपी ज्योति है। वह इसी वैकृतध्वनि रूपी अन्धकार में छिपी है।।18।।

विशेष:- प्रत्यस्तमितभेदाया = शब्दब्रह्मरूपी ज्योति है। यद्वाचो = जो वाणी का, रूपमुत्तमम् = आलोक और तम का भी प्रकाशक।

वैकृतं समतिक्रान्ता मूर्तिव्यापारदर्शनम्।

व्यतीत्यालोकतमसि प्रकाशं यमुपासते।।19।।

हिन्दी व्याख्या:- क्योंकि-विद्वान लोग वैकृत ध्वनि से सम्बद्धमूर्ति (देश) व्यापार (क्रिया और क्रिया से उपलक्षित काल) के अनुभव (प्रतीति) को स्फोटमें बिना अरोपित किये ही आलोक (प्राकृत ध्वनि) और तम (वैकृत ध्वनि) से अलग स्थित प्रकाश (स्फोट) का ही ज्ञान प्राप्त करते हैं। अर्थात् स्फोट एक है यह प्राकृत ध्वनि और वैकृतध्वनि से भिन्न है।।19।।

विशेष:- वैकृतं =वैकृत, समतिक्रान्ता = क्रिया और क्रिया, मूर्तिव्यापारदर्शनम् =सम्बद्धमूर्ति (देश) व्यापार।

यत्र वाचो निमित्तानि चिह्नानिवाक्षरस्मृतेः।

शब्दपूर्वेण योगेन भासन्ते प्रतिबिम्बवत्।।20।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे-जिस स्फोटब्रह्म में अक्षरों के स्मृति चिह्न (लिपियाँ) वाणी (प्राकृतध्वनि) का कारण मानी जाती है। वैसे शब्द को व्यक्त करने वाली कत्व, गत्व जातियाँ भी शब्दोच्चारण के पूर्व में होने वाली ध्वनियों से अभिन्न होने के कारण प्रतिबिम्ब की तरह मानते हैं अथवा शब्द को व्यक्त करने वाली कत्व, गत्व जातियाँ साधुशब्द का ज्ञानपूर्वक अक्रम प्रयोग के रूप में प्रतिबिम्ब की तरह प्रतीत होती है।

विशेष:- यत्र वाचो =अक्षरों के, निमित्तानि = कारण, चिह्नानि= चिह्न (लिपियाँ)।

अथर्वणामङ्गिरसां साम्नामृग्यजुसस्य च।

यस्मिन्नुच्चावचा वर्णा पृथक्स्थितिपरिग्रहाः।।21।।

हिन्दी व्याख्या:- और जिस स्फोट शब्दब्रह्म में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के जो उदात्त, अनुदात्त और स्वरित आदि वर्णों के धर्म हैं या धर्म की तरह प्रतीत होते हैं वे भी स्फोट के धर्म नहीं हैं किन्तु स्फोट की व्यञ्जक ध्वनि में अथवा वायु संयोग (अभिघात) रहते हैं।

विशेष:- अथर्वणाम् = अथर्ववेद के, साम्नामृग्यजुसस्य = ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, यस्मिन्नुच्चावचा = स्फोट की व्यञ्जक, वर्णा = वर्णों।

यदेकं प्रक्रियाभेदैर्बहुधा प्रविभज्यते।

तद्व्याकरणमागम्य परं ब्रह्माधिगम्यते।।22।।

हिन्दी व्याख्या:- यही स्फोट रूप एक ब्रह्म जिसे न्याय, सांख्य और वेदान्त आदि दर्शनों के विद्वानगण कर्ता, उदासीन और विवर्त का उपादान आदि अनेक रूप से कहते हैं या विभाग बताते हैं। वही आन्तर प्रणवरूप पर-ब्रह्म मध्यमा, वैखरी आदि वाणी के द्वारा व्याकरण से जाना जाता है।

विशेष: यदेकं = स्फोट रूप एक ब्रह्म, प्रक्रिया = प्रक्रिया, प्रविभज्यते = विभाग, तद्व्याकरणमागम्य = व्याकरण आगम।

नित्याः शब्दार्थसम्बन्धास्तत्राम्नाता महर्षिभिः।

सूत्राणामनुतन्त्राणां भाष्याणाञ्च प्रणेतृभिः।।23।।

हिन्दी व्याख्या:- इस प्रकार शब्द अर्थ तथा उसके सम्बन्ध के नित्य होने के कारण व्याकरणशास्त्र की इसलिए सार्थकता है कि श्रुति ने शास्त्र द्वारा प्रदर्शित विधि के स्मरण के साथ शब्द के प्रयोग से धर्मोत्पत्ति कहा है। 'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति'।।23।।

विशेष:- नित्याः = नित्य, शब्दार्थसम्बन्धाः = शब्द अर्थ सम्बन्ध के, तत्राम्नाता = श्रुति ने शास्त्र द्वारा, महर्षिभिः = व्याकरणशास्त्र के रचनाकार।

अपोद्धारपदार्था ये ये चार्थाःस्थितलक्षणाः।

अन्वाख्येयाश्च ये शब्दा ये चापि प्रतिपादकाः।।24।।

कार्यकारणभावेन योग्यभावेन च स्थिताः।

धर्मे च प्रत्यये चाङ्गं सम्बन्धाः साध्वसाधुषु।।25।।

ते लिङ्गैश्च स्वशब्दैश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुपवर्णिताः।

स्मृत्यर्थमनुगभ्यन्ते केचिदेव यथागमम्।।26।।

हिन्दी व्याख्या:- साधुशब्द, अर्थ और शब्द तथा असाधु शब्द, अर्थ और सम्बन्ध में जिसके (साधुशब्द) ज्ञान से धर्म की उत्पत्ति और अर्थ ज्ञान में सहायता मिलती है, वे ही पद और वाक्य इस व्याकरण शास्त्र में लिङ्गों, प्रकृति, प्रत्यय और स्वशब्द से वर्णित हैं और जो अपने स्वरूप बोधन के साथ पद और वाक्यों का प्रतिपादन करते हैं वे प्रतिपादक (प्रकृति और प्रत्यय) जो शब्दों में प्रकृति और प्रत्यय की कल्पना द्वारा सरलता से पद और वाक्यों का ज्ञान कराते हैं वे

अन्वाख्येय (पदरूप और वाक्यरूप, शब्द) जो पदार्थो से विभक्त हैं वे अपोद्धार और जिनसे अर्थ का ज्ञान होता है वे प्रकृति और प्रत्यय, पद उनके अर्थ पदार्थ रूप अपोद्धार पदार्थ (प्रकृतिप्रत्ययार्थ) जो अपने स्वरूप की किसी प्रकार रक्षा करते हैं वे स्थितिलक्षण अर्थ (पदार्थ और वाक्यार्थ) हैं और जो कार्यकारण भाव सम्बन्ध और योग्यभाव (तदात्मय सम्बन्ध) से स्थित हैं। अर्थात् साधु हैं उनका ही लघुभूत उपाय के द्वारा शास्त्र ज्ञान के साथ स्मरण के लिये इस शास्त्र में वर्णन किया गया है। यहाँ 'अपोद्धारपदार्थ' में दो पद हैं। प्रथम पद 'अपोद्धार' का अर्थ है 'विभाग' और दूसरे पदार्थ पद का पदस्यार्थः इस व्युत्पत्ति से प्रकृति प्रत्ययार्थ अर्थ है। 'सृप्तिङन्तं पदं सूत्र से पारिभाषित पद शब्द का अर्थ नहीं है। अतः पदार्थों से विभक्त प्रत्ययर्थ और प्रत्ययार्थ अपोद्धारपदार्थ पद का अर्थ होता है।

विशेषः- धर्मे= धर्म में, प्रत्यये= प्रत्यय में, चाङ्गं = और अंग, साध्वसाधुषु =साधु असाधु शब्दज्ञान।

शिष्टेभ्य आगमात् सिद्धाः साधवो धर्मसाधनम्।

अर्थप्रत्ययनाभेदे विपरीतास्तवसाधवः।।27।।

हिन्दी व्याख्याः- एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति। इस श्रुति के अनुसार साधुशब्दज्ञान धर्म का साधन कहा गया है और 'तेऽसुरा' हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः परावभूवुः, ततस्मात् ब्राह्मणेन न म्लेक्षितवै नापभासितवे म्लेक्षो हवा एष यदपशब्दः'इस श्रुति के द्वारा असाधुशब्द-ज्ञान अधर्मसाधन माना गया है। अतः साधुशब्द का प्रयोग करना ही उचित है।

नित्यत्वे कृतकत्वे वा तेषामादिर्न विद्यते।

प्राणिनामिव सा चैषा व्यस्थानित्यतोच्यते।।28।।

हिन्दी व्याख्याः- याग आदि धर्म भी आगम (वेद) के बिना केवल तर्क के बल पर सिद्ध नहीं हो सकते और महर्षियों के अतीन्द्रिय ज्ञान भी मुक्ति के विधान के द्वारा तप करने से ही प्राप्त हुए हैं। तात्पर्य यह है कि 'याग से स्वर्ग होता है' यह अनुमान से सिद्ध नहीं होता अनुमान वहीं होता है जहाँ सहचार-दर्शन द्वारा व्याप्य-व्यापक-भाव गृहीत हो। अतः जैसे आग में दाहकता क्यों है। इस प्रश्न के उत्तर में यहीं कहना पड़ता है कि 'यह आपका स्वभाव है' वैसे याग से स्वर्ग क्यों होता है इस प्रश्र का उत्तर यही होगा कि 'यह याग का स्वभाव है'। आगम के द्वारा याग और स्वर्ग के व्याप्य-व्यापक-भाव गृहीत होने पर भी यह व्याप्य-व्यापक-भाव भी जब आगम प्रमाण की अपेक्षा रखता है तब व्याकरणागम से शब्द के साधुत्व बताने में वाचक नहीं होगा। ऋषियों ने तो आगमोक्त अनुष्ठानों के द्वारा अन्तःकरण शुद्ध कर ही दिव्यदृष्टि पाई है। अतः उनका भी ज्ञान

आगममूलक है। अतः किसी भी प्रकार का तर्क शब्दसाधुत्व के बारे में व्याकरणागम का बाधक नहीं है

विशेष:- नित्यत्वे =याग आदि धर्म भी आगम, कृतकत्वे= तर्क के बल पर, तेषामादिर्न = अनुमान वहीं होता है।

नानर्थिकामिमां कश्चिद्व्यवस्थां कर्तुमर्हति।

तस्मान्निबध्यते शिष्टैः साधुत्वविषया स्मृतिः।।29।।

हिन्दी व्याख्या:- अतः कोई भी व्यक्ति समझदार हो या नासमझ यह इस व्यवस्था को निष्प्रोजन नहीं सिद्ध कर सकता। इसलिए आचार्य पाणिनि से अनादिगुरू परम्परा से सीखी हुई साधुत्व विषयक स्मृति (व्याकरण शास्त्र) का निर्माण किया।।29।।

विशेष:- नानर्थिकामिमां = समझदार हो या नासमझ, कश्चिद्व्यवस्थां = इस व्यवस्था को, कर्तुमर्हति। = नहीं सिद्ध कर सकता, साधुत्वविषया = साधुत्व विषयक।

न चागमाद्ऋते धर्मस्तर्केण व्यवतिष्ठते।

ऋषिणामपि यज्ज्ञानं तदप्यागमपूर्वकम्।।30।।

हिन्दी व्याख्या:- वैसे आत्मा की नित्यता की भाँति शब्दों की नित्यता मानने पर कूटस्थ नित्यता और कृत्रिमता (अनित्यता) मानने पर अनादि संसार प्रवाह में प्रवाङ नित्यता मानने से व्याकरण की रचना व्यर्थ न होगी।

विशेष:- चागमादृते = और आत्मा की नित्यता की, धर्मस्तर्केण = शब्दों की नित्यता मानने पर, व्यवतिष्ठते = कृत्रिमता

धर्मस्य चाव्यच्छिन्नाः पन्थानो ये व्यवस्थिताः।

न ताँल्लोकप्रसिद्धत्वात् कश्चित्तर्केण बाधते।।31।।

हिन्दी व्याख्या:- जो धर्म के प्रतिपादक (श्रुति, स्मृति आदि) आगम हैं वे व्यवस्थित (लोकप्रसिद्ध) है और सब शिष्टों (गुरूपरम्परा) से ज्ञात है। अतः उन लोक-प्रसिद्ध आगमों का तर्क से बाध नहीं हो सकता। क्योंकि लोक के विरोध पर तर्क का ही बाध होता है।।31।।

विशेष:- धर्मस्य = धर्म के प्रतिपादक, चाव्यच्छिन्नाः= व्यवस्थित (लोकप्रसिद्ध) है, पन्थानः = गुरूपरम्परा से ज्ञात ।

अवस्थादेशकालानां भेदाद्भिनाषु शक्तिषु।

भावानामनुमानेन प्रसिद्धिरदुर्लभा।।32।।

हिन्दी व्याख्या:- इन तर्कों की आगमों में ही नहीं लोक में भी विफलता सिद्ध है। जब भावों (पदार्थों) की शक्तियाँ अवस्था, देश और काल के भेद से भिन्न भिन्न होती है। तब अनुमान के द्वारा उन उन पदार्थो में उन उन शक्तियों की अनुमिती अतिदुर्लभ है।

विशेष:- अवस्थादेशकालानां = अवस्था, देश और काल के , भेदाद्भिनाषु = भेद से भिन्न भिन्न होती है, शक्तिषु = शक्तियों की।

निर्ज्ञातशक्तेर्द्रव्यस्य तां तामर्थक्रियां प्रति।

विशिष्टद्रव्यसम्बन्धे सा शक्तिःप्रतिबध्यते ।।33।।

हिन्दी व्याख्या:- और उन-उन वस्तुओं की उन-उन क्रियाओं में शक्तियों के नियत रहने पर भी किसी विशिष्टद्रव्य के सम्बन्ध से उसकी शक्ति नष्ट भी हो जाया करती है।

विशेष:- निर्ज्ञातशक्तेर्द्रव्यस्य = उन-उन वस्तुओं की, तामर्थक्रियां = उन-उन क्रियाओं में, प्रति = शक्तियों के।

यत्नेनानुमित्योऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः।

अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपद्यते।।34।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे कपिल ने यत्नपूर्वक अनुमान से जगत् का कारण प्रधान सिद्ध किया है और वैसी ही युक्तियों से कणाद ने परमाणु को जगत् का कारण मान लिया। अतः चतुर अनुमाता भी धर्म के बारे में अनुमान से कोई निर्णय नहीं कर सकता है ।।34।।

विशेष:- यत्नेनानुमित्योऽप्यर्थः = यत्नपूर्वक अनुमान से भी, कुशलैः = युक्तियों से, अनुमातृभिः = अनुमाता भी धर्म के।

परेषामसमाख्येयमभ्यासादेव जायते।

मणिरूप्यादिविज्ञानं तद्विदां नानुमानिकम्।।35।।

शब्दार्थ - लौकिकमणि और गिन्नी आदि के मूल्य के तारतम्य का ज्ञान जानकार स्वर्णकारों को ही होता है। वे इसे चाहने पर भी बता नहीं सकते है। क्योंकि किसी वस्तु की विशेषता के ज्ञान तो अभ्यास से ही होता है। इस अभ्यास से होने वाले ज्ञान को अनुमान नहीं कहा जा सकता है क्योंकि व्याप्ति ज्ञान से जन्य नहीं है। यह अभ्यास नाम का ज्ञान लौकिक प्रत्यक्ष और अनुमान से भिन्न हैं और लौकिक समाधि से जन्य है। अतः यह कोई अन्य प्रमाण है।।35।।

विशेष:- परेषाम् = कोई अन्य प्रमाण, समाख्येयम = अनुमान , अभ्यासादेव = अभ्यास नाम का ज्ञान।

प्रत्यक्षमनुमानं च व्यतिक्रम्य व्यवस्थिताः।

पितृरक्षःपिशाचानां कर्मजा एव सिद्धयः।।36।।

हिन्दी व्याख्या:- और, अलौकिक जो लौकिक प्रत्यक्ष और अनुमान से न जानने योग्य लोक में प्रसिद्ध पितर, राक्षस और पिशाच आदि की सिद्धियाँ(जैसे बन्द कमरे की बात कह देना, प्रकट होना, छिप जाना आदि) कर्माधीन होती हैं। यह दो प्रकार का आर्ष ज्ञान तप के द्वारा उत्पन्न अदृष्ट से जन्य है। अतः तर्क जन्य नहीं है।।36।।

विशेष:- प्रत्यक्षमनुमानं =प्रत्यक्ष और अनुमान से, व्यतिक्रम्य = व्यतिवम से, व्यवस्थिताः = सिद्धियाँ।

आविर्भूतप्रकाशानामनुपप्लुतचेतसाम्।

अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते।।37।।

हिन्दी व्याख्या:- जिनके चित्त रजोगुण और तमोगुण से अभिभूत नहीं है। जिन्हें (प्रकाश) ज्ञान हो गया है उन महर्षियों को जो भूत और भविष्यत् का ज्ञान होता है वह भी हम लोगों के प्रत्यक्ष की ही भाँति प्रत्यक्ष है।।37।।

विशेष:- आविर्भूतप्रकाशानाम् = ज्ञान हो गया है, चेतसाम् = चित्त रजोगुण और तमोगुण से, अतीतानागतज्ञानं = भूत और भविष्यत् का ज्ञान।

अतीन्द्रियानसंवेद्यान्पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा।

ये भावान वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते।।38।।

हिन्दी व्याख्या:- जो इन्द्रियों से ग्रहीत नहीं हो सकते और जो प्रत्यक्षमूलक अनुमान से भी आग्राह्य हैं। वे भाव (पदार्थ जैसे भगवान्, परमाणु, शब्दब्रह्म, देवता आदि) जिन्हें महर्षियों ने आर्ष (अलौकिक समाधि रूप तपसे प्राप्त) नैत्र (नैत्र सदृश योग से उत्पन्न धर्म) के द्वारा देखा है। उनके वचन अव्यवस्थित अनुमान से बाधित नहीं हो सकते।।38।।

विशेष:- अतीन्द्रियान् = इन्द्रियों से ग्रहीत, पश्यन्त्यार्षेण = महर्षियों ने देखा, चक्षुषा = नेत्र के द्वारा , वचनं = वचन, बाध्यते = बाधित।

यो यस्य स्वमीव ज्ञानं दर्शनं नातिशङ्कते।।

स्थितं प्रत्यक्ष पक्षे तं कथमन्यो निवर्तयेत् ।।39।।

हिन्दी व्याख्या:- जो व्यक्ति किसी योगी के प्रत्यक्ष को अपना प्रत्यक्ष मान बैठा है। उसे दूसरा व्यक्ति तर्क के द्वारा अपनी और कैसे खींच सकता है। क्योंकि उसे उसके तर्क पर विश्वास ही नहीं है ।।39।।

विशेष:- यस्य = किसी योगी के, स्वमीव = प्रत्यक्ष को अपना प्रत्यक्ष, ज्ञानं = मान बैठा ।

इदं पुण्यमिदं पापमित्येतस्मिनपदद्वये।

आचण्डालं मनुष्याणामल्पं शास्त्रप्रयोजनम्।।40।।

हिन्दी व्याख्या:- यही कारण है कि - ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक जितने मनुष्य है वे सब' यह पुण्य है' और 'यह पाप है। (यह ऋषियों के वचनों से ही जान लेते हैं ओर विश्वास करते हैं) अतः उनके लिए शास्त्र का प्रयोजन अल्प ही है।

विशेष:- पुण्यमिदं =यह पुण्य, पापम् =पाप है, आचण्डालं = चाण्डाल तक ।

चैतन्यमिव यश्चायमविच्छेदेन वर्तते

आगमस्तमुपासीनो हेतुवादैर्न बाध्यते।।41।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे अनिच्छेद रूप से (स्वयं प्रकाश) चैतन्य वर्तमान है। वैसे यह वेदरूपी आगम भी अविच्छेद रूप से(स्वतः प्रामाण्यसे) युक्त है। ऐसे स्वतःप्रमाण आगमों पर विश्वास करने वाले लोग तर्कवाद से विचलित होकर आगमप्ने विश्वास नहीं खो बैठते।

विशेष:- चैतन्यमिव = चैतन्य वर्तमान है, अयमविच्छेदेन = अनिच्छेद रूप से , आगमः = आगम ।

हस्तस्पर्शादिवान्धेन विषमे पथि धावता।

अनुमानप्रधानेन विनिपातो न दुर्लभः।।42।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे विषम (दुर्गम) मार्ग में किसी आँख वाले की सहायता के बिना केवल हाथ से छूकर सर्वत्र समतल भूमिका अनुमानकर अन्धा व्यक्ति दौड़ता है और बिना गिरे नहीं बचता वैसे अनुमान और प्रत्यक्ष प्रमाणों से न जानने योग्य दृष्ट और अदृष्ट फल देने वाले कर्म में आगमरूपी सहायक के बिना अनुमान के आधार पर कार्य करने वाले व्यक्ति का पतन वुर्लम नहीं है ।।42।।

विशेष:- हस्तस्पर्शादिवान्धेन=हाथसे छुकर सर्वत्र समतल, पथि = मार्ग में ,धावता = दौड़ता है।

तस्मादकृतकं शास्त्रं स्मृतिं च सनिबन्धनाम्।

आश्रित्यारभ्यते शिष्टैः शब्दानामनुशासनम्।।43।।

हिन्दी व्याख्या:- इसीलिए अपौरुषेय शास्त्र और शिष्टाचार परम्परा से स्वीकृत स्मृतियोंको प्रमाण मानकर पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि आदि शिष्टमहर्षियोंने शब्दानुशासन (व्याकरण- शास्त्र) का निर्माण किया है ।।43।।

विशेष:- तस्मादकृतकं = इसीलिए अपौरुषेय, शास्त्रं = शास्त्र, सनिबन्धनाम् = निर्माण किया।

द्वावुपादानशब्देषु शब्दौ शब्दविदो विदुः।

एको निमित्तं शब्दानामपरोऽर्थे प्रयुज्यते।।44।।

हिन्दी व्याख्या:- जो उपादान (वाचक) शब्द वैय्याकरणों के द्वारा व्यङ्गय और व्यञ्जक के रूप में माना गया है जिसमें एक स्फोट रूपी शब्द वैखरी का निर्मित्त(कारण)है और दूसरा वैखरी रूप से अर्थबोध की इच्छा से उच्चारित होता है अथवा जो उपादान (वाचक) शब्द वैय्याकरणों के द्वारा व्यङ्गय और व्यञ्जक के रूप में माना गया है। जिसमें एक (वैखरी रूप) स्फोट का निमित्त है और दूसरा वह है जो श्रोताओं की बुद्धि में स्थित अक्रम स्फोट है और अर्थबोध के लिए उपस्थित होता है।

विशेष:- उपादानशब्देषु =उपादान (वाचक) शब्द, शब्दौ =व्यङ्गय और व्यञ्जक के, विदुः =माना गया ।

आत्मभेदस्तयोः केचिदस्तीतत्याहुः पुराणगाः।

बुद्धिभेदादभिन्नस्य भेदमेके प्रचचक्षते ।।45।।

हिन्दी व्याख्या:- उनमें एक कार्यकारण में भेद मानने वाले प्राचीन लोग हैं। जो स्फोट और वैखरी में स्वभाव भेद हाने से भेद मानते हैं। और दूसरे कार्य और कारण में अभेद मानने वाले हैं। वे कहीं स्फोट के बुद्धि-भेद होने के कारण भेद मानते हैं।

विशेष:- आत्मभेदस्तयोः =उनमें एक कार्यकारण में भेद, पुराणगाः = प्राचीन लोग, बुद्धिभेदादभिन्नस्य = बुद्धि-भेद होने के कारण भेद।

अरणिस्थं यथा ज्योतिः प्रकाशान्तकारणम्।

तद्वच्छब्दोऽपि बुद्धिस्थःश्रुतिनां कारणं पृथक् ।।46।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे अरणि (काष्ठ) में रहने वाली ज्योति (अग्नि) जब मंथन के बाद प्रकट होती है। तब दाहक अग्नि का कारण हो जाती है। वैसे बुद्धि (अन्तःकरण) में स्थित शब्द (अक्रम स्फोट) भी अर्थबोध की इच्छा से क्रम से प्रकट होकर भिन्न भिन्न श्रुतियों (शब्दों) का कारण माना जाता है।

विशेष:- अरणिस्थं = अरणि (काष्ठ) में रहने वाली, ज्योतिः = ज्योति (अग्नि), प्रकाशान्तकारणम् = मंथन के बाद प्रकट होती।

वितर्कितः पुरा बुद्ध्या क्वचिदर्थे निवेशितः।

कारणेभ्यो विवृत्तेन ध्वनिना सोऽनुगृह्यते।।47।।

हिन्दी व्याख्या:- उच्चारण के पहले ही बुद्धि (अन्तःकरण की वृत्ति) से शब्द और अर्थ में अभेदाध्यास कर किसी एक अर्थ में विचारा गया और उसी अर्थ से तादात्म्य प्राप्त शब्द (स्फोट) फिर बोध कराने की इच्छा से स्थान और प्रयत्नों के द्वारा भासित होकर स्वयं अविकारी भी कत्व, गत्वरूप विकृत धर्मों में भासता है और घटध्वनि से अभिव्यक्त स्फोट से भिन्न है अतः घटध्वनि पट का बोध नहीं कराता ।।47।।

विशेष:- वितर्कितः = विचारा गया, पुरा = पहले ही, बुद्ध्या = बुद्धि, क्वचिदर्थे = किसी एक अर्थ में।

नादस्य क्रमजन्मत्वात् न पूर्वो नापरश्च स।

अक्रमः क्रमरूपेण भेदवानिव जायते ।।48।।

हिन्दी व्याख्या:- (यद्यपि बुद्धिस्थ नाद व्यंग्य स्फोट रूपी शब्द) न पूर्व है और न तो अपर है किन्तु पूर्वा परिभाव रहित है (अतः) अक्रम है। तथापि स्फोट को व्यक्त करने वाले नाद की उत्पत्ति क्रम से होती है इसीलिए स्फोट भी सक्रम की तरह भासित होता है ।।48।।

यद्यपि दूसरे का धर्म दूसरी वस्तु में नहीं प्रतीत होना चाहिए यह कहा जा सकता है। तथापि ठीक नहीं। क्योंकि एक दूसरे के भी धर्म दूसरे में प्रतीत होते हैं।

विशेष:- नादस्य = नाद की, क्रमजन्मत्वात् = उत्पत्ति क्रम से होती है , नापरश्च = न तो अपर है

प्रतिबिम्बं यथान्यत्र स्थितं तोय क्रियावशात्।

तत्प्रवृत्तिमिवान्वेति स धर्मः स्फोटनादयोः ।।49।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे जल में झलकता हुआ चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब स्वयं नहीं हिलता किन्तु जल के हिलने से हिलता हुआ प्रतीत होता है। वैसे नाद के धर्म(सादृश्य और नाद में रहने वाले क्रम जैसे ह्रस्वत्व, दीर्घत्व, कत्व, गत्व, आदि) स्फोट के धर्म न होने पर भी स्फोट के धर्म की तरह प्रतीत होने लगते हैं।

विशेष:- प्रतिबिम्बं = प्रतिबिम्ब, तोयम् = जल, स्फोटनादयोः = स्फोट नाद धर्म की तरह।

आत्मरूपं यथा ज्ञानं ज्ञेयरूपं च दृश्यते।

अर्थरूपं तथा शब्दे स्वरूपं च प्रकाशते।।50।।

हिन्दी व्याख्या:- क्योंकि जैसे कोई भी ज्ञान निर्विषयक नहीं होता किन्तु ज्ञेय के अधीन ही रहता है वैसे शब्द भी अर्थ समझाने के लिए ही प्रयुक्त होता है और अर्थ के अधीन रहता है लोक और शास्त्र में कुछ विशेषता रहती है जैसे लोक में 'भुनक्ति' इस पद में भोजन क्रिया शब्द की नहीं हो सकती।

अतः अर्थ में उसका विशेषण तथा अन्वय होता है और व्याकरण में अर्थ (घट) से परे प्रत्यय हो नहीं सकता अतः घट शब्द के आगे ही प्रत्यय होने की व्यवस्था भी है।।50।।

विशेष:- आत्मरूपं = कोई भी ज्ञान, ज्ञेयरूपं = ज्ञेय के अधीन, दृश्यते = दिखायी देता है।

2.4 सारांश

वाक्यपदीय के तीन काण्ड में से प्रथम काण्ड अथवा ब्रह्माण्ड आगमसमुच्चय काण्ड है। इस काण्ड में आचार्य भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के दार्शनिक आधार का चित्रण किया है। कारिका 1-4 (ब्रह्म का स्वरूप) ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण, एक ब्रह्म की शक्तिगत भेद से विभिन्नता, ब्रह्म की कालशक्ति, एक ही ब्रह्म भोक्ता, भोक्तव्य और भोगरूप में स्थित है। कारिका 1-10 (वेद ब्रह्म-प्राप्ति का उपाय और ब्रह्म की प्रतिमा) ब्रह्म प्राप्ति का उपाय वेद, वेद की अनेक शाखायें, वेद की महिमा, वेदों से स्मृति प्रकल्पन, वेदों से स्मृति प्रकल्पन, वेदों से दर्शन शास्त्र और उनमें परस्पर भेद, सत्य विद्या क्या है, वेद से ही विभिन्न विद्याओं का उद्गम। कारिका 11-22 (वेद के प्रधान अंग व्याकरण का प्रयोजन) वेद का प्रधान अंग व्याकरण, व्याकरण प्रधान के रक्षा-ऊह-आगम-लघु-असंदेह पाँच प्रयोजन व्याकरण का मोक्ष द्वार होना, शक्तिग्राहक व्याकरण, मोक्ष का प्रथम द्वार व्याकरण, व्याकरणज्ञान से आत्मज्ञान, वैकृतध्वनिरूप अन्धकार में शुद्ध ब्रह्म का व्यावृत स्वरूप, स्फोटरूप ब्रह्म में अक्षरों की प्रतीति, वेदों में विभिन्नरूप से ज्ञात ब्रह्म की व्याकरण द्वारा प्राप्ति। कारिका 23-29 शब्द की नित्यता ही व्याकरण निर्माण में हेतु, शब्द-अर्थ और सम्बन्ध की नित्यता, साधु शब्दों का ज्ञान करना लक्ष्य, साधु शब्दों में धर्मजनकता,

नित्यशब्दवादियों के मत से कूटस्थनित्यता और अनित्य शब्दवादियों के मत में प्रवाहनित्यता कथन, नित्य व्यवस्था निरर्थक नहीं। कारिका 30-34 अनुमान से अतिरिक्त आगम की प्रमाण सिद्धि। कारिका 35-36 अनुमान से अतिरिक्त अभ्यास और अदृष्ट। कारिका 37- 43 वेदमूलक आर्ष आगम की श्रेष्ठता कारिका 44-50 । शब्द के दो भेदों का वर्णन किया गया है।

2.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
आत्मरूपं	अपने स्वरूप को
यथा	इस प्रकार
ज्ञानं	ज्ञान को
च	और
दृश्यते	देखा जाता है
अर्थरूपं	अर्थ रूप को
शब्दे	शब्द में
स्वरूपं	स्वरूप को
प्रकाशते	प्रकाशित होता है

2.6 वहुविकल्पीय प्रश्न-उत्तर

1- प्रथम काण्ड का मुख्यतः कहा जाता है

1. आगम 2. वेद

3. निगम 4. पुराण

उत्तर- (1)

2- प्रथमकाण्ड में शब्द को किस रूप में स्वीकार किया गया है

1. ब्रह्म के रूप में 2. वेद के रूप में

3. आगम के रूप में 4. पुराणके रूप में

उत्तर-(1)

3-ब्रह्म का स्वरूप और प्राप्ति का मुख्य उपाय 'क्या है,

1. आगम 2. वेद

3. निगम 4. पुराण

उत्तर-(2)

4- प्रथमकाण्ड में शब्द को शब्द को किस रूप में स्वीकार किया गया है

1. ब्रह्म के रूप में 2. वेद के रूप में

3. आगम के रूप में 4. पुराणके रूप में

उत्तर- (1)

5- शब्द ब्रह्म का साक्षात्कार से होता है।

1. मोक्ष की प्राप्ति 2. वेद की प्राप्ति

3. आगम की प्राप्ति 4. पुराण की प्राप्ति

उत्तर-(1)

6- वेद का प्रधान अंग

1. आगम 2. व्याकरण

3. निगम 4. पुराण

उत्तर-(2)

7- शब्द, अर्थ और उनका सम्बन्धी है,

1. दोंनो नही 2. अनित्य

3. दोंनो 4. नित्य

उत्तर- (4)

8-शब्द कितने प्रकार के होते है

1. एक 2. तीन

3. दो 4. सात

उत्तर-(2)

9- साधु शब्दों के परिज्ञान के लिए पढना चाहिये

1. आगम 2. व्याकरण

3. निगम 4. पुराण

उत्तर- (2)

10-व्याकरणागम की रचना किसके आधार पर की गई।

1. आगम के आधार पर 2. वेद के आधार पर

3. निगम के आधार पर 4. पुराण के आधार पर

उत्तर-(2)

2.7- अभ्यासार्थ प्रश्न - उत्तर

प्रश्न1- वाक्यपदीयकाण के मत में प्रमाणहोता है

उत्तर- पाँच (प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, अभ्यास और अदृष्ट)

प्रश्न 2- वाक्यपदीयकार के मत में प्रत्यक्ष कितने प्रकार का है

उत्तर- दो एक लौकिक और दूसरा अलौकिक

प्रश्न 3 - किसके आधार पर स्वीकार किया जाता है कि वाक्य पदीयकार अनुमान प्रमाण स्वीकार करते हैं।

उत्तर- न्याय

प्रश्न 4 - शब्द को प्रमाण स्वीकार किया है।

उत्तर- भर्तृहरि

प्रश्न 5- वाक्यपदीयकार ने अपनी किस कारिका के आधार पर अभ्यास नाम के प्रमाण की चर्चा की है

उत्तर- 3वीं कारिकार में

प्रश्न 6 - वाक्यपदीय की किस कारिका के आधार पर अदृष्ट प्रमाण की भी चर्चा की गई है

उत्तर- 36 वी.

प्रश्न 7 - वैयाकरणों ने शब्द के कितने रूप स्वीकार किये हैं।

उत्तर- दो एक निमित्त और दूसरा अर्थबोधक।

प्रश्न 8- स्फोट और वैखरी रूप से कितने प्रकार के शब्दों में कार्यकारणभाव माना गया है।

उत्तर- दो

प्रश्न 9- स्फोट वह शब्द किसे कहते है

उत्तर- जहाँ पर अर्थ का बोध है

प्रश्न 10 -वक्ता के तात्पर्य से स्फोट वैखरी है

उत्तर- निमित्त

2.8 सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. पुस्तक का नाम-वाक्यपदीयम्, लेखक का नाम- भर्तृहरि, सम्पादक का नाम-वासुदेव आचार्य, प्रकाशक का नाम- कृष्णदास आकादमी वाराणसी।

2.पुस्तक का नाम- वैयाकरण- सिद्धान्तकौमुदी, लेखक का नाम- भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम- गोपालदत्त पाण्डेय, प्रकाशक का नाम- चैखम्भा सुरभारती प्रकाषन वाराणसी।

3. पुस्तक का नाम- व्याकरण महाभाष्य, लेखक का नाम- पतंजलि, प्रकाशक का नाम- चैखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

2.9 उपयोगी पुस्तक

पुस्तक का नाम-वाक्यपदीयम्, लेखक का नाम- भर्तृहरि, सम्पादक का नाम-वासुदेव आचार्य ।

प्रकाशक का नाम- कृष्णदास आकादमी वाराणसी।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।1।। इस कारिका की हिन्दी में व्याख्या कीजिये

खण्ड – द्वितीय, इकाई – 03
वाक्यपदीयम् - कारिका 51 से समाप्ति पर्यन्त तक

इकाई की रूप रेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 कारिका 51 से समाप्ति पर्यन्त तक हिन्दी में व्याख्या
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 वहुविकल्पीय प्रश्न- उत्तर
3.7 अभ्यासार्थ प्रश्न-उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूत्री
3.9 उपयोगी पुस्तकें
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना:-

व्याकरण दर्शनशास्त्र से सम्बन्धित खण्ड द्वितीय की यह तीसरी इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि व्याकरण दर्शनशास्त्र में जगत् शब्द का अर्थ विवर्त है वाक्यपदीयकार ने जगत् को शब्द का विवर्त और परिणाम दोनों माना है यह 'शब्दस्य परिणामोऽयम्' 'एतद्विश्वं व्यवर्तत' इस कारिका से सिद्ध होता है। कुछ ऐसे वचन मिले हैं जिनसे परिणाम और विवर्त शब्द में पर्यायता प्रतीत होती है। विकार और परिणाम पर्याय शब्द हैं। बुद्बुद पानी का विवर्त है विकार नहीं फिर भी दोनों शब्दों के व्याकरण में सांकर्य कहा है। स्फोट सिद्धि के प्रारम्भ में गोपालिका टीकाकार ने शब्द को जगत् का विवर्त और विकार दोनों माना है। उनका कहना है कि स्फोट का विवर्त जगत् है किन्तु ध्वनि अथवा वैखरी का परिणाम है। यह उचित भी प्रतीत होता है। जब 'वागेव विश्वाभुवनानि जज्ञे' सुभूरिति व्याहरत् भुवमसृजत्' श्रुतियाँ भुव्याहार को जगत सृष्टि में कारण मानती हैं तब वैखरी का परिणाम जगत् मान लेने में कोई हानि नहीं प्रतीत होती तथा व्याकरण दर्शनशास्त्र में वाचक क्या है वस्तुतः जो किसी शब्द को प्रयोग करने के स्थान पर दूसरे शब्द का प्रयोग करने से उस अर्थ का बोधक नहीं होता है किन्तु साधु शब्द और असाधु शब्द का शिष्टों ने अबाध प्रयोग किया है अतः दोनों वाचक हैं। इन दोनों मतों में भेद यह है कि साधु शब्द के प्रयोग से धर्म होता है और असाधु शब्दों के प्रयोग से धर्म नहीं होता है। इसलिए साधु शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिये। साधुत्व के बारे में कुछ मतभेद है। कुछ लोग साक्षात् बोधक को साधु और परम्परया बोधक को असाधु मानते हैं। वैयाकरण लोग पुण्यजनकत्व को साधुत्व और पुण्य अजनकत्व को असाधुत्व मानते हैं। इस प्रकार वैयाकरणों के सिद्धान्त के रूप में शब्द के दो रूप व्यक्त किए गए। एक तो जगत् का कारण ध्वनि व्यङ्ग्य स्फोट रूप ब्रह्म और दूसरा कार्य रूप में परिणत शब्द इसलिये इस काण्ड का नाम ब्रह्मकाण्ड है। इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है।

3.2 उद्देश्य:-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- ❖ आचार्य भर्तृहरि रचित व्याकरण दर्शनशास्त्र वाक्यपदीय की अनेक महत्वपूर्ण बातों का जान सकेंगे।
- ❖ विवर्त के विषय में परिचित होंगे
- ❖ शब्द से सृष्टि प्रक्रिया इसके विषय में परिचित होंगे
- ❖ ध्वनि के विषय में परिचित होंगे
- ❖ बैखरि के विषय में परिचित होंगे

- ❖ पश्यन्ति के विषय में परिचित होंगे
- ❖ शक्तितत्व के विषय में परिचित होंगे
- ❖ व्यङ्ग्य व्यञ्जक का अर्थ क्या है इसके विषय में परिचित होंगे
- ❖ वाचक शब्द के विषय में परिचित होंगे
- ❖ ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत विषय में परिचित होंगे
- ❖ शक्ति के विषय में परिचित होंगे
- ❖ परिणाम के विषय में परिचित होंगे
- ❖ साधु शब्दों के विषय में परिचित होंगे

3.3 कारिका 51 से समाप्ति पर्यन्त तक हिन्दी में व्याख्या

आण्डभावमिवापन्नो यः क्रतुः शब्दसंज्ञकः।

वृत्तिस्तस्य क्रियारूपा भागशो भजते क्रमम्।।51।।

हिन्दी व्याख्या:- जो लोगों के कान तक क्रम से सुनाई पडता है वह शब्द नाम का क्रतु (ज्ञान) मयूर पक्षी के अण्डे में स्थित कलल (रस) की तरह है। उसकी क्रियारूप (प्रकट और तिरोहित होने वाली) वृत्ति अवयवों में क्रम से प्रकट होती हैं।

विशेष:- आण्डभावमिवापन्नो = अण्डे में स्थित कलल (रस) की तरह , क्रतुः= ज्ञान, शब्दसंज्ञकः = सुनाई पड़ता ।

यथैकबुद्धिविषया मूर्तिराक्रियते पटे।

मूत्र्यन्तरस्य त्रितयमेवं शब्देऽपि द्य्श्यते।।52।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे चित्रकार पुरूष की मूत्तिं बनाने के पहले क्रम से उस व्यक्ति के प्रत्येक अवयवों को देखता है और बुद्धि में उसको एक व्यक्ति के रूप में स्थिर कर लेता है किन्तु जब चित्र फलक पर चित्र का निर्माण करने लगता है तब फिर अवयवों के क्रम से ही मूर्ति का निर्माण करता है। वैसे यह तीन क्रम शब्द के विषय में भी देखा गया है। अर्थात् शब्द भी पहले सक्रम सुनाई पडता है फिर अक्रम रूप में बुद्धि में स्थिर होता है और बोलने की इच्छा पर सक्रम नाद के रूप में वैखरी वाग् प्रकट होती है। यही स्फोट और नाद में भेद है ।।52।।

विशेष:- यथैकबुद्धिविषया = बुद्धि में उसको एक व्यक्ति के रूप में स्थिर कर, मूर्तिराक्रियते = मूर्ति का निर्माण करता, त्रितयमेवं = यह तीन क्रम।

यथा प्रयोक्तुः प्राग् बुद्धिः शब्देश्वेव प्रवर्तते।

व्यवसायो गृहोतृणामेवं तेष्वेव जायते।।53।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे किसी शब्द के उच्चारण करने में उच्चारणकर्ता की बुद्धि पहले शब्दों पर ही जाती है वैसे उन शब्दों को सुनने वाले लोग भी पहले शब्द ही सुनते हैं।

इससे यह बात सिद्ध होती है कि जैसे किसी शब्द का प्रयोग करने वाला व्यक्ति जब किसी अर्थ का बोध कराना चाहता है तब शब्दों को स्पर्श करता हुआ सा मन को सचेत करता है। वैसे श्रोता भी अर्थ समझने के लिए शब्दों के सुनने का प्रयत्न करता हुआ मन को स्थिर करता।

विशेष:- प्रयोक्तुः = उच्चारणकर्ता, प्राग् बुद्धिः = बुद्धि पहले, शब्देश्वेव = उन शब्दों को।

अर्थोपर्सजनीभूतानभिधेयेषु केषुचित्।

चरितार्थान् परार्थत्वान्न लोकः प्रतिपद्यते।।54।।

हिन्दी व्याख्या:- शब्द से अर्थज्ञानरूप परार्थ सिद्ध होता है। और किसी वस्तु का प्रतिपादन करके कृतकृत्य हो जाता है। इसलिए अर्थ के विशेषण बने हुए शब्दों को लोग क्रिया का अङ्ग नहीं मानते।

विशेष:- अर्थोपर्सजनीभूतान् = शब्द से अर्थज्ञानरूप परार्थ, अभिधेयेषु = सिद्ध होता , चरितार्थान् = अर्थ के विशेषण।

ग्राह्यत्वं ग्राहकत्वं च द्वे शक्ती तेजसो यथा।

तथैव सर्वशब्दानामेते पृथगिव स्थिते।।55।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे दीपक अपने रूप को प्रकाशित करते हुए अन्य वस्तुओं का भी प्रकाशक होता है। क्योंकि उसमें ग्राह्यत्व और ग्राहकत्त्व दो शक्तियाँ हैं वैसे शब्दों में भी ग्राह्यत्व और ग्राहकत्त्व दो शक्तियाँ हैं जो अलग-अलग मालूम पड़ती हैं।

विशेष:- ग्राह्यत्वं = प्रकाशित, ग्राहकत्वं = प्रकाशक, द्वे शक्ती = दो शक्तियाँ ।

विषयत्वमनापन्नैः शब्दैनार्थः प्रकाश्यते।

न सत्तयैव तेऽर्थानामगृहिताः प्रकाशकाः।।56।।

हिन्दी व्याख्या:- जो शब्द कानों तक सुनाई नहीं पड़ रहे हैं उनसे अर्थ ज्ञान नहीं हो सकता अतः जो शब्द कानों से नहीं सुने गए हैं वे शब्द अर्थबोधक नहीं हो सकते ।।56।।

विशेष:- विषयत्वमनापन्नैः = शब्द कानों तक, शब्दैनार्थः = अर्थ ज्ञान नहीं , प्रकाश्यते = सुनाई नहीं पड़ रहे।

अतोऽनिज्ञातरूपत्वात्किमाहेत्यभिधीयते ।

नेन्द्रियाणां प्रकाश्येऽर्थे स्वरूपं गृह्यते तथा।।57।।

हिन्दी व्याख्या:- अतएव जो शब्द ठीक रूप से नहीं सुने जाते उनके विषय में लोग पूछते हैं किं 'क्या कह'। ।यह नियम इन्द्रियों के बारे में नहीं हैं। क्योंकि इन्द्रियाँ अपने स्वभाववश प्रकाश्य अर्थ के विषय में अपनी सत्तामात्र से अर्थं का ज्ञान कर देती है ।।57।।

विशेष:- नेन्द्रियाणां = इन्द्रियों के बारे में नहीं , प्रकाश्येऽर्थे = प्रकाश्य अर्थ के, स्वरूपं = अपनी सत्तामात्र, गृह्यते = ज्ञान करा देती है।

भेदेनावगृहीतौ द्वौ शब्दधर्मावपोद्धृतौ।

भेदकार्येषु हेतुत्वमविरोधेन गच्छतः।।58।।

हिन्दी व्याख्या:- जब शब्द में ग्राह्यत्व और ग्राहकत्व रूप धर्मो की कल्पना कर ही ली गई और भेद के रूप में ज्ञात इन शब्दों से जहाँ भिन्न-भिन्न कार्य करता है वहाँ भी एक ही शब्द में (राहोः शिरः) की भाँति औपाधिक भेद मानने पर बिना विरोध के अनेक धर्म भी कारण बन सकते हैं ।।58।।

विशेष:- भेदेनावगृहीतौ = भेद के रूप में ज्ञात, शब्दधर्मौ = शब्द रूप धर्मों की, उपोद्धृतौ = कल्पना कर ही ली गई।

वृद्ध्यादयो यथा शब्दाः स्वरूपोपपिबन्धनाः।

आदैच्प्रत्यायितैः शब्दैः सम्बन्धं यान्ति संज्ञिभिः।।59।।

अग्निशब्दस्तथैवायमग्निशब्दनिबन्धनः।

अग्निश्रुत्यैति सम्बन्धमग्निशब्दाभिधेयया ।।60।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे 'वृद्धिरादैच्' इत्यादि सूत्रों में 'वृद्धि' आदि शब्द संज्ञा के बोधक हैं और 'आदैच शब्द से बोधित आकार, ऐकार, और औकार आदि संज्ञी शब्द से 'वृद्धि पदभिन्ना आदैचः' इस प्रकार का सम्बन्ध (तादात्मय) भी बनाते हैं। वैसे अग्नि शब्द के स्वरूप का बोधक 'अग्रेर्ढक्' सूत्र का अग्रि शब्द भी अपने स्वरूप का और अग्रि शब्द से बोध्य लक्ष्यस्थ अग्रि शब्द से तादात्मय सम्बन्ध बना लेता है।

विशेष:- वृद्ध्यादयः = 'वृद्धि' आदि शब्द, स्वरूपः = स्वरूप का , अपिबन्धनाः = सम्बन्ध भी बना लेता है।

यो य उच्चार्यते शब्दो नियतं न स कार्यभाक्।

अन्यप्रत्यायने शक्तिर्न तस्य प्रतिबध्यते।।61।।

हिन्दी व्याख्या:- जो शब्द 'अग्नेर्ढक्' या 'जराया जरास्' आदि उच्चारित होते हैं। वे सूत्रस्थ शब्द संज्ञा होने के कारण केवल संज्ञी का निर्देश कर शान्त हो जाते हैं। उनमें कार्य तो नहीं हो सकता किन्तु इनकी लक्ष्यस्थ शब्द को बतलाने वाली शक्ति का (प्रत्यायकत्व का) बाध नहीं होता।।

विशेष:- उच्चार्यते= उच्चारित होते हैं, कार्यभाक् = कार्य तो नहीं हो सकता, अन्यप्रत्यायने = लक्ष्यस्थ शब्द को बतलाने वाली।

उच्चरन परतन्त्रत्वाद् गुणः कार्यैर्न युज्यते।

तस्मात्तदर्थैः कार्याणां सम्बन्धः परिकल्प्यते।।62।।

हिन्दी व्याख्या:- उच्चरित शब्द केवल अर्थज्ञान के लिए उच्चारित है और अर्थ में विशेषण होने के कारण गौण है। अतः कार्य-योग नहीं होना क्योंकि'एकत्र विशेषण रूप से अन्वित होकर अन्यत्र पुनः विशेषण नहीं बन सकता'इसलिए सूत्रस्थ शब्द के कार्यान्वित न हो सकने पर ही लक्ष्यस्थ अग्रि आग्रि आदि शब्दों में ढक् आदि प्रत्ययों के सम्बन्ध की कल्पना की गई है ।।62।।

विशेष:- उच्चरन = उच्चारित, परतन्त्रत्वाद् = अन्यत्र पुनः विशेषण , तस्मात्तदर्थैः = अर्थज्ञान के लिए।

सामान्यमाश्रितं यद्यदुपमानोपमेययोः ।

तस्य तस्योपमानेषु धर्मोऽन्यो व्यतिरिच्यते।।63।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे 'ब्राह्मणवदधीते क्षत्रियः' यहाँ ब्राह्मण तथा क्षत्रिय, और ब्राह्मणाध्ययनेन तुल्यं क्षत्रियाध्ययनम्' यहाँ ब्राह्मणाध्ययन रूप उपमान और उपमेय में जो जो साधारण धर्म (जैसे प्रथम वाक्य में अध्ययन और द्वितीय वाक्य में अध्ययनगत सौन्दर्य) उपमेय क्षत्रिय या क्षत्रियाध्ययन में श्रुत हैं वह उन-उन क्षत्रियाध्ययन या क्षत्रियाध्ययनगतसौष्ठव से भिन्न उपमान ब्राह्मण में अध्ययन रूप और ब्राह्मणाध्ययन में सौष्ठवरूप धर्म अधिक ही है ।।63।।

विशेष:- सामान्यमाश्रितं =साधारण धर्म, उपमानोपमेययोः = उपमान और उपमेय में , धर्मोऽन्यः = अन्य धर्म।

गुणः प्रकर्षहेतुर्यः स्वातन्त्र्येणोपदिश्यते।

तस्याश्रिताद् गुणादेव प्रकृष्टत्वं प्रतीयते।।64।।

हिन्दी व्याख्या:- और, जैसे 'शुक्लतरः पटः'कहने पर वस्त्र की कोई विशेषता नहीं प्रतीत होती किन्तु गुण की ही विशेषता प्रतीत होती है और जो गुण द्रव्य के उत्कर्ष के कारण हैं वे ही स्वतंत्र रूप से'इस वस्त्र का बक उजला रूप है' इस तरह प्रधान रूप से कहे जाते हैं इसी से शुकु पट में आश्रित गुण की ही उत्तमता कही गई है ।।64।।

विशेष:- प्रकर्षहेतुर्यः =उत्कर्ष के कारण, तस्याश्रिताद् = उसके आश्रित, गुणादेव= गुण की ही ।

तस्याभिधेयभावेन यः शब्दः समवस्थितः।

तस्याप्युच्चारणे रूपमन्यत्तस्माद्विविच्यते।।65।।

हिन्दी व्याख्या:- वैसे उच्चारित 'अग्नेर्ढक्' सूत्र के अग्निशब्द के वाच्य रूप में स्थित जो 'आग्नेयः' इत्यादि लक्ष्यस्थ अग्निशब्द स्वीकृत है। उसके भी उच्चारण में सूत्रस्थ अग्नि शब्द से भिन्न कोई दूसरा ही रूप है।

विशेष:- समवस्थितः =स्थित जो , तस्याप्युच्चारणे =उसके भी उच्चारण में , रूपमन्यत् = कोई दूसरा ही रूप।

प्राक् संज्ञिनाभिसम्बन्धात् संज्ञा रूपपदार्थिका।

षष्टयाश्च प्रथमायाश्च निमित्तत्वाय कल्पते।।66।।

हिन्दी व्याख्या:- वृद्धि' आदि संज्ञावाचक शब्द 'आदैच' आदि संज्ञी शब्दों के सम्बन्ध से पूर्व केवल शब्द स्वरूप परक हैं (अन्यथा निरर्थक होते और प्रतिपादिक संज्ञा ही न होती) बाद में जब शक्ति-ग्रह (सम्बन्ध) हो जाता है तब आदैच् के साथ अभेद विवक्षा में प्रथमा और भेद विविक्षा में षष्टी का निमित्त बनता है ।।66।।

विशेष:- प्राक् = पूर्व, संज्ञिना = संज्ञी शब्दो के, सम्बन्धात् = सम्बन्ध से ।

तत्रार्थवत्त्वात्प्रथमा संज्ञाशब्दाद्विधीयते।

अस्येतिव्यतिरेकश्च तदर्थादेव जायते।।67।।

हिन्दी व्याख्या:- यहाँ भी जब संज्ञा शब्द और संज्ञी में तादात्म्यसम्बन्ध आरोप करते हैं तब अर्थवान् होता है तथा उस संज्ञा शब्द से प्रथमा आती है और जब तादात्मयारोप नहीं करना

चाहते (जैसे अस्य वाचकः देवदत्तः) तब अस्य यह शब्द ही भेद बताता है और भेद विवक्षा में षष्ठी आती है ।।67।

विशेषः- तत्र = तब, अर्थवत्त्वात्= अर्थवान् होता, संज्ञाशब्दाद्विधीयते = संज्ञा शब्द आरोप करते हैं ।

स्वंरूपमिती कैश्चित्तु व्यक्तिः संज्ञोपदिश्यते।

व्यक्तेः कार्याणि संसृष्टा जातिस्तु प्रतिपद्यते।।68।।

हिन्दी व्याख्याः- कोई लोग 'स्वंरूपं' इस सूत्र में (अग्निशब्दरूपा) व्यक्ति संज्ञा (और जाति संज्ञी) मानते हैं और व्यक्ति सम्बन्धी पौर्वापर्यादि कार्य उस (व्यक्ति) में सदा संसृष्ट रहने वाली जाति में व्यक्ति के द्वारा माना जाता है। अत एव 'अग्रेर्ढक' सूत्र के अग्निशब्द से अग्निशब्दत्व जाती की प्रतीति होने पर भी पौर्वापर्व बनता है।।68।।

विशेषः- स्वंरूपमिती =स्वरूपं, कैश्चित्तु = कोई लोग, संज्ञोपदिश्यते = संज्ञा मानते हैं ।

संज्ञिनीं व्यक्तिमिच्छन्ति सूत्रग्राह्यमथापरे

जातिप्रत्यायिता व्यक्तिः प्रदेशेषुपतिष्ठते।।69।।

हिन्दी व्याख्याः- ये लोग सूत्र से गृहीत (बोध्य) होने वाली अग्निशब्दरूप व्यक्ति को (संज्ञिनी और जाति को संज्ञा) मानते हैं और जाति से उपस्थित व्यक्ति ही 'अग्रेर्ढक्' आदि सूत्रों से उपस्थित होती है ।।69।।

विशेषः- संज्ञिनीं = अग्निशब्दरूप, व्यक्तिमिच्छन्ति = यक्ति को मानते हैं, सूत्रग्राह्यम् = सूत्र से गृहीत ।

कार्यत्वे नित्यतायां वा केचिदेकत्ववादिनः।

कार्यत्वे नित्यतायां वा केचिन्नानात्ववादिनः।।70।।

हिन्दी व्याख्याः- कुछ लोग शब्दों के कार्यत्वपक्ष और नित्यत्वपक्ष में शब्द को एक मानते हैं दूसरे लोग कार्यत्व -क्ष या। नित्यत्व पक्ष में शब्दों में भेद मानते हैं।

विशेषः- कार्यत्वे = कार्यत्वपक्ष, नित्यतायां = नित्यत्वपक्ष, केचिदेकत्ववादिनः = कुछ लोग शब्द को एक मानते हैं ।

पदभेदेऽपि वर्णानामेकत्वं न निवर्तते।

वाक्येषु पदमेकं च भिन्नेष्वप्युपलभ्यते।।71।।

हिन्दी व्याख्या:- पदों (अर्थः, अर्कः, और अश्वः) के आकार के भेद होने पर भी 'स एवायमकारः' इस प्रतीति के कारण अकार वर्ण वहीं है (एक ही है) उनकी एकता निवृत्त नहीं हो सकती। इसी भाँति भिन्न-भिन्न देश और काल में उच्चारित वाक्यों में पदों के होने पर भी पद एक ही हैं क्योंकि 'तदेवेदं पदम्' यह अनुभव प्रमाण हैं। इसे भगवान भाष्याकार ने भी 'एकत्वादकारस्य सिद्धम्' वार्तिक से स्पष्ट किया है।।71।।

विशेष:- पदभेदेऽपि = पदों के भेद होने पर भी, वर्णानामेकत्वं = वर्ण एक ही है, वाक्येषु = वाक्यों में।

न वर्णव्यतिरेकेण पदमन्यच्च विद्यते।

वाक्यं वर्णपदाभ्यां च व्यतिरिक्तं न किञ्चन।।72।।

हिन्दी व्याख्या:- वर्णों से अलग पद भी कोई सत्ता ही नहीं है और वर्ण तथा पदों से अलग वाक्य भी कोई वस्तु नहीं है। अर्थात वर्ण ही पद और वाक्य है वर्ण भी एक ही है अतः पद और वाक्य भी एक ही सिद्ध हैं।

विशेष:- वर्णव्यतिरेकेण = वर्णों से अलग, पदमन्यच्च = पदों से अलग और, वाक्यं = वाक्य।

पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न च।

वाक्यात्पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन।।73।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे (ऋकार, औकार आदि) वर्णों में जो अवयव के सदृश रेफ और अ, उ आदि प्रतीत होते हैं वे अवयव नहीं हैं। वैसे पदों में जो वर्णों की प्रतीति होती है वह भी भ्रम है। क्योंकि वाक्यों से पृथक् पदों की कोई सत्ता ही नहीं है।

विशेष:- पदे = पदों में, न = नहीं, वाक्यात् = वाक्यों से।

भिन्नं दर्शनमाश्रित्य व्यवहारोऽनुगम्यते।

तत्र यन्मुख्यमेकेषां तत्रान्येषां विपर्ययः।।74।।

हिन्दी व्याख्या:- व्यवहार तो भिन्न-भिन्न दर्शनों के आधार पर ही चलता है। (जैसे 'हलोनन्तराः संयोगः' सूत्र में 'ग्रामशब्दोऽयं बह्वर्थः, तथा 'सरूप' सूत्र में 'एकः शब्दः बह्वर्थो' इत्यादि पक्तियाँ शब्द के एकत्व पक्ष में लिखी गई है और 'संयोग संज्ञा' सूत्र में ही 'तद् यः

सारण्य के ससीम के सस्थण्डिल के वर्तते ततस्येदं ग्रहणम्' यह भास्य पंक्ति नानात्व पक्ष में लिखी गई है।) इसमें जिनके मत में एक पक्ष मुख्य है उनके मत में दूसरा पक्ष गौण है।

विशेष:- भिन्नं = भिन्न, दर्शनमाश्रित्य = दर्शनों के आधार पर, व्यवहारोऽनुगम्यते = व्यवहार चलता है।

स्फोटस्याभिन्नकालस्य ध्वनि कालनुपातिनः।

ग्रहणोपादिभेदेन वृत्तिभेदं प्रचक्षते।।75।।

हिन्दी व्याख्या:- यद्यपि यह स्फोटरूपी शब्द कालकृत परिच्छेद से रहित है। अतः नित्य है। क्योंकि कालिक सम्बन्ध से नित्य कहीं नहीं करता तथापि स्फोट को व्यक्त करने वाली ध्वनि में कालिक सम्बन्ध होने से स्फोट के ग्रह्ण (बुद्धि या व्यञ्जक ध्वनि) रूपी उपाधियों के भेद से (द्रुत, मध्य, लम्बित या ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत) आदि वृत्तियों के भेद माने जाते हैं। तपर सूत्र का भाष्य देखने से पता चलता है कि जैसे एक नगाड़े में आघात करके बीस डग भरता है। कोई तीस। यह भेद ध्वनि के कारण होता है। क्योंकि स्फोट तो एक ही है। इसी प्रकार ध्वनि की द्रुदता से स्फोट की नित्यता में बाधा नहीं पडती ।।75।।

विशेष:- स्फोटस्य = स्फोट के, अभिन्नकालस्य =कालकृतपरिच्छेद से रहित, ध्वनि = ध्वनि में ।

स्वभावभेदान्नित्यत्वे हस्वदीर्घप्लुतादिषु।

प्राकृतस्य ध्वनेः कालः शब्दस्येत्युपर्चयते।।76।।

हिन्दी व्याख्या:- और, प्राकृट ध्वनि को स्फोट का एक विशेष रूप मान लेने से प्राकृतध्वनि का ही एक मात्रिक आदि काल ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत में स्थिर रहता है तो स्फोट के नित्य होने पर भी शब्द में आरोपित है वास्तविक नहीं ।।76।।

विशेष:- स्वभावभेद् = प्राकृत, नित्यत्वे = नित्य होने पर, हस्वदीर्घप्लुतादिषु = ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत ।

शब्दस्योध्र्वमभिव्यक्तेवृत्तिभेदे तु वैकृताः

ध्वनयः समुपोहन्ते स्फोटात्मा तैर्न भिद्यते।।77।।

हिन्दी व्याख्या:- स्फोटरूपी शब्द की अभिव्यक्ति के बाद उत्पन्न होने वाली वैक्रित-ध्वनियाँ द्रुतादि वृत्तिभेद (स्थितिभेद पाठ में स्फोट की उपलब्धि काल के भेद) में कारण होती हैं। उन

वैकृत ध्वनियों से स्फोट के रूप में भेद नहीं होता क्योंकि 'यह वही आकार है' यह ज्ञान होता रहता है।

विशेष:- शब्दस्य = शब्द की, उध्र्वमभिव्यक्ते =उत्पन्न होने वाली, वृत्तिभेदे = वृत्तिभेद में।

इन्द्रस्यैव संस्कारः शब्दस्यैवोभयस्य वा।

क्रियते ध्वनिर्भिवादास्त्रयोऽभिव्यक्तिवादिनाम्।।78।।

हिन्दी व्याख्या:- स्फोट भी अभिव्यक्ति के बारे में अभिव्यक्तिवादियों के तीन वाद माने गए हैं। जिसमें एक मत है कि 'ध्वनियों से इन्द्रिय (श्रोत्र (कान)) में ही संस्कार (शब्दग्रहणयोग्यता) उत्पन्न होती है।' दूसरे लोगों का मत है। कि 'ध्वनियों से शब्द में ही संस्कार होता है जिससे वह श्रोत्र का विषय बनता है।' तीसरा मत है कि 'ध्वनियों से मत और इन्द्रिय दोनों में संस्कार होता है'।।78।।

विशेष:- इन्द्रस्यैव = इन्द्रिय में ही, संस्कारः = संस्कार, शब्दस्यैवोभयस्य = दोनों शब्दों का।

इन्द्रियस्यैव संस्कारः समाधानाञ्जनादिभिः।।

विषयस्य तु संस्कारस्त¯गन्धप्रतिपत्तये।।79।।

हिन्दी व्याख्या:- जब पृथिवी गर्मी से तप जाती है और हम उसका गन्ध जानना चाहते हैं तब उस पर पानी गिरा कर उसके गन्ध का ग्रहण ठीक रूप से कर लेते हैं। वहाँ गन्ध ग्रहण के लिए विषय (पृथ्वी) में संस्कार करते हैं घ्राणेन्द्रियों में नहीं।।79।।

विशेष:- इन्द्रियस्यैव = इन्द्रियों में ही, संस्कारः = संस्कार, समाधानाञ्जनादिभिः = आँख में आँचल के द्वारा।

चक्षुषः प्राप्यकारित्वे तेजसा तु द्वयोरपि।

विषयेन्द्रिययोरिष्टः संस्कारः स क्रमो ध्वनेः।।80।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे चक्षुरिन्द्रिय विषय (घट) के समीप जाकर उसका ग्रहण करती है, किन्तु अन्धकार में पड़े हुए घट का प्रत्यक्ष तब होता है जब दीपक की सहायता मिलती है। इससे यह मानना पड़ता है कि दीपक विषम (घट) और इन्द्रिय दोनों में संस्कार करता है। अर्थात विषय से अन्धकार निवृत्त और नेत्र में ज्योति की वृद्धि रूप संस्कार करता है। वैसे ध्वनि भी शब्द और श्रौत्रेन्द्रिय दोनों में कोई अतीन्द्रिय संस्कार करती है।।80।।

विशेष:- चक्षुषः = नेत्र, प्राप्यकारित्वे = समीप जाकर, तेजसा = ज्योति की।

स्फोटरूपाविभागेन ध्वनेग्र्रहणमिष्यते।

कैश्चिदध्वनिरसंवेद्यः स्वतन्त्रोऽन्यैः प्रकल्पितः ।।81।।

हिन्दी व्याख्या:- दूसरे लोगों का मत है कि-ध्वनि असंवेद्य है(अर्थात् अज्ञेय है) और उसकी अनुमान द्वारा प्रतीति होती है और तीसरा मत है कि स्फोट से अमिश्रित (अर्थात पृथक्) ध्वनि का स्वतंत्र रूप से ग्रहण होता है।

विशेष:- स्फोटरूपाविभागेन = स्फोट रूप विभाग से, ध्वनेः = ध्वनि का, ग्रहणम् = ग्रहण होता।

यथाऽनुवाकः श्लोको वा सोढत्वमुपगच्छति।

आवृत्त्या न तु स ग्रन्थः प्रत्यावृत्ति निरूप्यते।।82।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे मन्त्रों का समूह या एक श्लोक बार बार पढ़ने के बाद(बिना किसी की सहायता के) पढ़ने योग्य हो जाता है किन्तु प्रत्येक आवृत्ति वह बुद्धि का विषय या पढ़ने योग्य नहीं बनता ।।82।

विशेष:- यथाऽनुवाकः = बार-बार पढ़ने के बाद, सोढत्वम् = पढ़ने योग्य, आवृत्त्या = आवृत्ति।

प्रत्ययैरनुपाख्येयैग्र्रहणानुगुणैस्तथा।

ध्वनिप्रकाशिते शब्दे स्वरूपमवधार्यते।।83।।

हिन्दी व्याख्या:- वैसे प्रत्येक ध्वनि स्पष्ट रूप से स्फोट की प्रकाशिका नहीं है किन्तु स्फोट के ग्रहण के लिए उन्मुख पूर्व-पूर्व ध्वनियों से जन्य बुद्धि के साथ अन्त्य ध्वनि से प्रकाशित शब्द में जब स्फोट का स्पष्ट स्वरूप प्रकाशित होता है तब स्फोट का रूप हम समझ लेते हैं।

विशेष:- ध्वनिप्रकाशिते = ध्वनि से प्रकाशित, शब्दे = शब्द में , स्वरूपमवधार्यते = स्वरूप समझ लेते

नादैराहितबीजायामन्त्येन ध्वनिना सह।

अवृत्तापरिपाकायं बुद्धौ शब्दोऽवधार्यते।।84।।

हिन्दी व्याख्या:- इसी प्रकार नाद से (पूर्व पूर्व ध्वनि) में एक प्रकार कि भावना उत्पन्न होती है फिर आवृत्ति से उसमें काम करने की शक्ति आती है इस प्रकार उदबुद्ध संस्कार वाली बुद्धि में अन्त्य ध्वनि के साथ शब्द का ज्ञान ठीक रूप से होता है तात्पर्य यह है कि किसी वाक्य के उच्चारण में जब तक अंतिमवर्ण नहीं उच्चारित होगा तब तक वाक्यार्थ बोध नहीं हो सकता किन्तु अन्तिम वर्ण तक पूर्व पूर्व ध्वनियों का अदर्शन हो जाता है। अतः शब्द का अवतारण

करने के लिए मानना पड़ता है कि नाद(पूर्वपूर्व ध्वनि) से एक भावना बीज उत्पन्न होता है उससे एक प्रकार का परिपाक (कार्यजनन शक्ति विशेष) उत्पन्न होता है इसी प्रकार द्वितीय और तृतीय ध्वनि से भी भावना बीज और परिपाक की उत्पत्ति होती है फिर संस्कार के उद्बुद्ध हो जाने पर अन्तः करण में अंतिम ध्वनि के अवधारण के साथ साथ शब्द का भी अवधारण हो जाता है इस प्रकार उत्तर उत्तर के वर्णों की अवधार वेला में भी पूर्वपूर्व वर्णों की स्मृति का अनुसन्धान बना रहता है इसलिए अन्तिम ध्वनि के उपलब्धि काल में पूर्व पूर्व ध्वनियाँ स्मृति में बनी रहती हैं जिससे यह अन्तिम वर्ण के विषय में प्रत्यक्ष और पूर्व पूर्व वर्णों के विषय में स्मृति रूप है। अतः प्रत्यक्ष और सरणात्मक होने से चित्ररूपा बुद्धि से गौः इस प्रकार का गकार, औकार और विसर्ग से विलक्षण शब्दान्तर का प्रत्यक्ष हो जाता है ।।84।।

विशेष:- नादैः = नाद से, बीजायाम् = बीज, ध्वनिना = ध्वनि से ।

असतश्चान्तराले याञ्छब्दान मन्यते।

प्रतिपत्तुरशक्तिः सा ग्रहणोपाय एव सः।।85।।

हिन्दी व्याख्या:- ध्वनि की उत्पत्ति और शब्द के स्पष्ट ग्रहण के बीच के काल में जो अवयव वर्ण, पद और वाक्य में नहीं है किन्तु वर्णावयव, वर्ण और पद के रूप में प्रतीत होते हैं। वह समझने वाले की अशक्ति है। जिससे यह निरसस्फोट का ग्रहण नहीं कर पाता वास्तव में ये वर्णावयव आदि शब्द में नहीं हैं। किन्तु यह बीच में जो शब्द भ्रम होता है वह स्फोट के ग्रहण में सहायक बनता है और स्फोट के ग्रहण का उपाय है। जैसे दूर के पेड़ को भ्रम से हाथी समझ लिया जाय फिर उसके ठीक रूप समझने के प्रयत्न करने पर यह पता चलता है कि यह पेड़ हैं। वैसे वर्णादिकों में जो विभाग की प्रतीति होती है वह असत्य है उसी असत्य से सत्य स्फोट की प्रतीति होती।

विशेष:- असतश्चान्तराले = और बीच में भ्रम होता, याञ्छब्दान = जो शब्द , मन्यते = समझते।

भेदानुकारः ज्ञानस्य वाचश्रोचोपपलवो ध्रुवः

क्रमोपसृष्टरूपा वाग् ज्ञानं ज्ञेयव्यपाश्रयम्।।86।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे ज्ञान एक है किन्तु व्यवहार में किसी ज्ञेय में नियत है। वैसे अक्रमस्फोट रूपी वाक् भी व्यञ्जक ध्वनिक्रम से प्रतीत होती है अतः ज्ञेयरूपता स्वीकार करने वाले ज्ञान का और घट पट आदि व्यञ्जक ध्वनि गत क्रम वाली वाणी का भेदानुकार (अर्थात् ज्ञान में विषयाभाष रूप् और स्फोट में वर्णपदावभासरूप) उपसर्ग की कल्पना भी नियत है।

विशेष:- क्रमोपसृष्टरूपा = अक्रमस्फोट रूपी, वाग् = वाणी, ज्ञानं = ज्ञान।

यथाद्यसंख्याग्रहणमुपायः प्रतिपत्तये।

संख्यान्तराणां भेदेऽपि तथा शब्दान्तरश्रुतिः।।87।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे सौ संख्या और एक संख्या परस्पर भिन्न है फिर एक संख्या का ज्ञान सौ संख्या के ज्ञान में सहायक है। वैसे वाक्य स्फोट और वर्ण तथा पद परस्पर भिन्न है फिर भी वाक्य के बीच की प्रतीति वाक्य स्फोट की प्रतीति में उपाय है।।87।।

विशेष:- संख्यान्तराणां = संख्या परस्पर , भेदेऽपि = भिन्न, शब्दान्तरश्रुतिः = दूसरे शब्द की प्रतीति।

प्रत्येकं व्यञ्जका भिन्ना वर्णवाक्यपदेषु ये।

तेषामत्यन्तभेदेऽपि संकीर्णा इव शक्तयः।।88।।

हिन्दी व्याख्या:- यद्यपि वर्ण, वाक्य और पदों कि व्यञ्जक ध्वनियाँ भिन्न-भिन्न कारणों से उत्पन्न होने के कारण सब परस्पर भिन्न है और उनका भेद सिद्ध है तथापि अत्यन्त सदृश होने के कारण वाक्य को व्यक्त करने में समर्थ ध्वनि में एक पद व्यञ्जक शक्तियाँ और पद को अभिव्यक्त करनेकी शक्ति वाली ध्वनि में वर्ण व्यञ्जक शक्तियाँ सङ्कीर्ण हैं भेद से ज्ञान नहीं करा सकती ।।88।।

विशेष:- प्रत्येकं = यद्यपि, यञ्जका = व्यञ्जक, वर्णवाक्यपदेषु = वर्ण, वाक्य और पदों कि।

यथैव दर्शनैः पूर्वैर्दूरात्संतमसेऽपि वा।

अन्यथाकृत्य विषयमन्यथैवाध्यवस्यति।।89।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे दूर से देखने पर वृक्ष हाथी की तरह मालूम पङता है, प्रकाश से अन्धकार में जाने पर रस्सी में सर्पभ्रम होता है अर्थात् प्रथम दर्शन में विषय वृक्ष और रस्सी दूसरे रूप में (हाथी या सर्प रूप में) गृहीत होता है।पुनः ध्यान से मन को एकाग्र कर जब देखते हैं तब अन्यथा (दूसरे रूप में) अर्थात् वृक्ष और रस्सी के रूप में देखते हैं

विशेष:- यथैव = जैसे, दर्शनैः = देखने पर, अन्यथाकृत्य = दूसरे रूप में गृहीत।

व्यज्यमाने तथा वाक्ये वाक्याभिव्यक्तिहेतुभिः।

भागावग्रहरूपेण पूर्वं बुद्धिः प्रवर्तते।।90।।

हिन्दी व्याख्या:- वैसे जब अखण्ड वाक्य की अभिव्यक्ति के प्रयत्नों से उत्पन्न ध्वनियों के द्वारा अखण्ड वाक्य व्यक्त करना है तब पहले वर्ण, पद के भाग वाली बुद्धि प्रवृत्त होती है। पुनः प्रणिधानादिवस वास्तविक अखण्ड स्फोट का ज्ञान है।।90।।

विशेष:- वाक्ये = वाक्य, पूर्वं = पहले , बुद्धिः = बुद्धि।

यथानुपूर्वीनियमो विकारे क्षीरबीजयोः।

तथैव प्रतिपत्तृणां नियतो बुद्धिषु क्रमः।।91।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे दूध और बीज का विकार दही और वृक्ष है और इन विकारों का क्रम भी नियत है (अर्थात् दूध कुछ गाढ़ा होता है और दही बनता है। बीज में अंकुर निकलता है तब धीरे धीरे वृक्ष बनता है इस प्रकार क्रम बँधा हुआ है) वैसे ज्ञान प्राप्त करने वाले हम लोगों की बुद्धि स्फोट को क्रम से ग्रहण करती है(उसमें भी पहले वर्ण फिर पद फिर वाक्य विषयक बुद्धि) इस प्रकार क्रम नियत है।

विशेष:- यथानुपूर्वीनियमो = पहले क्रम भी नियत, विकारे = विकारों से युक्त, क्षीरबीजयोः = दूध और बीज।

भागवत्स्वपि तेष्वेव रूपभेदो ध्वनेः क्रमात्।

निर्भागेष्वभ्युपायो वा भागभेदप्रकल्पनम्।।92।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे मीमांसक के मत से समुदित वर्ण रूप अखण्ड पद और वाक्यों में ध्वनि के क्रम से ही नदी दिन आदि पदों का स्वरूप भेद है। (वर्णागत क्रम से नहीं) क्योंकि इनके मत से नित्य और विभु वर्णो का कालिक सम्बन्ध या दैशिक सम्बन्ध से पूर्वापरीभाव नहीं माना जाता) वैसे अखण्ड पद, वाक्य स्फोट में भी वर्ण, पद और वर्णावयव आदि कल्पनाएँ एक प्रकार के उपाय हैं।

विशेष:- तेष्वेव = उनमें ही, रूपभेदो = स्वरूप भेद, उपायः = उपाय ।

अनेकव्यक्त्यभिव्यङ्गया जातिः स्फोट इति स्मृता।

कैचिद्व्यक्तय एवस्या ध्वनित्वेन प्रकल्पिता।।93।।

हिन्दी व्याख्या:- अनेक वर्ण व्यक्तियों से अभिव्यक्त होने वाली घटत्वपटत्व आदि जाति ही स्फोट की बोधिका है। और इस जाति कि व्यञ्जक जात्याश्रयीभूत उत्पन्न होनेवाली शब्द

व्यक्तियाँ ही स्वीकृत हैं। तात्पर्ये यह है कि यदि व्यक्ति स्फोटवादि के अनुसार अत्व जाति न मान कर अकार व्यक्ति को ही नित्य मानेगें तो उचित नहीं। क्योंकि अर्कः, अश्वः, अर्थः, इत्यादि पदों में एक अकार नहीं रह सकता।अतः अकार अनेक हैं और अत्व जाति से ही सोयं अकारः यह प्रतभिज्ञाभि बन जाती हैं। इसलिए जातिस्फोट ही मानना चाहिए।।93।।

विशेष:- अनेकव्यक्तिः = अनेक वर्ण, अभिव्यङ्ग्या = अभिव्यक्त, जातिः = जाति ही

अविकारस्य शब्दस्य निमित्तैर्विकृतो ध्वनिः।

उपलब्धौ निमित्तत्वमुपयाति प्रकाशवत्।।94।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे प्रदीप का प्रकाश अपने स्वरूप के साथ घट का प्रकाश होता है वैसे उन उन वर्णो के उच्चारण के लिए प्रयत्न से प्रेरित वायु के आघातरूपी कारणों से विकृत (उत्पन्न) ध्वनि अपने से सम्बद्ध विकार रहित नित्य आन्तर शब्दत्तव की उपलब्धि में निमित्त बनता है।।94।।

विशेष:- अविकारस्य = विकार रहित, शब्दस्य = शब्दतत्त्व की, विकृतो ध्वनिः = विकृत ध्वनि।

नचानित्येष्वभिव्यक्तिर्नियमेन व्यवस्थिता।

आश्रयैरपि नित्यानां जातिनां व्यक्तिरिष्यते।।95।।

हिन्दी व्याख्या:- यद्यपि जैसे समानदेशस्थ दीप समान देशस्थ घट का प्रकाशक है किन्तु गृहारस्थ दीप गृहान्तरस्थ घटका प्रकाशक नहीं होता। वैसे ओष्ठ तालु आदि स्थानों में उत्पन्न और शब्दजशब्द न्याय से श्रोत्र देश तक आई हुई ध्वनि आन्तरस्फोट को व्यक्त नहीं कर सकती क्योंकि दोनों का देश समान नहीं है। तथापि-

विशेष:- अनित्येषु = समानदेशस्थ, अभिव्यक्तिर्नियमेन = आन्तरस्फोट को व्यक्त, व्यवस्थिता = प्रकाशक ।

देशादिभिश्च सम्बन्धो हष्टः कायवतामिह।

देशभेदविकल्पेऽपि न भेदो ध्वनिशब्दयोः ।।96।।

हिन्दी व्याख्या:- श्रोत्राकाश और शब्द हृदयाकाश) देश में रहता है फिर भी स्थान भेद नहीं है क्योंकि अकाश एक है और ध्वनि भी श्रोत्र द्वारा हृदयाकाश में पहुँचती है ।।96।।

विशेष:- देशादिभिश्च = देश आदि, सम्बन्धो = सम्बन्ध, दृष्टः = होते ।

ग्रहणोग्राह्ययोः सिद्धा नियता योग्यता यथा।

व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावेन तथैव स्फोटनादयोः।।97।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे ग्रहण (इन्द्रिय) और ग्राह्य (रूप आदि) कि योग्यता नियत है। (अर्थात चक्षु इन्द्रिय रूप का घ्राणेन्द्रिय गन्ध का ग्रहण करती है तथा रूप चक्षु से गन्ध घ्राण से गृहीत होता है। और उन उन वस्तुओं के ग्रहण में नियत है) वैसे स्फोट और नाद की व्यङ्ग्य व्यञ्जक भाग से योग्यता नियत है (अर्थात् कण्ठदेश के अभिघात से उत्पन्न ध्वनि ही अकारादि की व्यञ्जक है)

विशेष:- ग्रहणोग्राह्ययोः = ग्रहण ग्राह्य, सिद्धा = योग्यता, नियता = नियत, सदृशग्रहणानां च गन्धादीनां प्रकाशकम्।

शदृशग्रहणानां च गन्धादीनां प्रकाशकम्।

निमित्तं नियतं लोके प्रतिद्रव्यमवस्थितम्।।98।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे समान इन्द्रिय से गृहीत होनेवाले गन्ध आदि गुणों का प्रकाशक (व्यञ्जक) प्रत्येक द्रव्य के आधार पर कोई कोई द्रवय नियत है। (जैसे गोघृत कुंकुम गन्ध का अभिव्यञ्जक है) वैसे सदृशेन्द्रियग्र ह्य शब्द की भी अभिव्यञ्जकता बनती।।98।।

विशेष:- सदृशग्रहणानां = समान गृहीत, गन्धादीनां = गन्ध आदि गुणों का , प्रकाशकम् = प्रकाशक।

प्रकाशानां भेदाँश्च प्रकाश्योऽर्थोऽनुवर्तते।

तैलोदकादिभेदे तत्प्रत्यक्षं प्रतिबिम्बके।।99।।

हिन्दी व्याख्या:- अभिव्यञ्जक के भेद (संख्या वृद्धि और ह्रास) से अभिव्यङ्गय का भेद (संख्या वृद्धि और ह्रास) भी होता है। इसका प्रत्यक्ष तेल और जल आदि के प्रतिबिम्ब में किया जा सकता है। जैसे एक ही व्यक्ति के मुख का प्रतिबिम्ब तेल में श्याम, जल में गौण, वज्रमति में छोटा, दर्पण में बडा, जल में उससे भी बडा, तलवार में लम्बा, दर्पण में गोला दिखाई पडता है इससे यह सिद्ध होता है कि अभिव्यञ्जक के वृद्धि और ह्रास से अभिव्यङ्गय का वृद्धि और हास तथा अभिव्यञ्जक के भेद में अभिव्यङ्गय का भेद भी होता है। इसलिए अभिव्यङ्गय में भेद, वृद्धि और ह्रास नहीं होता यह कहना अनुचित है।।99।।

विशेष:- प्रकाशानां = दर्पण में, भेदाँश्च = और भेद, तैलोदकादिभेदे = तेल जल भेद में।

विरुद्धपरिमाणेषु वज्रादर्शजलादिषु।

पर्वतादिसरूपाणां भावानां नास्ति सम्भवः।।100।।

हिन्दी व्याख्या:- पर्वत के परिमाण की अपेक्षा अल्पपरिमाप वाले वज्र और दर्पण आदि छोटी वस्तुओं में महापरिणाम वाले पर्वत और चन्द्र आदि की उत्पत्ति नहीं हो सकती इसलिए मानना पडेगा कि बडे परिमाण वाले पर्वत आदि अल्पपरिणाम वाले दर्पण में समाविष्ट नहीं हो सकते फिर भी उनके दर्पण में उत्पत्ति नहीं होती किन्तु बड़े परिमाण वाले पर्वत ही अभिव्यक्त होते हैं

विशेष:- विरुद्धपरिमाणेषु = बड़े परिमाण वाले, वज्रादर्शजलादिषु = वज्र और दर्पण, पर्वतादिसरूपाणां = पर्वत आदि अल्पपरिणाम वाले दर्पण में।

वहुविकल्पीय प्रश्न-उत्तर

1- जगत् शब्द को कहा जाता है।

1. विवर्त 2. वेद

3. निगम 4. पुराण (1)

2- किसके मत में पश्यन्ति वाक् ही शब्द ब्रह्म है।

1. वैयाकरण के मत में 2. न्याय के मत में

3. ज्योतिष के मत में 4. वेद के मत में (1)

3-वाणी के कितने भेद माने गए हैं।

1. तीन 2. दो

3. चार 4. एक (1)

4- सूक्ष्मतर अवस्था में कौन सी वाणी कही जाती है।

1. परा' वाक 2. पश्यन्ति' वाक

3. मध्यमा' वाक 4. वैखरी' वाक (1)

5- तन्त्रशास्त्र के आधार पर वाणी के कितने भेद है।

1. तीन 2. दो

3. चार 4. एक (3)

6- श्रोता के लिए वैखरी निमित्ता है।

1. निमित्ता 2. कारण

3. आगम 4. पुराण (1)

6- स्फोट को माना गया है।

1. अर्थबोधक 2. व्याकरण बोधक

3. निगम बोधक 4. पुराण बोधक (1)

7- कारिका 53-57 किसका निर्णय है।

1. बोधकत्व निर्णय 2. अनित्य बोधकत्व निर्णय
3. वेद निर्णय 4. नित्य बोधकत्व निर्णय (4)

8. ध्वनि के कितने भेद होते हैं।
1. एक 2. तीन
3. दो 4. सात (3)

9- ध्वनि की अभिव्यक्ति में कितने मत है।
1. एक 2. तीन
3. दो 4. सात (2)

10- ध्वनि से किसकी प्रतीति होती है।
1. स्फोट 2. वेद की
3. निगम की 4. पुराण की (1)

अभ्यासार्थ प्रश्न - उत्तर

प्रश्न 1- वाणी के तीन भेद माने गए हैं कौन कौन है।

उत्तर- पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी।

प्रश्न 2- तन्त्रशास्त्र के आधार पर वाणी के चार कौन कौन है।

उत्तर- परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी।

प्रश्न 3- कारिका 51-55 किसका वर्णन है।

उत्तर-शब्द में अनेक धर्म समावेश इसका वर्णन है।

प्रश्न 4- अवैयाकरण किस भाग को बोलते है।

उत्तर- केवल चतुर्थ भाग को।

प्रश्न 5- कारिका 57-39 किसकी व्याख्या की गयी है।

उत्तर-स्वं रूपं की दूसरी व्याख्या में जाति व्यक्तिभेद की कल्पना।

प्रश्न 6- स्फोट पर कितने वाद है।

उत्तर- अनेक वाद।

प्रश्न 7- ध्वनि की अभिव्यक्ति में कितने मत हैं।

उत्तर- तीन मत।

प्रश्न 8- कारिका 75-77 किसका वर्णन है।

उत्तर- स्फोट में प्राकृतधवनि के भेद की ही प्रतीति का वर्णन है।

प्रश्न 9- कारिका 93-94 में किसका वर्णन किया गया है।

उत्तर- जातिस्फोट वाद, व्यक्तिस्फोटवाद, एक नित्य शब्द तत्तववाद।

प्रश्न 10- कारिका 94-100 में किसका वर्णन किया गया है।

उत्तर- स्फोट में ध्वनिकृत कालभेद की प्रतीति का वर्णन किया गया है।

तस्मादभिन्नकालेषु वर्णवाक्यपदादिषु।
वृत्तिकालः स्वकालश्च नादभेदाद्विभाव्यते।।101।।

हिन्दी व्याख्या:- इसलिए व्यङ्गय में व्यञ्जक धर्मो को देखकर यह मानना पङता है कि कालभेद रहित वर्ण, पद और वाक्य स्फोटों में बाद के (प्राकृत और वैकृतध्वनि) के भेद से दुरतादि वृत्तियों का तथा वर्ण आदि का अभिव्यञ्जक प्रकृत ध्वनि का काल प्रतीत होता है। किन्तु यहाँ वस्तुतः काल का सम्बन्ध नहीं है।।101।।

विशेष:- अभिन्नकालेषु = कालभेद रहित, वर्णवाक्यपदादिषु = वर्ण, पद और वाक्य, वृत्तिकालः = वृत्तियों का ।

यः संयोगाविभागाभ्यां करुणैरूपजन्यते।

स स्फोटः शब्दजाः शब्दा ध्वनयोऽन्यैरुदाहृताः।।102।।

हिन्दी व्याख्या:- स्फोट को अनित्य मानने वाले तार्किक आचार्यो ने कहा है कि कण्ठतालु आदि के संयोग और विभाग के द्वारा जो उत्पन्न होता है वह स्फोट (वाचक शब्द) है और जो शब्दज शब्द है वे ध्वनियाँ हैं।

विशेष:- संयोगाविभागाभ्यां = संयोग और विभाग के द्वारा, करुणैः = कण्ठतालु , उपजन्यते = उत्पन्न होता।

अल्पे महति वा शब्दे स्फोटकालो न भिद्यते।
परस्तु शब्दस्थानः प्रचयापचयात्मकः।।103।।

हिन्दी व्याख्या:- शब्द (ध्वनि) चाहे छोटी हो बढ़ी किन्तु स्फोट काल (हस्वादिकाल) भिन्न नहीं है। क्योंकि शब्द अमूर्त है। इसलिए अल्पत्व महत्त्व परिमाण का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

दूसरी जो कार्यरूप शब्द की परम्परा है वह प्रचय (अधिक देश में व्याप्त होना) और अपचय (अल्पदेश में व्याप्त होना) रूप है। तात्पर्य यह है कि ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत, आदि व्यवहार स्फोट में नहीं हो सकते। क्योंकि अमूर्त शब्द में कोई परिमाण नहीं रह सकता। इसलिए ध्वनि का न्यूनदेश में रहना अल्पता और अधिक देश में रहना व्याप्ति महत्ता है।।103।।

विशेष:- अल्पे = छोटी, महति = बढ़ी, स्फोटकालः = स्फोट काल ।

दूरात्प्रभेव दीपस्य ध्वनिमात्रं तु लक्ष्यते।

घण्टादीनां च शब्देषु व्यक्तो भेदः स द्रष्यते।।104।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे प्रभाके सहित व्यक्त दीपक को दूर से देखिए तो केवल प्रभा ही दिखाई पडती है, दीपक नहीं। वैसे ध्वनि के सहित व्यक्त स्फोट नहीं अनुभूत होता किन्तु ध्वनि ही अनुभूत होती है। यह भेद घण्टा आदि के शब्दों में स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है।

विशेष:- दूरात्प्रभेव = दूर से केवल प्रभा, दीपस्य = दीपक को, ध्वनिमात्रं = ध्वनि मात्र के।

द्रव्याभिघातात्प्रचितौ भिन्नौ दीर्घप्लुतावपि।

कम्पे तूपरते जाता नादा वृत्तेर्विशेषकाः।।105।।

हिन्दी व्याख्या:- स्थान और प्रयत्नरूपी में अभिघात (कण्ठादि स्थानों में वायु के संयोग) से प्रचित (बढ़े हुए) दीर्घ और प्लुत आदि के भेद हैं। इस अभिघात के जनक कम्पन के समाप्त होने पर जो नाद उत्पन्न होता है उसी से दुरता आदि वृत्तियों के भेद की स्थापना होती है। दीर्घ प्लुत आदि को नहीं।

विशेष:- द्रव्याभिघातात् = प्रयत्नरूपी में अभिघात, दीर्घप्लुतावपि = दीर्घ और प्लुत, कम्पे = कम्पन ।

अनवस्थितकम्पेऽपि करणे ध्वनयोऽपरे।

स्फोटादेवोपजायन्ते ज्वाला ज्वालान्तरादिव।।106।।

हिन्दी व्याख्या:- और दूसरे आचार्यो का मत है कि करण (वगीद्रिय) में कम्प के रहने पर भी दूसरी ध्वनि (वैकृत ध्वनि) स्फोट से ही उत्पन्न होती है जैसे एक ज्वाला से दूसरी ज्वाला।

विशेष:- अनवस्थित = दूसरे आचार्यो का मत, करणे = करण ,ध्वनयोऽपरे = दूसरी ध्वनि।

वयोरणूनां ज्ञानस्य शब्दत्वापत्तिरिष्यते।

कैश्चिद् र्शनभेदोऽत्र प्रवादेष्वनवस्थितः।।107।।

हिन्दी व्याख्या:- कोई वायु को कोई अणु को और कोई ज्ञान को शब्द मानते हैं। इन सिद्धान्तों के विषय में अभी भी मतभेद बना हुआ है।।107।।

विशेष:- वयोरणूनां = वायु को कोई अणु को, ज्ञानस्य = ज्ञान को , शब्दत्वापत्तिरिष्यते = शब्द मानते ।

लब्धक्रियः प्रयत्नेन वक्तुरिच्छानुवर्तिना।

स्थानेष्वभिहतो वायुः शब्दत्वं प्रतिपद्यते।।108।।

हिन्दी व्याख्या:- जब वक्ता को बोलने कि इच्छा होती है तब वह कोई प्रयत्र करता है उस प्रयत्र से प्राणवायु में क्रिया उत्पन्न होती है और वहीं वायु कण्ठ,तालु आदि स्थानोंमें टकराकर शब्द बन जाता है108

विशेष:- लब्धक्रियः = क्रिया उत्पन्न, प्रयत्नेन = प्रयत्न से, वक्तुरिच्छानुवर्तिना = वक्ता को बोलने कि इच्छा होती।

तस्य कारणसामथ्र्याद्वेगप्रजयधर्मणः

सन्निपाताद्विभज्यन्ते सारवत्योऽपि मूर्तयः।।109।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे कारण (वायु को शब्द बनाने वाले प्रयत्र) के सामथ्र्य से वेग (एक संस्कार) और प्रचय (शिथिल संयोग) रूपी धर्म वाले वायु के संयोग बडे बडे पर्वतों को जब उखाड देते हैं तब कण्ठ तालु आदि का विभाग होना कठिन नहीं है**।।109।।**

विशेष:- कारणसामथ्र्याद् = कारण के सामथ्र्य से, प्रचयधर्मणः = शिथिल संयोग रूपी धर्म, सन्निपाताद्विभज्यन्ते = वायु के संयोग से उखाड़ देते।

अणवः सर्वशक्तित्वाद् भेदसंसर्गवृत्तयः।

छायातपदमःशब्दभावेन परिणामिनः।।110

हिन्दी व्याख्या:- विभाग और संयोग जिनमें रहते है उन अणुओं में सब प्रकार के कार्यो को उत्पन्न करने वाली एक शक्ति है जो विभक्त होने पर छाया, आतप और अन्धकार के रूप में संयुक्त होने पर शब्द रूप में परिणत हो जाती है। ।110।।

विशेष:- अणवः = अणुओं, सर्वशक्तित्वाद् = सब शक्ति, भेदसंसर्गवृत्तयः = विभाग संयोग जिनमें रहते ।

स्वशक्तौ व्यज्यमानायां प्रयत्नेन समीरिताः।

अभ्राणीव प्रचीयन्ते शब्दाख्याः परमाणवः।।111।।

हिन्दी व्याख्या:- किन्तु जब किसी अर्थ को बताने की इच्छा से किए गए प्रयत्न द्वारा शब्द या शब्दतन्मात्रारूणी परमाणुओं को प्रेरणा मिलती है। तब उनकी शक्ति उन-उन शब्दों के रूप में व्यक्त होती है और वे ही परमाणु जैसे वर्षाकाल में मेघ के परमाणु आकाश में व्याप्त हो जाते हैं। वैसे शब्द के रूप में परिणत हो जाया करते हैं। इसि लीए नित्य अणुओं का सर्वदा शब्दरूप में परिणाम नहीं होता।।111।।

विशेष:- स्वशक्तौ = उनकी शक्ति, व्यज्यमानायां = शब्दतन्मात्रारूपी, परमाणवः = परमाणु।

अथायमान्तरो ज्ञाता सूक्ष्मवागात्मना स्थितः।

व्यक्तये स्वस्य रूपस्य शब्दत्वेन विवर्तते।।112।।

हिन्दी व्याख्या:- यह शब्द ही आन्तर ज्ञाता (वृत्तिविशष्ट अन्तःकरण) है। जो सूक्ष्म शब्दशक्ति रूप में स्थित है वह अपने स्वरूप को प्रकट करने के लिए स्थूल शब्दरूप में भासित होता है।

तात्पर्य यह है कि-वृत्ति विशिष्ट अन्तःकरण ज्ञान रूप है। वही शब्द बन जाता है। इसलिए शब्द ज्ञान का परिणाम माना जाता है।।112।।

विशेष:- अथायमान्तरः = यह शब्द ही आन्तर, ज्ञाता = ज्ञाता, व्यक्तये = भासित

स मनोभावमापद्य तेजसा पाकमागतः।

वायुमाविशति प्राणमथासौ समुदीर्यते।।113।।

हिन्दी व्याख्या:- वही ज्ञाता (अन्तःकरण) अर्थ बताने की इच्छा होने पर मन बन जाता है और वह जठराग्नि से संयुक्त होकर पाक प्राप्त करता है तथा प्राणवायु में धक्का लगाकर बाद में वृत्ति और मन के सहित प्राण ऊपर की और चलता है।।113।।

विशेष:- मनोभावमापद्य = इच्छा होने पर मन बन जाता, तेजसा = जठराग्नि से, पाकमागतः = पाक प्राप्त करता ।

अन्तःकरणतत्त्वस्य वायुराश्रयतां गतः।

तद्धर्मेण समाविष्टस्तेजसैव विवर्तते।।114।।

हिन्दी व्याख्या:- तब अन्तःकरणतत्त्वरूपी मन का आश्रय प्राणवायु मनोधर्म (पाक दाह अथवा ज्ञानरूप शब्द) समाविष्ट होकर तेज (जठराग्रि) की सहायता से बाहर शब्द के रूप में भासित होता है।।114।।

विशेष:- करणतत्त्वस्य = करणतत्त्वरूपी, वायुराश्रयतां = आश्रय प्राणवायु , तद्धर्मेण = तेज की सहायता से।

विभज्य स्वात्मनो ग्रन्थीन् श्रुतिरूपैः पृथग्विधैः।

प्राणो वर्णानभिव्यज्य वर्णेष्वेवोपलीयते।।115।।

हिन्दी व्याख्या:- और दाह के वशीभूत होकर प्राण, वृत्ति विशिष्ट मनरूपी अन्तःकरण से युक्त होकर अपनी क, ख आदि वर्णरूपी ग्रन्थिका विभाग करके अनेक प्रकार से सुनाई पडने वाला ध्वनियों से शब्दों को अभिव्यक्त कर पुनः उन्हीं वर्णो में ही लीन होता है।

अर्थात् वृत्ति सहित मनरूपी अन्तःकरण से युक्त जो वायु का शब्द रूप में परिमाण है। वहीं ज्ञान का शब्दरूप होना है।।115।।

विशेष:- विभज्य = विभाग करके, स्वात्मनो = अपनी , ग्रन्थीन् = ग्रन्थिका।

अजस्त्रवृत्तिर्यः शब्दः सूक्षमत्वान्नोपलभ्यते।

व्यजनाद्वायुरिव स स्वनिमित्तात्प्रतीयते।।116।।

हिन्दी व्याख्या:- जो बाहर और भीतर सदा रहने वाला ध्वनिरूपी शब्द अति सूक्ष्म होने के कारण सुनाई नहीं पडता। वह आकाश में व्याप्त वायु को जैसे पंखा एकत्र लेकर प्रकाशित करता है। वैसे वक्ता के प्रयत्र से कान तक पहुँचकर उपलब्ध होता है (सुनाई पडता है) ।।116।।

विशेष:- अजस्त्रवृत्तिर्यः = जो बाहर और भीतर सदा रहने वाला, सूक्षमत्वात् = सूक्ष्म होने के कारण, व्यजनाद्वायुरिव = पंखा के वायु के समान।

तस्य प्राणे च या शक्तिर्या च बुद्धौ व्यवस्थिता

विवर्तमाना स्थानेषु सैषा भेदां प्ररपद्यते।।117।।

हिन्दी व्याख्या:- प्राण में और बुद्धि में रहने वाली अर्थ बताने वाली शब्द की एक शक्ति है जो उसमें व्यवस्थित रूप से रहती है। वह ही कण्ठ तालु आदि स्थानों से अकारादि रूप में व्यक्त होती हुई क, ख आदि भिन्न-भिन्न रूपों में परिणत होती है।

इस प्रकार शब्द की प्राण और बुद्धि में रहने वाली शक्ति ही कण्ठ आदि स्थानों से व्यक्त होकर क, ख, आदि भेदों का कारण बनती है।।117।।

विशेष:- प्राणे = प्राण में, शक्तिर्या = शक्ति जो, बुद्धौ = बुद्धि में।

शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिर्विश्वस्यास्य निबन्धनी।

यन्नेत्रः प्रतिभात्मायं भेदरूपः प्रतीयते।।118।।

हिन्दी व्याख्या:- तात्पर्य यह है कि-शब्द से अतिरिक्त बाह्य वस्तु जब नहीं है तब वाक्यार्थ बोध केवल प्रतिभा ही मानना पडता है। जैसे किसी युवती स्त्री को देखकर कोई कुणप, कोई कामिनी, और कोई (व्याघ्र आदि) भक्ष्य रूप में मानता है यह मानना भी एक प्रतिमा है। जैसे सिंह नहीं रहता फिर भी कोई कह दे कि'सिंह आ गया'इस वाक्य के सुनने के साथ ही शूरों में उत्साह और कातरो मे भय उत्पन्न हो जाता है। इसे भी प्रतिभा ही कहते हैं। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जगत् प्रतिभा मात्र है। इसलिए 'बन्धयाका पुत्र जा रहा है' यह 'राहु का सिर है' इत्यादि वाक्यो से भी अर्थ प्रतिभा होती है और यह स्वीकार करना पडता है कि शब्द ही उन-उन रूपों में भासित होता है।।118।।

विशेष:- शब्देष्वेवाश्रिता = शब्द में ही अश्रित, शक्तिर्विश्वस्यास्य = इस संसार में उत्पन्न रूप शक्ति, भेदरूपः = भेद रूप।

षड्जादिभेदेः शब्देन व्याख्यातो रूप्यते यतः।

तस्मादर्थविधाः सर्वाः शब्दमात्राषु निश्रिताः।।119।।

हिन्दी व्याख्या:- यह ही शब्द-षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद स्वरों के भेद शब्द से प्रतिपादित हैं। इससे यह निश्चय हो जाता है कि समस्त अर्थ या उनके भेद शब्द से ही उत्पन्न हुए हैं।।119।।

विशेष:- षड्जादिभेदे = षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद स्वरों के भेद, शब्देन = शब्द से, व्याख्यातो = प्रतिपादित।

शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नायविदो विदुः।

छन्दोभ्य एव प्रथममेतद्विश्वं व्यवर्तत।।120।।

हिन्दी व्याख्या:- वेद और शास्त्रो के जानकार महर्षियों ने कहा है कि यह समस्त जगत् शब्द का परिणाम है और कल्प के आरम्भ में वेदों से ही विश्व का सृजन हुआ है।।120।।

विशेष:- शब्दस्य = शब्द का, परिणामोऽयम् = यह परिणाम, विदुः = जानकार।

इतिकर्तव्यता लोके सर्वा शब्दव्यपाश्रया।

यां पूर्वहितसंस्कारो बालोऽपि प्रतिपद्यते।।121।।

हिन्दी व्याख्या:- लोक में जितने कार्य करने के नियम हैं उन सबके मूल में शब्द है। (बिना शब्द का उच्चारण किए कोई कार्य हो ही नहीं सकता) बालक भी पूर्व जन्म के शब्द भावना नामक संस्कार के द्वारा ही अपना कार्य करता है।

विशेष:- इतिकर्तव्यता = जितने कार्य करने के, लोके = लोक में , शब्दव्यपाश्रया = मूल में शब्द ।

आद्यः करणविन्यासः प्राणस्योध्र्वं समीरणम्।

स्थानानामभिघातश्च न विना शब्दभावनाम्।।122।।

हिन्दी व्याख्या:- क्योंकि शब्द-भावना के बिना अबोध बालक करणों (प्रयत्नो) का शब्दोच्चारण के लिए विनियोग नहीं कर सकता। और बिना प्रयत्नों के प्राणवायु का ऊपर की और बढ़ना तथा शब्दोच्चरण के लिए शिर तथा कण्ठ आदि स्थानों में अभिघात भी नहीं हो सकता। अर्थात् शब्द का उच्चारण ही नहीं हो सकता।।122।।

विशेष:- करणविन्यासः = करणों का विनियोग, प्राणस्योध्र्वं = प्राणवायु का ऊपर , अभिघातः = अभिघात

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमाद्ऋते।

अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।123।।

हिन्दी व्याख्या:- लोक में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जो बिना शब्द के अनुगम के होता हो। अतः सब ज्ञान शब्द से जुङे हुए की भांति भासित होते हैं।।123।।

विशेष:- सोऽस्ति = वह नहीं है , प्रत्ययः = प्रत्यय, लोके यः =लोक में जो ।

वाग्रुपता चेन्निष्क्रामेदवबोधस्य शाश्रवती।

न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी।।124।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे अग्नि का प्रकाशकत्व स्वरूप है और आत्मा का स्वरूप चैतन्य है वैसे अवबोध (ज्ञान) का वाग्रुप होना भी नित्य स्वरूप है। यह यदि कहीं निकल जाय तब उत्पन्न भी प्रकाश न प्रकाशित हो। क्योंकि वह वाग्रुपता जैसे अनुव्यवशाय व्यचशायका प्रकाशक है वैसे प्रकाश का भी प्रकाशक

विशेष:- वाग्रुपता = वाग्रुप होना, बोधस्य = ज्ञान का , प्रकाशः = प्रकाश ।

सा सर्वविद्याशिल्पानां कलानां चोपबन्धनी।

तद्वशादभिनिष्पन्नं सर्वं वस्तु विभज्यते।।125।।

हिन्दी व्याख्या:- और, वही वाणी सब विद्याओं, शिल्पों और कलाओं का बोध कराती है तथा इसी के द्वारा उत्पन्न घट, पट आदि समस्त वस्तुओं का विभाग भी सिद्ध होता है।।125।।

विशेष:- सर्वविद्या = सब विद्याओं, शिल्पानां = शिल्पों, कलानां = कलाओं का ।

सैषा संसारिणां संज्ञा बहिरन्तश्च वर्तते।

तन्मात्रामनतिक्रान्तां चैतन्यं सर्वजन्तुषु।।126।।

हिन्दी व्याख्या:- और, यही पाणह प्राणी में चेतना शक्ति है जो बाह्य लोक व्यवहार का साधन है तथा अन्तःकरण

के सुख - दुःख का ज्ञान कराती है क्योंकि ऐसा कोई प्राणी नहीं है जहाँ चे तन हो और वाक्मात्रा न हो।।126।।

विशेष:- संसारिणां = लोक व्यवहार का, बहिरन्तः = बाह्य अन्तःकरण , चैतन्यं = चेतना ।

अर्थक्रियासु वाक् सर्वान्समीहयति देहिनः।

तदुत्क्रान्तौ विसंज्ञोऽयं द्र्श्यते काष्ठकुड्यवत्।।127।।

हिन्दी व्याख्या:- क्योंकि, समस्त प्राणियों को कार्य करने के लिए वाणी ही प्रेरक है (जैसे पानी लावो) और इसी वाणी के बन्द हो जाने पर यह देह काठ और भीत की तरह बिना चेतना का हो जाता है।127

विशेष:- अर्थक्रियासु = प्राणियों को कार्य करने के लिए, वाक् = वाणी के, देहिनः = देह

प्रविभागे यथा कर्ता तया कार्ये प्रवर्तते।

अविभागे तथा सैव कार्यत्वेनावतिष्ठते।।128।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे आग्रत अवस्थामें वाणी से प्रेरित होकर कर्ता कार्य करने में प्रवृत्त होता है वैसे स्वप्नावस्था में भी वाणी भोक्ता योग्य और भोगरूप में परिणत हो जाती हैं।।128।।

विशेष:- प्रविभागे = जाग्रत अवस्थामें, कर्ता = कर्ता, अविभागे = स्वप्नावस्था में ।

स्वमात्रा परमात्रा वा श्रुत्या प्रक्रम्यते यथा।

तथैव रूढ़तामेति तया ह्यर्थो विधीयते।।129।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे स्वस्वरूप अथवा परस्वरूप भेद या अभेद रूप में वाणी से प्रतीत होता है वैसे ही भेद अथवा अभेद रूप में वह शब्द उसी अर्थ में रूढ़ हो जाता है। क्योंकि किसी भी अर्थ का ज्ञान शब्द के द्वारा ही होता है।

विशेष:- स्वमात्रा = स्वस्वरूप, परमात्रा = परस्वरूप, श्रुत्या = प्रतीत होता ।

अत्यन्तमतथाभूते निमित्ते श्रुत्युपाश्रयात्।

दृश्यते ऽलातचक्रादौ वस्त्वाकारनिरूपणा।।130।।

हिन्दी व्याख्या:- जब अत्यन्त असत्य अर्थ भी शब्द से उत्पन्न होता है तो सत् अर्थ तो शब्द से उत्पन्न होगा ही क्योंकि जगत में जितने पदार्थ हैं वे सब शब्द के विषय हैं। जो जगत् में नहीं है खपुष्प आदि उनकी भी सत्ता शब्द में विद्यमान है। अतः शब्द ही जगत् का कर्ता है या जगत् शब्द का ही विवर्त है यह मान लेना ही चाहिए।।130।।

विशेष:- अत्यन्तम् = अत्यन्त , तथाभूते = उत्पन्न होता, निमित्ते = विषय ।

अपि प्रायोक्तुरात्मानां शब्दमन्तरवस्थितम्।

प्राहुर्महान्तमृषभं येन सायुज्यमिष्यते।।131।।

हिन्दी व्याख्या:- यही कारण है कि-महर्षियों ने शब्द का उच्चारण करने वाले की आत्मा को जो शरीर के बीच में हृदयाकाश स्थित है (अर्थात् प्रतीत होता है) उसे ही व्यापक देव (ब्रह्म) भी माना है और उसी के साथ सायुज्य (एक्य) मुक्ति भी चाहते हैं।

विशेष:- अपि = यही, प्रायोक्तुः = उच्चारण करने वाले की , आत्मानां = आत्मा को ।

तस्माद्यः शब्दसंस्कारः सा सिद्धिः परमात्मनः।

तस्मा प्रवृत्तितत्त्वज्ञस्तद्ब्रह्ममृतमश्नुते।।132।।

हिन्दी व्याख्या:- इसलिए जो शब्द का संस्कार व्याकरण सिद्धरूप है वह ही उस परमात्मा (नित्यशब्दब्रह्म) की सिद्धी (प्राप्ति) का उपाय है।क्योंकि इस शब्द ब्रह्म की प्रवृत्ति (षड्भावविकार) और तत्त्व(प्रतिभा) को जो ठीक समझ सकेगा वह ही उस उपनिषद् में वर्णित अमृत ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है । अर्थात् सायुज्य मुक्ति उसे ही मिल सकती।।132।।

विशेष:- तस्माद्यः इस लिए , शब्दसंस्कारः शब्द का संस्कार, परमात्मनः परमात्मा ।

न जात्वर्कृकं कश्चिदागमं प्रतिपद्यते।

बीजं सर्वागमापाये त्रय्येवातो व्यवस्थिता।।133।।

हिन्दी व्याख्या:- सांख्य आदि जितने दर्शन है वे कोई भी किसी भी अवस्था में अपौरुषेय नहीं माने जा सकते। इसलिए अनित्य इन आगमों का जब विनाश हो जाता है उस अवस्था में व्यवस्थित (नित्य)और अपौरुषेय तीनों वेद सब आगमों के बीच रूप में स्थित रहते हैं। (अर्थात् वेद से ही सब आगम उत्पन्न होते हैं और आगमों के नाश होने पर भी उनका बीच वेद में स्थित रहता है)133

विशेष:- जात्वकर्तृकं = सांख्य आदि, कश्चिदागमं= कोई भी अपौरुषेय, प्रतिपद्यते= माने जा सकते।

अस्तं यातेषु वादेषु कर्तृष्वन्येष्वसत्स्वपि।

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्म न लोको व्यतिवर्तते।।134।।

हिन्दी व्याख्या:- जब धर्मशास्त्र विनष्ट हो जाते हैं और दूसरे धर्मशास्त्री जबतक नहीं उत्पन्न हो जाते इस अवधि के बीच में शिष्ट पुरुष श्रुति और स्मृति में वर्णित धर्मो का पालन परम्परा के आधार पर करते हैं तथा परम्पराओं का उलङ्घन नहीं करते।।134।।

विशेष:- अस्तं = विनष्ट, यातेषु = जब तक।

ज्ञाने स्वाभाविके नार्थः शास्त्रैः कश्चन विद्यते।

धर्मो ज्ञानस्य हेतुश्चत्तस्याम्नयो निबन्धनम्।।135।।

हिन्दी व्याख्या:- प्रमाणान्तर की अपेक्षा के बिना स्वाभाविक किसी भी व्यक्ति के धर्माधर्म विषयक ज्ञान में कोई विशेष हेतु है तो वह वेदमूलक होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।।135।।

विशेष:- ज्ञाने = ज्ञान में, स्वाभाविके = स्वाभाविक, शास्त्रैः= वेदमूलक।

वेदशास्त्रविरोधी च तर्कश्चक्षुरपश्यताम्।

रूपमात्राद्धि वाक्यार्थः केवलान्नावतिष्ठते।।136।।

हिन्दी व्याख्या:- जो लोग वेद के अर्थ का निर्णय नहीं कर सकते उनके लिए वेद के अर्थ का व्यवस्थापक मीमांसा, और वेदान्तरूपी तर्क ही नैत्र है। क्योंकि केवल वेद के शब्दमात्र से वेद का तात्पर्याथ -रूपी वाक्यार्थ निश्चित नहीं हो सकता।।136।।

विशेष:- वेदशास्त्रविरोधी = वेद के अर्थ का निर्णय नहीं कर सकते, तर्कश्चक्षुः = तर्क ही नैत्र, रूपमात्राद्धि = रूपी वाक्यार्थ।

सतोऽविवक्षा पाराश्र्यं व्यक्तिरर्थस्य लैङ्गिकी।

इति न्यायो बहुविधस्तर्केण प्रविभज्यते।।137।।

हिन्दी व्याख्या:- वेद के तात्पर्य जानने के लिए अनेक तर्कों का प्रयोग होता है जैसे- सत्(वर्तमान)की अविवक्षता, पाराश्र्य और अर्थ की लिङ्ग द्वारा प्रतीति इस प्रकार के अनेक न्याय (तात्पर्य निर्णय) तर्क (मीमांसा) के द्वारा किये जाते हैं।।137।।

विशेष:- सतोऽविवक्षा = सत् की अविवक्षता, पाराश्र्यं = अर्थ की लिङ्ग द्वारा, व्यक्तिरर्थस्य = अनेक तर्कों का।

शब्दानामेव सा शक्तिस्तर्को यः पुरुषाश्रयः।

शब्दाननुगतो न्यायोऽनगामेष्वनिबन्धनः।।138।।

हिन्दी व्याख्या:- लोगों को जो 'ग्रहं सम्माष्टि' वाक्य के अर्थ में वाक्य भेद का तर्क होता है वह शब्दों की ही शक्ति है जो आगम को प्रमाण न मानकर केवल शब्द शक्ति से अपरि गृहीत तर्क हैं वह तो आगम के अर्थ निर्णय का कारण भी नहीं बन सकता।।138।।

विशेष:- शब्दानामेव = शब्दों की ही, शक्तिस्तर्को = शक्ति से तर्क, पुरुषाश्रयः = लोगों को वाक्य के अर्थ में।

रूपादयो यथा दृष्टाः प्रत्यर्थं यतशक्तयः।

शब्दास्तथैव दृश्यन्ते विषापहरणादिषु।।139।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे सब रूपों में रूपत्व एक है किन्तु नील रूप नेत्र को ठण्ढ़ा करता है और चमकीला रूप् आँखों को चकाचौंध पैदा करता है, सब रसों में रसत्व एक है किन्तु मधुर कफ पैदा करता है और कटु पित्त। इस प्रकार रूपादिकों की शक्तियाँ भिन्न-भिन्न विषयों में नियत हैं। वैसे सब शब्दों में रहने वाला शब्दत्व एक है। चाहे वह साधु हो या असाधु। फिर भी कुछ शब्द साँप का विष दूर करने के लिए नियत देखे जाते हैं।(अर्थात् उन्हीं शब्दों को पढ़ने से विष उतरता है)139

विशेष:- रूपादयः= रूपों में रूपत्व, दृष्टाः = देखे जाते, शब्दास्तथैव = शब्दों में रहने वाला।

यथैषां तत्र सामश्र्यं धर्मेऽप्येवं प्रतीयताम्।

साधूनां साधुभिस्तस्माद्वाच्यमभ्युदयार्थिभिः।।140।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे कुछ शब्दों की शक्ति विष दूर करने में देखी गई है। वैसे साधुत्व के एक होने पर भी वायव्य याग में श्वेत अज ही मारा जाता है। सब जलों में जलत्व एक है फिर भी मद्य पापजनक और तीर्थोदक पुण्यजनक हैं। इसी प्रकार धर्म के विषय में साधु शब्दों को भी मानना चाहिए क्योंकि कल्याण चाहने वाले साधु का प्रयोग करते हैं असाधु का नहीं।।140।।

विशेष:- यथैषां = जैसे, सामर्थ्यं = शक्ति, धर्मेऽप्येवं = धर्म के विषय में।

सर्वोऽहष्टफलानर्थानागमात्प्रतिपद्यते।

विपरीतं च सर्वत्र शक्यते वक्तुमागमे।।141।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे जो शब्द अदृष्ट जनक है उनका प्रामाण्य तो सब लोग 'यजेत स्वर्गकामः' इस प्रकार के आगम को ही मानते हैं। वैसे 'एक शब्दः सम्यग् ज्ञातः स्वर्गे लोके च कालधुग् भवति' इस प्रकार के आगम से साधु शब्दों को भी अदृष्टजनक मानते हैं। यदि कोई इसके विपरीत कल्पना करे कि जो पुण्यजनक हैं वे पापजनक और जो पापजनक वे पुण्यजनक तो सब आगमों के बारे में यह विपरीत कल्पना हो सकती है। अतः लोक व्यवहार को ध्यान में रखकर आगमों को प्रमाण मानना ही पड़ता है।।141।।

विशेष:- सर्वो = जो, अदृष्टफलान् = अदृष्टजनक, अर्थान् = प्रामाण्य।

सधुत्वज्ञानविषया सैषा व्याकरणस्मृतिः।

अविच्छेदेन शिष्टानामिदं स्मृतिनिबन्धनम्।।142।।

हिन्दी व्याख्या:- यह व्याकरण आगम शब्दों का साधुत्व बतलाता है और यह व्याकरण शिष्टों की अनादि परम्परा से चला आ रहा है अनादि है आगम है (वेद) मूलक है।।142।।

विशेष:- साधुत्वज्ञानविषया= साधुत्व बतलाता, सैषा = यह, व्याकरणस्मृतिः= व्याकरण आगम है।

वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम्।

अनेकतीर्थभेदायास्त्रय्या वाचः परं पदम्।।143।।

हिन्दी व्याख्या:- और यही व्याकरण स्मृति-शिष्टों से आदृत होने से प्रमाणभूत है और समस्त शब्दों का ज्ञान इसी से होता है। क्योंकि प्राण, बुद्धि और हृदयरूपी अनेक स्थानों में वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ती नाम से प्रसिद्ध तीन वाणियों का यही व्याकरण स्मृति ही उत्कृष्ट स्थान है।

विशेष:- वैखर्या = वैखरी, मध्यमायाः = मध्यमा, पश्यन्त्याः = पश्यन्ती।

तद्विविभागाविभागाभ्यां क्रियमाणमवस्थितम्।

स्वभावज्ञैश्च भावानां दृश्यन्ते शब्दशक्तयः।।144।।

हिन्दी व्याख्या:- यह व्याकरण शास्त्र दूसरों की भी समझ में आ जाय इसलिए विभाग (प्रकृति प्रत्यय भेद) और अविभाग(स्वरूपोच्चारण जैसे क्षेत्रीय, श्रोतियः, दाधर्ति दर्घति इत्यादि) के द्वारा रचा गया है और व्यवस्थित है। पदार्थों के स्वभाव को ठीक राति से समझने वाले महर्षियों ने शब्दों कि शक्तियाँ (जैसे यह शब्द धर्म जनन योग्य है यह नहीं है)देखीं। (इसीलिए इन्हें कोई मिटा नहीं सकता है)144

विशेष:- तद्विविभाग = विभाग, अविभागाभ्यां = अविभाग, क्रियमाणमवस्थितम् = रचा गया व्यवस्थित।

अनादिमव्यवच्छिन्नां श्रुतिमाहुरकर्तकाम्।

शिष्टैर्निबध्यमाना तु न व्यवच्छिद्यते स्मृतिः।।145।।

हिन्दी व्याख्या:- जिसका कोई कर्ता नहीं है, जो अनादि है, प्रत्येक कल्पों में उसी रूप में जो रहते है, नित्य है वह देव है। स्मृतियाँ तो समय समय पर बड़े-बड़े महर्षियों से भिन्न-भिन्न रूप में रची गई हैं इसलिए उसमें भी व्यवच्छेद नहीं है। (अर्थात् प्रवाह नित्यता उनमें भी है)।।145।।

विशेष:- अनादिमव्यवच्छिन्नां = अनादि नित्य है, श्रुतिम् = वेद, अकर्तृकाम् = कोई कर्ता नहीं।

अविभागाद्विवृत्तानामभिख्या स्वप्नवच्छ्रुतौ।

भावतत्त्वं तु विज्ञाय लिङ्गेभ्यो विहीता स्मृतिः।।146।।

हिन्दी व्याख्या:- एक और अविभक्त या निरवयव शब्द ब्रह्म के विवर्त (ऋषि रूप में व्यक्त) ऋषियों को स्वप्रकाश भाँति वेदज्ञान स्वयं उत्पन्न हो जाता है। उसके बाद वे ऋषि पदार्थों का सामक्ष्य समझकर लिङ्गों (वैदिक शब्दों) से स्मृति की रचना करते हैं।।146।।

विशेष:- अविभागाद् अविभक्त , स्वप्नवच्छ्रुतौ = स्वप्न के भाँति, विज्ञाय = समझकर।

कायवाग्बुद्धिविषयाः ये मलाः समवस्थिताः।

चिकित्सालक्षणाध्यात्मशास्त्रैस्तेषां विशुद्धयः।।147।।

हिन्दी व्याख्या:- (एक प्राणी के) काय, वाणी और बुद्धि के मल (रोग, अपभ्रंश, और राग द्वेष आदि) जो स्थित हैं। उनकी विशुद्धि क्रम से चिकित्सा, लक्षण, और अध्यात्म शास्त्र (वेदान्त विद्या) के द्वारा ही होती है।

तात्पर्य यह है कि जैसे चिकित्सा से कायमल-(रोग) दूर होता है, अध्यात्म शास्त्र से बुद्धिमल (राग-द्वेष) दूर होता है। वैसे वाणी का मल (अपभ्रंश) व्याकरण के द्वारा दूर किया जाता है। अतः चिकित्साशास्त्र और वेदान्त शास्त्र की भाँति व्याकरण शास्त्र भी मनुष्य के जीवन का उपयोगी शास्त्र हैं।।147।।

विशेष:- कायवाग् = वाणी, बुद्धिविषयाः = बुद्धि के, मलाः = मल।

शब्दः संस्कारहीनो यो गौरिति प्रयुयुक्षिते।

तमपभ्रंशमिच्छन्ति विशिष्टार्थनिवेशिनम्।।148।।

हिन्दी व्याख्या:- गौ शब्द प्रयोग करने की इच्छा होने पर जो व्याकरण-संस्कार से हीन शब्द (गोणी, गावी अस्व आदि) उसी शास्ना वाली गौ के लिए अथवा अश्व के लिए प्रयुक्त होने लगते हैं उन्हें अपभ्रंश कहते हैं।।148।।

विशेष:- शब्दः = शब्द, स्संस्कारहिनः= संस्कार से हीन, गौरिति = गौ ।

अस्वगोण्यादयः शब्दाः साधवोः विषयान्तरे।

निमित्तभेदात् सर्वत्र साधुत्वं च व्यवस्थितम्।।149।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे अश्व शब्द दरिद्रता का वाचक है अश्व का वाचक नहीं है और गोणी शब्द एक ढ़ंग के बोरा का वाचक है गौ का नहीं, इस प्रकार अश्व और गोणी शब्द किसी भिन्न अर्थ में साधु होने पर भी अश्व और गौ अर्थ में असाधु हैं। क्योंकि साधु सर्वत्र प्रवृत्तिनिमित्त पर स्थिर है। (अर्थात् जिस शब्द से जो अर्थ प्रतीत होता है वह शब्द उन उन अर्थों में साधु है)।।149।।

विशेष:- अस्वगोण्यादयः = अश्व. गोणी आदि, साधवोः = साधु, विषयान्तरे = वाचक नहीं।

ते साधुष्वनुमानेन प्रत्ययोत्पत्तिहेतवः।

तादात्मयमुपगम्येव शब्दार्थस्य प्रकाशकाः।।150।।

हिन्दी व्याख्या:- जब कोई असाधु शब्द का प्रयोग करता है तब साधु शब्द समझने वाला विद्वान् असाधु शब्द से साधु का अनुमान कर लेता है और उसी अनुमान के द्वारा अर्थ बोध होता

है। बाद में पार्श्वस्थ बालक को तो बीच के अनुमान का पता नहीं चलता, वह गावी शब्द का गोरूप अर्थ में तादात्य मान बैठता है और उसे साक्षात् गावी शब्द से ही बोध होने लगता है।।150।।

विशेष:- साधुष्वनुमानेन = साधु शब्द समझने वाला, तादात्मयमुपगम्य = तादात्य मान बैठता, शब्दार्थस्य = शब्दार्थ का।

न शिष्टैरनुगम्यन्ते पर्याया इव साधवः।

ते यतः स्मृतिशास्त्रेण तस्मात्साक्षादवाचकाः।।151।।

हिन्दी व्याख्या:- बड़े बूढ़े वैयाकरण जैसे साधु (कर, हस्त और पाणी) शब्दों को पर्याय मानते हैं और उनका व्याकरण सूत्रों से साधुत्व भी मानते हैं वैसे असाधु शब्दों का व्याकरण शास्त्र द्वारा साधुत्व और एर्याय नहीं मानते। इसलिए असाधु शब्द साक्षाद् अवाचक हैं।।151।।

विशेष:- शिष्टैरनुगम्यन्ते = बड़े बूढ़े, पर्याया = पर्याय, साधवः = साधुत्व।

अम्बाम्बेति यथा बालः शिक्षमाणः प्रभाषते।

अव्यक्तं तद्विदां तेन व्यक्ते भवति निर्णयः।।152।।

हिन्दी व्याख्या:- जैसे बालक को अम्बा अम्बा सिखाया जा रहा है किन्तु बोलने में असमर्थ बालक अव्यक्त (वं, वं,) बोलने लगता है। किन्तु इसको समझने वाले लोग उस अव्यक्त (वं, वं) से अम्बा अम्बा का ही निर्णय करते हैं। (अर्थात साधु शब्द का अनुमान कर लेते हैं।)।।152।।

विशेष:- अम्बाम्बेति = अम्बा अम्बा ऐसा, बालः = बालक, शिक्षमाणः = सिखाया।

एवं साधौ प्रयोक्तव्ये योऽपभ्रंशः प्रयुज्यते।

तेन साधुव्यवहीतः कश्चिदर्थोऽभिधीयते।।153।।

हिन्दी व्याख्या:- इसलिए जो साधु शब्द प्रयोग करने के स्थान पर अशक्ति अथवा प्रमाद से असाधु(अपभ्रंश)शब्द का प्रयोग करता है उसके उस असाधु शब्द से जो कोई अर्थ प्रतीत होता है वह साधु शब्द के व्यववान से प्रतीत होते है (अर्थात साधुशब्दानुमान द्वारा ही प्रतीत होता है)।।153।।

किन्तु जो साधु शब्द नहीं जानते उन्हें असाधु शब्द सुनने से साधु शब्द का स्मरण भी नहीं होता उनके लिए साधु ही अवाचक है।

विशेष:- साधौ = साधु, प्रयोक्तव्ये = प्रयोग करने के, योऽपभ्रंशः = जो अपभ्रंश।

पारम्पर्यादपभ्रंशा विगुणेष्वभिधातृषु।

प्रसिद्धिमागता येषु तेषां साधुरवाचकः।।154।।

हिन्दी व्याख्या:- जब शब्दों का उच्चारण करने वाले दाँतों के टूट जाने के कारण शुद्ध शब्द नहीं बोल पाते तब वे ही अपभ्रंश जिन लिंगों में परम्परा सें प्रसिद्ध हो जाते हैं उनके लिए साधु ही अवाचक है154

विशेष:- पारम्पर्याद् = परम्परा से, अपभ्रंशा = अपभ्रंश, साधुरवाचकः = साधु ही अवाचक।

दैवी वाग्व्यवकीर्णेयमशक्तैरभिधातृभिः।

अनित्यदर्शिनां त्वस्मिनवादे बुद्धिविपर्ययः।।155।।

हिन्दी व्याख्या:- यह दैवी वाक् असमर्थ वक्ताओं के द्वारा भ्रष्ट कर दी गई। इसीलिये इस साधु शब्द और असाशु शब्दवाद में शब्द को अनित्य मानने वाले तर्किकों की बुद्धि पलट गई हैं वे असाधु शब्द को भी वाचक मानने लगे हैं।।155।।

विशेष:- दैवी = दैवी वाक्, अनित्यदर्शिनां = अनित्य मानने वाले, त्वस्मिनवादे = शब्दवाद में।

उभयेषामविच्छेदादन्यशब्दविवक्षया।

योऽन्यः प्रयुज्यते शब्दो न सोऽर्थस्याभिधायकः।।156।।

हिन्दी व्याख्या:- वस्तुतः जो किसी शब्द को प्रयोग करने के स्थान पर दूसरे शब्द का प्रयोग करने से उस अर्थ का बोधक नहीं होता है किन्तु साधु शब्द और असाधु शब्द का शिष्टों ने अबाध प्रयोग किया है अतः दोनों वाचक हैं।।156।।

इन दोनों मतों में भेद यह है कि साधु शब्द के प्रयोग से धर्म होता है और असाधु शब्दों के प्रयोग से धर्म नहीं होता है। इसलिए साधु शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिये। साधुत्व के बारे में कुछ मतभेद है। कुछ लोग साक्षात् बोधक को साधु और परम्परया बोधक को असाधु मानते हैं। वैयाकरण लोग पुण्यजनकत्व को साधुत्व और पुण्य अजनजत्व को असाधुत्व मानते हैं। इस प्रकार वैयाकरणों के सिद्धान्त के रूप में शब्द के दो रूप व्यक्त किए गए। एक तो जगत् का कारण ध्वनि व्यङ्ग्य स्फोट रूप ब्रह्म और दूसरा कार्य रूप में परिणत शब्द इसलिये इस काण्ड का नाम ब्रह्मकाण्ड है। द्वितीयकाण्ड को वाक्यकाण्ड और तृतीय काण्ड को पद काण्ड कहा गया है। शब्द के निमित्ता (स्फोट) और प्रत्यायक (वैखरी) दो भेद, कार्यकारण में भेदपादियों का मत, कार्यकारण में भेदवादियों का मत, निमित्ता (स्फोट) विभिन्न ध्वनियों का कारण, स्फोट की

एकता में भी ध्वनि की प्रतीति, अकम स्फोट की सकम प्रतीति स्थानजन्य है, नाद के धर्म का स्फोट में आरोपित होने का प्रकार, स्फोट की स्वप्रकाशता।

विशेष:- उभयेषाम् = दोनों, प्रयुज्यते = प्रयोग करने से, अन्यशब्दविवक्षया = दूसरे शब्द का विवक्षा।

3.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि कारिका 51-55 (शब्द में अनेक धर्म समावेश) शब्द के दोनों-भेदों की उदाहरण द्वारा सिद्धि, शब्द का अर्थाभिधान प्रकार, शब्द की अर्थ की भाँति कियाङ्गता निषेध, शब्द की गाह्य और ग्राहक रूप में स्थिति। कारिका 53-57 (बोधकत्व निर्णय) ज्ञात शब्द ही बोधक, अज्ञात शब्द में बोधकत्व का निषेध। कारिका 57-39 (स्वं रूपं की दूसरी व्याख्या में जाति-व्यक्तिभेद की कल्पना) कारिका 70-72 (मीमांसकों के मत से शब्द का एकत्व) शब्द के एकत्ववाद और नानात्ववाद की कल्पना,मीमांसकों के मत से शब्द की एकता का वर्णन वर्ण के अतिरिक्त वाक्य और पद की अस्वीकृति। कारिका 73-74 (वैयाकरण मत से वाक्य का एकत्व और व्यवहार)वैयाकरणों के मत से वाक्य का स्वरूप, पाणिनीय व्याकरण में एकत्व और नानात्ववाद में व्यवहार । कारिका 75-77 (स्फोट में प्राकृतधवनि के भेद की ही प्रतीति) नित्य स्फोट में कालभेद नहीं फिर भी वृत्तिभेद की उपपत्ति, ध्वनि के दो भेद, प्राकृतध्वनिकाल का स्फोट में आरोप, वृत्तिभेद में वैकृतध्वनि कारण। कारिका 78-80 (ध्वनि से स्फोट की प्रतीति) ध्वनियों से स्फोट की उपलब्धि में निमित्ता बनने के लिए तीन मत। कारिका 71-78 (ध्वनि की अभिव्यक्ति में तीन मत) कारिका 85-87 (वाक्य में पद और वाक्य की प्रतीति असत्) वाक्य में पद और वर्ण की प्रतीति एक उपाय,पद और वाक्य के भेद की प्रतीति भी एक उपाय, उदाहरण। कारिका 78-92 (क्रम से वर्ण, पद और वाक्य ग्रहण का कारण) वाक्य में पदादी प्रतीति का कारण, उदाहरण क्रम से वर्ण पद ग्रहण के द्वारा बृद्धि से वाक्य ग्रहण, बृद्धि क्रम नियत। कारिका 93-94 (स्फोट पर अनेक वाद) जातिस्फोट वाद, व्यक्तिस्फोटवाद, एक नित्य शब्द तत्तववाद। कारिका 94-100 (स्फोट में ध्वनिकृत कालभेद की प्रतीति) । कारिका 102-103 स्फोट और ध्वनि का स्वरूप परिचय स्फोट और ध्वनि के स्वरूप, स्फोट काल की एकता, उदाहरण, नित्यपक्ष में समाधान। कारिका 107-112 शब्द के विषय में मतभेद शब्द के विषय में तीन भेद, शिक्षाकार का मत, जैनियों का मत, महाभाष्यकार का मत । कारिका 113-117 ज्ञान के शब्दभावापत्ति में तीन मत। एक मत में ज्ञान के शब्द में रूपता में परिणत होने का कम, दूसरा मत, तीसरा सिद्धान्त मत। कारिका 118-124 जगत् में सर्वत्र शब्द रूपता का अनुगम शब्द को जगत्कारण मानना, सर्वत्र अर्थों का शब्द से जन्म, शब्द के विवर्त, जगत् की समस्त प्रवृत्ति के मूल में शब्द, शब्द के उच्चारण में होने वाले प्रयत्नों का कारण शब्द,

समस्त ज्ञान में शब्द का अनुगम, वणी के निकल जाने पर अवबोध का प्रभाव। कारिका 125-127 सर्वत्र वाग्रूपता का अनुगम समस्त विकार और कलायें शब्द जन्य,प्राणियों में जब तक वाग्रूप का अनुगम तभी तक चेतना, वाणी ही प्रेरक। कारिका 128-131 शब्द ही सर्वत्र व्यापक परमात्मा स्वप्र में भी वाग्रुपता का अनुगम, सब जगत वाणी का ही विकार इस पक्ष का समर्थन, शब्द ही पुराण प्रसिद्ध परमात्मा। कारिका 132 ब्रह्म प्राप्ति का उपायशब्द का सम्यक् ज्ञान ही ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय और शब्द के तत्तव का का ज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति का साधन । कारिका 133 वेद मूलक होने से व्याकरण प्रमाण मनुष्य निर्मित भी व्याकरण वेद मूलक होने से प्रमाण है। कारिका 134-135 वेद ही धर्म, आचार और आगम का मूल स्मृतियों के प्रभाव में आचार भी धर्म का मूल, समस्त आगम वेद मूल होने से ही प्रमाण,कारिका 136-138 वेदमूलक तर्कशास्त्र आवश्यक कारिका 139-142 साधुत्व ही पुण्यजनक कारिका 143 वाणी के समस्त रूप व्याकरण के लक्ष्य, कारिका 144-146 जगत् के प्रलय और नित्यपक्ष में वेद का प्रामाण्य, कारिका 147-156 अपभ्रंश के विभिन्न इतिहास इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है।

3.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
विरुद्धः	विरूद्ध
परिमाणेषु	परिमाणों में
वज्राद्	वज्र से
जलादिषु	जलों में
पर्वतादि	पर्वत आदि
सरूपाणां	सरूपों का
नास्ति	नही है
सम्भवः	सम्भ्व
एवं	इस प्रकार
साधौ	सही शब्द
प्रयोक्तव्ये	प्रयोग करने में
योऽपभ्रंशः	जो अपभ्रंश है
तेन	उसके द्वारा
कश्चिदर्थः	कुछ अर्थ
अभिधीयते	विधान किया जाता है

3.6 बहुविकल्पीय प्रश्न-उत्तर

1- कण्ठतालु आदि के संयोग और विभाग के द्वारा जो उत्पन्न होता है वह है

1. विवर्त 2. वेद

3. निगम 4. स्फोट (4)

2- जो शब्दज शब्द है वे है।

1. ध्वनियाँ 2. पश्यन्ति'

2. मध्यमा' 4. वैखरी' (1)

3- व्याकरण को किसका का मुख्य अंग स्वीकार किया गया है

1. वेद का 2. पुराण का

3. आगम का 4. ज्योजिष का (1)

4- स्मृतियों को स्वीकार किया है- है।

1. वेदमूलक 2. निगममूलक

2. आगममूलक 4. पुराणमूलक (1)

5- शब्द ब्रह्म को कहा गया है-

1. निमित्ता 2. कारण

3. आगम 4. छन्दोमयी तनु (1)

6- वेद शब्द से किसकी उत्पत्ति है

1. जगत् की 2. व्याकरण

3. निगम 4. पुराण (1)

7- साधू शब्दों का ज्ञान किस के द्वारा होता है

1. वेद 2. व्याकरण

3. निगम 4. पुराण (1)

8- साधू शब्दों के ज्ञान से होता है

1. धर्म 2. व्याकरण

3. निगम 4. अधर्म (1)

9-असाधू शब्दों के ज्ञान से होता है

1. धर्म 2. व्याकरण

3. निगम 4. अधर्म (4)

10- आत्मा को स्वीकार है किया गया है

1. बोधकत्व 2. अनित्य

3. वेद निर्णय 4. नित्य (4)

3.7 अभ्यासार्थ प्रश्न - उत्तर

प्रश्न 1- कारिका 102-103 तक किसका वर्णन किया गया है

उत्तर- स्फोट और ध्वनि के स्वरूप का

प्रश्न 2- शब्द के विषय में कितने भेद है

उत्तर- तीन

प्रश्न 3- कारिका 118-124 तक किसका वर्णन है

उत्तर-जगत् में सर्वत्र शब्द रूपता का अनुगम

प्रश्न 4- ज्ञान के शब्दभावापत्ति में कितनें मत है

उत्तर- तीन

प्रश्न 5- कारिका 132 में किसका वर्णन कियागया है

उत्तर- ब्रह्म प्राप्ति का उपाय

प्रश्न वेद मूलक होने का प्रमाण क्या है

उत्तर- व्याकरण

प्रश्न 7- कारिका 139-142 किसका वर्णन है

उत्तर- साधुत्व पुण्यजनक का

प्रश्न 8- वाणी के समस्त रूप किसके लक्ष्य है

उत्तर- व्याकरण के

प्रश्न 9- वाणी के तीनो भेदों का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया है

उत्तर- व्याकरण के द्वारा

प्रश्न 10- कारिका 147-156 तक किसका वर्णन किया

उत्तर - अपभ्रंश के विभिन्न इतिहास का

3.8 सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. पुस्तक का नाम-वाक्यपदीयम्, लेखक का नाम- भर्तृहरि सम्पादक का नाम-वासुदेव आचार्य, प्रकाशक का नाम- कृष्णदास आकादमी वाराणसी ।

2-पुस्तक का नाम-वैयाकरण- सिद्धान्तकौमुदी, लेखक का नाम- भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम-गोपालदत्त पाण्डेय, प्रकाशक का नाम- चैखम्भा सुरभारती प्रकाषन वाराणसी।

3-पुस्तक का नाम- व्याकरण महाभाष्य, लेखक का नाम- पतंजलि, प्रकाशक का नाम- चैखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।

3.9 उपयोगी पुस्तकें

1. पुस्तक का नाम-वाक्यपदीयम्, लेखक का नाम- भर्तृहरि, सम्पादक का नाम-वासुदेव आचार्य, प्रकाशक का नाम- कृष्णदास आकादमी वाराणसी।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- वृद्ध्यादयो यथा शब्दाः स्वरूपोपपिबन्धनाः।
आदैच्प्रत्यायितैः शब्दैः सम्बन्धं यान्ति संज्ञिभिः।। इस कारिका की व्याख्या कीजिये

2- उभयेषामविच्छेदादन्यशब्दविवक्षया।
योऽन्यः प्रयुज्यते शब्दो न सोऽर्थस्याभिधायकः।। इस श्लोक का हिन्दी में व्याख्या कीजिये